भूमिका

मेरे प्रिय, उत्साही, युवक मित्र श्री भवानीलाल जी भारतीय सिद्धान्त वाचस्पति, एम. ए. ने बड़े परिश्रम से 'श्रीकृष्ण चरित' लिखा है। श्री भारतीयजी की बुद्धिमत्ता, परिश्रम शीलता, स्वाध्यायप्रेम तथा उत्साहादि सद्गुणों को देख कर मुझे उनसे स्वाभाविक स्नेह है अतः मैंने सहर्ष इसकी भूमिका लिखने की स्वीकृति दे दी जिसे आज श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के शुभ दिन लिख रहा हूँ।

मैंने श्री भारतीयजी द्वारा रचित श्रीकृष्ण चरित को आद्योपान्त पढ़ा है। मुझे यह देख कर बड़ी प्रसन्नता हुई कि उन्होंने योगिराज श्री कृष्ण के पवित्र जीवन की मुख्य२ घटनाओं और उनके गुणों पर बड़ा उत्तम प्रकाश डाला है तथा जो असत्य आरोप उन पर पुराणादि के आधार पर लगाये जाते हैं उनका बड़ी अच्छी तरह से निराकरण किया है। श्री बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय कृत 'श्रीकृष्ण चरित्र' से यद्यपि उन्होंने पर्याप्त सहायता ली है तथापि अवतार में विश्वासादि के कारण हुई उनकी भूलों का भी उन्होंने स्पष्ट निर्देश करते हुये प्रबल युक्तियों से अपने पक्ष को पुष्ट किया है कि श्रीकृष्ण एक योगिराज महापुरुष थे, ईश्वरावतार के रूप में उनको मानना ठीक नहीं है क्योंकि सर्व व्यापक, सर्वज्ञ, सर्व शक्तिमान, भगवान् को धर्मरक्षा अथवा अधर्म विनाशार्थ शरीर धारण करने की कभी आवश्यकता हो नहीं हो सकती।

योगिराज श्री कृष्ण के उत्तम गुणों का इस पुस्तक के लेखक महोदय ने महाभारत के अनुसार जीवन घटनाओं का उल्लेख करते हुये दिग्दर्शन कराया है अतः इस भूमिका में उन पर प्रकाश डालने

की विशेष आवश्यकता नहीं है तथापि इतना निर्देश कर देना पर्याप्त है कि उन्होंने शारीरिक, मानसिक, आत्मिक शक्तियों के समविकास का उच्चादर्श जनता के सम्मुख रक्खा। उनकी अद्‌भुत गुणावली का स्मरण हम भीष्म पितामह के शब्दों में निम्न प्रकार कर सकते हैं—

> नृणां लोके हि कोऽन्योऽस्ति विशिष्टः केशवादृते।
> दानं दाक्ष्यं श्रुतं शौर्यं ह्रीः कीर्तिर्बुद्धिरुत्तमा।
> सन्नतिः श्रीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिश्च नियताऽच्युते॥
>
> सभापर्व अ० ४०।१९,२०

अर्थात् इस समय। मनुष्य लोक में श्रीकृष्ण से बढ़कर कौन है ? दान, दक्षता (चतुरता), वेदादि शास्त्रों का श्रवण, शूर वीरता, बुरे कार्य करने में लज्जा, कीर्ति, उत्तम बुद्धि, नम्रता (जो 'चरणक्षालने कृष्णो ब्राह्मणानां स्वयं ह्यभूत्' सभापर्व ३५।१० इत्यादि से ज्ञात होती है, जहाँ बताया गया है कि श्रीकृष्ण ने ब्राह्मणों के पैर धोने का काम अपने ऊपर लिया) शोभा वा ऐश्वर्य, धैर्य, जो अर्जुन जैसे सर्वोत्कृष्ट वीर को रण क्षेत्र में व्याकुल होते देख कर भी न घबराने और 'प्रहसन्निव भारत' हसते हुये के समान उसको समझा कर कर्तव्य पथ पर लाने से विदित होता है। सन्तोष, सब प्रकार की शारीरिक, मानसिक, आत्मिक पुष्टि वा शक्ति का विकास ये सब गुण अच्युत अथवा कर्तव्य मार्ग से कभी न विचलित होने वाले श्री कृष्ण में नियत रूप से विद्यमान हैं। कोई आश्चर्य नहीं कि इन अनेक परस्पर विरोधी समझे जाने वाले दुर्लभ गुणों को मर्यादापुरुषोत्तम और योगिराज श्रीकृष्ण में देख कर सामान्य लोगों ने उन्हें लोकोत्तर ही नहीं समझा बल्कि भक्त्यातिरेक से साक्षात् भगवान् का अवतार मान लिया, यद्यपि ऐसा अवतारवाद वेद और बुद्धि के विरुद्ध है।

पुराणोक्त कलंकित और दूषित श्रीकृष्ण चरित्र को छोड़ कर मेरे मित्र श्री भवानीलालजी भारतीय ने महाभारत के आधार पर श्री कृष्ण के वास्तविक जीवन को पाठकों के सन्मुख रखने का अत्यन्त प्रशंसनीय प्रयत्न किया है जिसे देख कर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई है। आज कल भी जब पुराणोक्त श्री कृष्ण चरित्र का प्रभाव भारतीय जनता के चरित्रों पर बुरा पड़ रहा है विशेषतः अनेक मठादिकों में कृष्ण, गोपी व राधा सम्बन्ध के नाम पर अनेक अनर्थ प्रचलित हैं तथा विधर्मी प्रचारकों को इस मिथ्या विश्वास के आधार पर हमारे पवित्र धर्म को कलंकित करने का अवसर मिलता है, ऐसे विशुद्ध श्रीकृष्ण चरित की बड़ी आवश्यकता थी। इस प्रशंसनीय प्रयत्न के लिये मैं भारतीयजी का अभिनन्दन करता हूँ और चाहता हूँ कि इस पुस्तक का देशवासियों में खूब प्रचार हो।

धर्मदेव विद्या मार्तण्ड
श्री श्रद्धानन्द प्रतिष्ठान,
गुरुकुल कांगड़ी।

७. ५. १२. सौर।

विषय सूची

श्रीकृष्ण चरित

उत्थानिका

"पाँच हजार वर्ष पूर्व ठीक आज की तरह ही विश्व के क्षितिज पर भादों की अंधेरी तमिस्रा अपनी गहन कालिमा के साथ छा गई थी। तब भी भारत में जन था, धन था, शक्ति थी, साहस था, कला और कौशल क्या नहीं था ? सब कुछ था, पर एक अकर्मण्यता भी थी, जिससे सब कुछ अभिभूत, मोहाच्छन्न और तमसावृत था। महापुरुष अनेक हुये हैं, पर लोक, नीति और आध्यात्म को समन्वय के सूत्र में गूंथ कर "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" का पाञ्चजन्य फूंकने वाले कृष्ण ही थे।"

संसार में समय २ पर अनेक महान् आत्माओं ने जन्म लिया है। उनमें कोई धर्म संस्कारक था तो कोई स्वराज्य स्रष्टा, कोई परम निःस्पृह परिव्राट् था तो कोई विचक्षण राजनीतिज्ञ; परन्तु इन सभी आदर्शों की चरम अभिव्यक्ति यदि किसी महामानव में हुई है तो वे भगवान् श्री कृष्ण ही हैं। उनके जीवन में आर्य चरित्र की चरम परिणति दिखाई देती है। अतः यदि उन्हें विश्व के महान विभूति सम्पन्न पुरुषों का मूर्धन्य कहें तो कोई अ.युक्ति न होगी।

प्रसिद्ध गुजराती साहित्यकार और राजनीतिज्ञ श्री कन्हैयालाल मुन्शी के शब्दों में "इतिहास की रंगभूमि पर ऐसे व्यक्ति जब

आते हैं तब दूसरे तत्व पुरुषार्थ विहीन हो जाते हैं। इतिहास क्रम रुक जाता है। समय शक्तियों का मान भूल कर दर्शकों का मन उसके आस पास लिपट जाता है। नायक के मोह में नाटक का अर्थ-विस्मरण हो जाता है। भूतकाल की रंगभूमि पर ऐसे अनेक व्यक्ति हुए हैं—परशुराम, मधुसूदन भगवान् श्रीकृष्ण और समस्त जगत् के राजनीतिज्ञ शिरोमणि भगवान् चाणक्य।"*

आर्य जीवन का सर्वांगीण विकास कृष्ण चरित्र में दिखाई देता है। जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं जिसमें उन्हें सफलता न मिली हो। राजनीति और समाज नीति, धर्म और दर्शन, सभी क्षेत्रों में श्रीकृष्ण की प्रतिभा अद्भुत दिखाई पड़ती है। एक ओर वे महान् राजनीतिज्ञ, क्रान्ति विधाता और नवीन साम्राज्य स्रष्टा के रूप में दिखाई पड़ते हैं तो दूसरी ओर आध्यात्म पथ के निराले पथिक के रूप में। उनके समय में भारत में गांधार से लेकर सह्याद्रि पर्वतमाला तक क्षत्रिय राजाओं के छोटे २ स्वतंत्र राज्य थे। इनको कोई ऐक्य सूत्र में बांधने वाला नहीं था। एक चक्रवर्ती सम्राट् के न होने से अनेक राजा अत्याचारी, स्वच्छाचारी और प्रजापीडक हो गये थे। मथुरा का कंस, मगध का जरासंध, चेदि का शिशुपाल और हस्तिनापुर के कौरव, सभी दुष्ट, विलासी और दुराचारी थे। श्री कृष्ण ने अपने अद्भुत चातुर्य से इन सभी राजाओं का मूलोच्छेद कराया और धर्मराज, अजातशत्रु, युधिष्ठिर का अखण्ड, एकछत्र, चक्रवर्ती, सार्वभौम साम्राज्य स्थापित किया।

जिस प्रकार वे नवीन साम्राज्य निर्माता और युगप्रवर्तक थे उसी प्रकार आध्यात्म और तत्त्वचिंतन के क्षेत्र में भी उनकी प्रवृत्तियाँ चरम सीमा तक पहुंच चुकी थीं। जल में रहने वाले

* गुजरात के नाथ पृ० १२०

कमलपत्र के समान' संसार से निर्लेप, स्थितप्रज्ञ व्यक्ति का जैसा वर्णन उन्होंने अपने गीता दर्शन में किया है—उसके मूर्त उदाहरण वे स्वयं थे। उनके जीवन की यह विशेषता है कि प्रवृत्ति और निवृत्ति, श्रेय और प्रेय, ज्ञान और कर्म आदि प्रत्यक्ष में विरोधी दीखने वाली वृत्तियों का भी उनमें अद्भुत सामञ्जस्य था। व एक उच्च कोटि के साधक, चिंतक, योगी और तत्ववेत्ता थे। उन्होंने धर्म के दोनों पक्षों-अभ्युदय और निश्रेयस को अपने जीवन में समान महत्व दिया था। आर्य सस्कृति की यही तो विशेषता रही है कि उसके उपासक सासारिक विभूति की प्राप्ति के साथ २ पारलौकिक उन्नति की ओर भी ध्यान देते रहे हैं और उन्होंने मानव-जीवन के चरम लक्ष्य—मोक्ष प्राप्ति को कभी नहीं भुलाया है। अत हम देखते हैं कि अध्यात्मविद्या का अत्यन्त सरल और स्पष्ट निरूपण श्रीकृष्ण ने अपने विचार और व्यवहार के द्वारा विश्व के सम्मुख प्रस्तुत किया है।

कृष्ण ने देश की सामाजिक और ऐहिक परिस्थिति को भी अपने सामने से ओझल नहीं होने दिया। उन्होंने पतनोन्मुख समाज को उद्बोधन दिया। स्त्रियों, वैश्यों और शूद्रों के मिटते हुये अधिकारों का बल-पूर्वक प्रतिपादन और समर्थन किया। वर्ण व्यवस्था में उत्पन्न होने वाली शिथिलता, विकृति और अव्यवस्था को यथाशक्य दूर करने का प्रयत्न किया। महाभारतकाल में वर्ण साकर्य का बोलबाला था। द्रोणाचार्य जैसे ब्राह्मण शस्त्राभ्यास करते और कराते हुये जीविका निर्वाह कर रहे थे। क्षत्रिय

ही एकलव्य जैसे शस्त्र विद्या के प्रेमी, परन्तु शूद्रकुलोत्पन्न छात्र व. जिज्ञासा वृत्ति को कुंठित किया जा रहा था। भीष्म जैसे धर्म परायण पुरुष भी अपने आपको दुर्योधन के अन्न से पालित समझ कर अधर्म का पक्ष ग्रहण करने में नहीं हिचकते थे।*

समाज के इस नैतिक पतन को देख कर मानव बंधुत्व के प्रबल समर्थक श्रीकृष्ण का हृदय, यदि पीड़ित और शोषित वर्ग की दयनीय दशा को देख कर पिघल गया तो इसमें आश्चर्य ही क्या ? कृष्ण उच्च कुल के गौरव और राजवंश की प्रतिष्ठा को भुला कर सामान्य जनता के पक्षपोषक बने। वे गोपालों के सखा थे। उन्होंने ही सम्राट् दुर्योधन का आतिथ्य अस्वीकार किया और दासीपुत्र विदुर के घर को पवित्र किया। सचमुच ही कृष्ण सामाजिक क्रान्ति के अनोखे सूत्रधार थे।

आज आवश्यकता इस बात की है कि कृष्ण के इस दिव्य चरित्र का अधिक से अधिक मनन और अनुशीलन किया जाय। न केवल मनन ही, अपितु उनके जीवन और उनकी शिक्षा को प्रकाशस्तम्भ मान कर हम अपने लक्ष्य की ओर बढ़ें। कृष्ण की शिक्षा में ही न केवल देश का, अपितु समग्र विश्व का कल्याण निहित है। आज जब कि आर्य धर्म, सभ्यता और संस्कृति पर बहुमुखी आक्रमण हो रहे हैं, तब श्रीकृष्ण की मंगलमयी वाणी और उनका तेजस्वी, प्रतिभावान् और संस्कारी व्यक्तित्व ही हमारा पथप्रदर्शन कर सकते हैं।

सहस्रों वर्षों से विस्मृत कृष्ण के इस ओजस्वी और क्षमताशील चरित्र तथा इतिवृत्त की ओर सर्वप्रथम सुधारक शिरोमणि ऋषि

---

* अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित्। इति मत्वा महाराज! बद्धोस्म्यर्थेन कौरवैः॥ महाभारत

दयानन्द ने हमारा ध्यान आकर्षित किया। बंगाल के साहित्य सम्राट् बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ने उसी कृष्ण चरित्र का बुद्धिवादी, ज्ञानिक और मानवीय दृष्टिकोण से अनुशीलन कर जनता के समक्ष उसका वास्तविक स्वरूप प्रस्तुत किया। प्रस्तुत ग्रन्थ के ये दो मूल प्रेरणास्रोत हैं।

२. कृष्ण चरित्र की विकृति

कृष्ण एक आदर्श पुरुष थे। उन्होंने अपने कर्मों द्वारा एक महान् आदर्श विश्व मानवों के सम्मुख प्रस्तुत किया। बंकिमचन्द्र के शब्दों में तो ऐसा सर्व-गुणान्वित और सर्व पापरहित आदर्श चरित्र और कहीं नहीं है। न किसी देश के इतिहास में और न किसी काव्य में।*

कृष्ण का ऐसा महनीय और गौरवान्वित चरित्र कालान्तर में अत्यन्त विकृत हो गया। कवियों, पुराण लेखकों और सामान्य ग्रन्थकारों ने उनपर मनमाने आक्षेप और आरोप लगाये। उनके निर्मल चरित्र की पावन मन्दाकिनी में अनेक अपवित्र और कलुषित धारायें ऐसी आकर मिलीं जिनके कारण समस्त कृष्ण चरित्र छलछिद्र पूर्ण, मर्यादाहीन और गर्हित बन गया। यहाँ यह बात विचारणीय है कि वे कौन २ सी विकृतियें हैं जिनका समावेश पुराण लेखकों, निरंकुश कवियों, और साम्प्रदायिक दुराग्रही जनों ने कृष्ण के वृत्त में किया जिसके फलस्वरूप कृष्ण का दिव्य, जाज्वल्यमान, भास्वर, गौरवपूर्ण चरित्र, पतन के गहन गह्वर में

* कृष्ण चरित्र पृ० ३

विश्राम करने लगा। कृष्ण चरित्र पर लगाये जाने वाले दोषों और लाञ्छनों का यहाँ विचार किया जायगा।

कृष्ण जैसे आदर्श पुरुष के चरित्र पर ईश्वरत्व का आरोप करना—उसे परमात्मा का अवतार बताना और मानना, ऐसी वस्तु है जिसने कृष्ण की वास्तविक महत्ता को कम किया है और उन्हें सामान्य भावभूमि से हटा कर अलौकिक देवसमाज में प्रतिष्ठित किया है। इसका स्वाभाविक परिणाम यह निकला कि कृष्ण चरित्र से मानव को क्या शिक्षा, प्रेरणा अथवा स्फूर्ति मिलती है, इसे लोग भूल गये और केवल उनके मूर्तिमय विग्रह की पूजा अर्चा में ही अपने कर्तव्य की समाप्ति समझने लगे। इससे मानव समाज की जो महती हानि हुई है वह स्पष्ट है। ईश्वर-विश्वास और आत्मिक बल के स्थान पर नास्तिकता और हीनभाव की ही वृद्धि हुई है।

अवतारवाद का सिद्धान्त अधिक प्राचीन नहीं है। आर्यों द्वारा अपौरुषेय समझे जाने वाले विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ वेदों में अवतारवाद का लेशमात्र भी नहीं है। वेदों के अनेक मंत्र उद्धृत किये जा सकते हैं जो स्पष्ट ही परमात्मा को अशरीरी, निराकार, निर्विकार और सर्वव्यापक बताते हैं। यहाँ केवल दो मंत्र ही

आदि के साथ सम्बन्ध रूप बंधन से रहित, अविद्यादि दोषों से रहित होने से सदा पवित्र है।"* अद्वैतवाद के प्रतिष्ठापक शंकर स्वामी ने भी अपने ईशावास्योपनिषद् भाष्य में इसका यही अर्थ किया है—"स यथोक्त आत्मा पर्यगात्परिसमन्तादगाद्गतवानाकाशवद्-व्यापी इत्यर्थः। शुक्रं शुद्धं ज्योतिष्मद्दीप्तिमानित्यर्थः। अकायम शरीरो लिंग शरीर वर्जित-इत्यर्थः। अव्रणम् अक्षतम्। अस्नाविरं स्नावाः शिरा यस्मिन्न विद्यन्त इत्यस्नाविरम्। अव्रणमस्नाविरमित्या-भ्यां स्थूल शरीर प्रतिषेधः। शुद्धं निर्मलमविद्यामल रहितमिति कारण शरीर प्रतिषेधः। अपापविद्धंधर्माधर्मादिपाप वर्जितम्।" वह पूर्वोक्त आत्मा पर्यगात् परि-सब ओर अगात्—गया हुआ है अर्थात् आकाश के समान सर्व व्यापक है, शुक्र—शुद्ध—ज्योतिष्मान् यानी दीप्ति वाला है, अकाय—अशरीरी अर्थात् लिंग शरीर रहित है; अव्रण यानी अक्षत है; अस्नाविर है, जिसमें स्नायु अर्थात् शिरायें न हों उसे अस्नाविर कहते हैं। अव्रण और अस्नाविर इन दो विशेषणों से स्थूल शरीर का प्रतिषेध किया गया है। तथा शुद्ध, निर्मल यानी अविद्या रूप मल से रहित है—इससे कारण शरीर का प्रतिषेध किया गया है। अपापविद्ध—धर्म—अधर्म रूप से रहित है।†

ऋग्वेद के एक अन्य मंत्र में भी परमात्मा को अज—जन्म-रहित कहा गया है—"शन्नो अज एकपात् देवो अस्तु।‡ अजन्मा ईश्वर हमारे लिये कल्याणकारी होवें।"

वेद ही क्यों, उपनिषदों, दर्शनों एवं अन्य आर्ष ग्रन्थों में भी अवतारवाद का सिद्धान्त बीज रूप में भी नहीं मिलता,

* ऋषि दयानन्द कृत यजुर्वेद भाष्य ४०।८

† ईशावास्योपनिषद्—शाङ्कर भाष्य पृ० २९ गीता प्रेस गोरखपुर

‡ ऋग्वेद ७।३५।१३

विस्तृतरूप में मिलने की तो बात ही क्या? अनावश्यक विस्तार भय से हम उन अनेक प्रमाणों को उद्धृत नहीं करते जो उपनिषदादि ग्रन्थों में आते हैं और जिनमें ईश्वर की निराकारता का प्रतिपादन किया गया है। परन्तु स्थालीपुलाक न्याय से यह कहना ही पर्याप्त समझते हैं कि "दिव्यो ह्यमूर्तो पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः" आदि मुण्डक उपनिषद् के प्रमाण और "अपाणिपादो जवनोग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः" आदि श्वेताश्वतर उपनिषद् के प्रमाण से ईश्वर का अजन्मा और अशरीरी होना सिद्ध है।

अब रामायण और महाभारत आदि इतिहास ग्रन्थों को लीजिये। इन ग्रन्थों में दाशरथि राम और वासुदेव कृष्ण का चरित्रांकण किया गया है और वे भी हमारे सदृश मनुष्य ही हैं। उनमें अलौकिक शक्तियों का एकान्त अभाव है, यद्यपि प्रक्षेप करने वालों की कृपा से उनके चरित्र को अमानुषी और अलौकिक बनाने का भरसक प्रयास हुआ है। यह अवश्य है कि वे अपूर्व शक्तिशाली, मेधावान् और चरित्रवान् व्यक्ति होने के कारण सामान्य मनुष्यों से ऊंचे उठे हुये थे, परन्तु उन्हें साक्षात् ईश्वर अवतार मानना स्वयं उनके गौरव को कम करना होगा।

वाल्मीकि रामायण में राम अपने आपको मनुष्य ही घोषित करते हैं—

आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम्।

वा० रा० युद्धकाण्ड*

इसी प्रकार महाभारत में भगवान् कृष्ण का स्पष्ट कथन है:—

अहं हि तत् करिष्यामि परं पुरुषकारतः।

* ११७।७

दैवं तु न मया शक्यं कर्म कर्त्तुं कथंचन ॥

उद्योग पर्व अ० ७९।५।६

मैं यथासाध्य मनुष्योचित प्रयत्न कर सकता हूँ परन्तु दैव के कामों में मेरा कुछ भी वश नहीं है। सिद्ध हुआ है कि राम चरित्र के अमर लेखक महर्षि वाल्मीकि और कृष्ण-चरित्र के अमर गायक भगवान् द्वैपायन दोनों ही राम और कृष्ण को महान् शक्तिशाली, नरश्रेष्ठ महापुरुष मानते थे। कालान्तर में इन दोनों पर ईश्वरत्व का आरोप हुआ, जिसकी कथा कहने का यहाँ अवकाश नहीं है।

अवतारवाद वेदमूलक नहीं है, यह सिद्ध हो चुका। वस्तुतः यह सर्वथा नवीन कल्पना है, जिसका मूल हमें जैन तीर्थङ्करों और बौद्धों के बोधिसत्वों में खोजना पड़ेगा। जैनमत में ऋषभदेव से लेकर महावीर वर्द्धमान तक चौबीस तीर्थङ्कर माने गये हैं। ये तीर्थङ्कर वीतराग, उदासीन सिद्ध पुरुष गिने जाते हैं जिन्हें उस मत में ईश्वर का स्थान प्राप्त है। बौद्धों के बोधिसत्वों की कल्पना भी कुछ इसी प्रकार की है। उनका यह विश्वास है कि भगवान् बुद्ध को सिद्धि प्राप्त करने में अनेक जन्म धारण करने पड़े थे और और उनके पिछले जन्म बोधिसत्वों के रूप में हुये थे; जिनकी कथायें बौद्धों के अनेक "जातक" नामक ग्रन्थों में संग्रहीत हैं। बुद्ध के ये विगत जन्म, पशु, पक्षी आदि विभिन्न योनियों में हुये, परन्तु उन्होंने निर्वाण प्राप्ति के लक्ष्य पर सदा ध्यान रक्खा। जैन और बौद्धों का यह सिद्धान्त पौराणिक ब्राह्मण धर्म में अवतारवाद के रूप में स्वीकार किया गया। वर्तमान समय में जो पुराण नामधारी ग्रन्थ मिलते हैं उनमें ही सर्व प्रथम अवतारवाद का प्रतिपादन मिलता है और आगे जैसा कि सिद्ध किया जायगा ये उपलब्ध पुराण नितान्त आधुनिक और अर्वाचीन हैं। इन पुराणों से पूर्व न श्रुति और न स्मृति में—कहीं भी अवतारवाद

की गई तक नहीं थी। अतः सिद्ध हुआ कि कृष्ण को ईश्वरीय अवतार घोषित करना एक नवीन कल्पना थी।

रामायण और महाभारत में जैसा कि पूर्व भी कहा जा चुका है, यदि कहीं अवतार का संकेत भी मिलता है तो वह नवीन और प्रक्षिप्त है। ग्रन्थ की मूल भावना में मेल न खाने के कारण वह ग्रन्थकार के आशय के विरुद्ध ठहरता है और इसलिए भी वह नवीन पण्डितों का मिश्रण ही सिद्ध होता है। और जिन पुराणों में उनका उल्लेख मिलता है उनका तो निर्माण ही अवतारवाद, मूर्तिपूजा, तीर्थ, व्रत, प्रायश्चित्त आदि साम्प्रदायिक आचार विचार की प्रतिष्ठा के लिये हुआ था।

यहाँ कृष्ण चरित्र की प्रथम विकृति है —उसे लौकिक धरातल से हटाकर अलौकिक पृष्ठभूमि पर खड़ा किया गया और उसके महान मानवीय रूप को भुलाकर उसे अप्राकृतिक और वायवीय बना दिया गया।

जब कृष्ण को ईश्वर मान कर उसके दिव्य अवतार की उपासना देश में प्रचलित हुई तो कृष्णोपासना के आधार पर अनेक सम्प्रदाय स्थापित हो गये। पांचरात्र, भागवत, वासुदेव आदि सम्प्रदायों की स्थिति इतिहासकारों ने स्वीकार की है।* मध्व, निम्बार्क और विष्णु स्वामी (प्रचलित नाम–वल्लभ सम्प्रदाय) आदि के नवीन सम्प्रदाय भी इसी परम्परा में आते हैं।

इन सम्प्रदायों के जन्म से पूर्व तक कृष्ण आदर्श चरित्रवान्, परम सात्विक आचार सम्पन्न और प्रतिभाशाली महापुरुष समझे जाते थे। परन्तु तान्त्रिक भावना के प्रचार के कारण वैष्णव

* इन सम्प्रदायों की विशेष जानकारी के लिये डा० रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकर का Vaishnavism Shaivism and Minor Religious Systems नामक ग्रन्थ देखना चाहिये। लेखक

सम्प्रदायों में भी वासनामूलक शृंगार का मिश्रण होने लगा। महाभारत के कृष्ण जहाँ मर्यादापोषक, संयमी और सत्वगुण सम्पन्न हैं, वहाँ पुराणों, काव्य ग्रन्थों एवं अन्य साम्प्रदायिक ग्रन्थों में उनके जीवन को अत्यन्त विलासपूर्ण, स्थूल वासनायुक्त और रोमान्टिक बनाने का प्रयत्न किया गया है। भागवत और ब्रह्मवैवर्त जैसे पुराणों, जयदेव के गीत-गोविन्द जैसे काव्यों और गोपाल सहस्रनाम जैसे स्तोत्रों में सर्वत्र कृष्ण के परदारगामी स्वरूप का चित्रण किया गया है। "गोपालः कामिनीजारः चौरजार शिखामणिः" जैसी उक्तियाँ इन्हीं ग्रन्थों की हैं। भागवत में परदारगमन के संकेत स्पष्ट हैं जिनके कारण राजा परीक्षित को कृष्ण के चरित्र के विषय में शंका होती है, परन्तु शुकदेव जी, समर्थ व्यक्ति की समर्थता की दुहाई देकर ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ बैठते हैं। ब्रह्मवैवर्त पुराण में राधा का समावेश करा कर विकृति के इस पहलू को और भी उभाड़ दिया गया है। वहाँ राधा कृष्ण के संभोग का जो कुत्सित वर्णन मिलता है, उसे देख कर लज्जा भी लज्जित होती है।*

* शिव धर्म पुराण में कृष्ण को स्पष्ट रूप से कामी, दुश्चरित्र और लंपट बताया गया है:–

तस्मात् कलियुगे भूयो गृहीत्वा जन्म केशव ॥
वसुदेवस्य देवक्यां मथुरायां महाबलः ।
बालस्तु गोपकन्याभिर्वने क्रीड़ा चकार सः ॥
दश लक्षाणि पुत्राणां गोपालानां ससर्ज ह ।
ततस्तु यौवनाक्रान्तो रुक्मिणीं प्रददर्श ह ॥
विवाहयित्वा पुत्रांश्च प्रद्युम्नाद्यांश्च निर्ममे ।
तथापि नरकं दैत्यं प्राग्ज्योतिषमति वलात् ॥
हत्वा स्त्रीणां सहस्राणि षोडशैव जहार सः ।

जब धर्मग्रन्थ कहे जाने वाली पुस्तकों का यह हाल है तो अन्य लोगों की तो कथा ही क्या ? निरंकुश समझे जाने वाले कवियों ने तो मर्यादा के बन्धनों को पूर्णतः तोड़ दिया और वे कृष्ण चरित्र के साथ खुल कर खेले। कृष्ण का यह रसिक रूप इतना लोकप्रिय हुआ कि बाल की खाल निकालने के लिये प्रसिद्ध नैयायिकों के ग्रन्थों का मंगलाचरण भी इस प्रकार होने लगा—

नूतन जलधर रुचये गोपवधूटी दुकूल चौराय ।
तस्मै कृष्णाय नमः संसार महीरुहस्य बीजाय ॥*

मैथिल-कोकिल विद्यापति और बंगाली कवि चण्डीदास ने राधा कृष्ण के नाम पर उद्दाम शृंगार की जो धारा बहाई, उससे सारा पूर्वी भारत आप्लावित हो गया। मध्य देश में रसिक कवि सूरदास ने वल्लभ सम्प्रदायानुयायी होते हुये भी (जिसमें कृष्ण के केवल बाल स्वरूप की उपासना का विधान है) राधा कृष्ण के प्रेम की योजना की और यद्यपि वे विद्यापति आदि कवियों से अधिक सुरुचि पूर्ण कविता लिख सके, परन्तु हिन्दी के आगे आने वाले कवियों को तो पूरी स्वच्छन्दता प्रदर्शित करने का अवसर मिल ही गया।

* तासां रतिफलं भुक्त्वा पुत्राणां नवतिं तथा ॥
सहस्राणि ससर्जाशु मत्स्ये चाण्ड महाद्भुतम् ।
स्त्रीणां तथापि नो तृप्तो दिव्यैना तु रतर्यदा ॥
तदा राधा स्त्रियं काचिल्लिशि धैर्याद् धर्षयत् ।
तथापि परनारीणां लम्पटो नित्यमेव हि ॥ अ० ९।६. . .

यह पुराणवर्णित कृष्ण की लम्पटताओं का नग्न वर्णन है। क्या अब भी इसमें सन्देह है कि पुराणों ने कृष्ण चरित्र को कलंकित करने में कुछ कसर रक्खी है ?

तभी तो रीतिकाल के कवियों के लिये कृष्ण एक सामान्य रसिक नायक की भावभूमि पर उतर आये और विलास लीलाओं के चित्रण में कुशल शृंगारी कवियों के लिये इनके चरित्र से खिलवाड़ करना अत्यन्त सरल हो गया। इस काल की कविता में कृष्ण-चरित्र की दुर्गति अपनी पराकाष्ठा को पहुंच गई। आचार्य कहे जाने वाले कवि भिखारीदास के शब्दों में "आगे के कवि रीझिहैं तो कविताई, न तु राधिका-कन्हाई सुमिरन को बहानो है।" इस प्रकार भक्ति की झीनी आड़ में राधा कृष्ण की विलास केलि का नग्न चित्रण करना कवियों का नित्य प्रति का कर्तव्य हो गया। यह कृष्ण चरित्र में समाविष्ट होने वाली दूसरी मलिनधारा है, जिसने इस पवित्र मंदाकिनी को अपनी कलुषता से अपवित्र किया है। इससे हिन्दू धर्म द्वेषी ईसाइयों को हमारे देवी देवताओं और महापुरुषों को बदनाम करने का कैसा सुलभ साधन मिला है और सामान्य अशिक्षित वर्ग में कृष्ण के प्रति कैसी गर्हित धारणायें बद्धमूल हुई हैं, इनकी चर्चा प्रसंगान्तर में आगे की जायगी।

कृष्ण चरित्र विषयक एक और भ्रान्ति है जिसने लोगों के मस्तिष्क में जड़ जमा रक्खी है और जिसके फल स्वरूप लोग कृष्ण को धोखे बाज, कपटी, युद्धलिप्सु और महाभारत के भीषण नर संहार का मूल कारण समझने की भयंकर भूल कर बैठते हैं। इस भ्रान्ति का कारण महाभारत की घटनाओं को प्रकरणानुकूल न समझना ही है। कृष्ण की शान्ति प्रियता, विश्वबंधुत्व की भावना और युद्ध के प्रति सहज विराग की भावना लोगों से विस्मृत हो चुकी है। उन्हें यह पता नहीं कि कृष्ण युद्ध की अनिवार्यता में विश्वास नहीं करते थे, अपितु इसे वे अपरिहार्य परिस्थिति में अंतिम साधन के रूप में ही स्वीकार करने के लिये तभी उद्यत होते थे जब कि समझौते के सभी साधन व्यर्थ हो जायं। कृष्ण के लोक पावन,

मंगलकारी चरित्र की यह निकृष्ट व्याख्या है कि उन्हें धूर्ततापूर्ण चालों वाला कपटी राजनीतिज्ञ समझा जाय। इन्हीं भ्रममूलक धारणाओं के कारण आज कृष्ण का वास्तविक स्वरूप अंधकाराच्छन्न हो रहा है और हम उसकी कल्याणकारी वृत्तियों को हृदयगम करने में अपने आपको असमर्थ पा रहे हैं।

इसका सारा उत्तरदायित्व पुराण और काव्य लेखकों पर है। यह मानने से कोई इनकार नहीं करेगा कि कृष्ण चरित्र को विकृत और दूषित करने में पुराण लेखकों का भारी हाथ रहा है। इसका स्वाभाविक परिणाम जो होना था, वह होकर रहा। अर्थात सामान्य जनों में यह भ्रान्त धारणा प्रचलित हो गई कि कृष्ण परले सिरे के धूर्त, चालबाज, लम्पट और व्यभिचारी थे और तारीफ यह कि वही जनता उन्हें परमेश्वर का अवतार भी मानती है।

काव्य पुराण वर्णित कृष्ण चरित्र का ईसाई मत प्रचारकों ने बहुत लाभ उठाया है। इसका कुछ विस्तृत वर्णन यहाँ देना अनुचित न होगा। यूरोपीय जातियों के भारत में प्रवेश के साथ ही ईसाई प्रचारकों ने भी भारत को अपना कार्यक्षेत्र बनाया। यहाँ के देशवासियों को स्वधर्म, स्वभाषा और स्वसंस्कृति से विमुख करने के लिये उन्होंने किन २ साधनों को अपनाया इसका विस्तृत वर्णन देना यहाँ आवश्यक नहीं है परन्तु यह ध्यान रहे कि पुराण कथित हिन्दू देवी देवताओं की चारित्रिक त्रुटियों और उनके आचार सम्बन्धी दोषों का निदर्शन कराने वाली अनेक छोटी बड़ी पुस्तकों को प्रकाशित कर अशोध जनता में प्रचारित करना और इस प्रकार उनके हृदय में अपने परम्परागत विश्वास के प्रति अनास्था उत्पन्न कराना भी उनके कार्यक्रम का एक प्रमुख अंग था और अब भी है। इस प्रकार की अनेक घृणित पुस्तकें समय २ पर ईसाई प्रचार केन्द्रों से प्रकाशित होती रही हैं।

इन पुस्तकों में पुराणों और काव्यों के आधार पर हिन्दुओं के मान्य देवताओं और विशेषतः कृष्ण की खूब छीछालेदर की जाती थी और उन्हें व्यभिचारी, परस्त्री गामी और परले सिरे का धूर्त तथा कपटी बताया जाता था। इस कथन को सिद्ध कर देने के लिये हम ईसाई प्रचारकों के ग्रन्थों से निम्न उदाहरण देना आवश्यक समझते हैं। बिशप कोल्डवैल (Bishop Coldwell) ने लिखा है-"श्रीकृष्ण के जीवन के विषय में जो कथायें पुराणों में बताई जाती हैं, उनका हिन्दू युवकों के चरित्र का नाश करने और उनकी कल्पनाओं को भ्रष्ट करने में सबसे बड़ा भाग है।"*

रेवरेण्ड मरे मिकल एम० ए० ने अपनी पुस्तक-Letters to Indian Youths (भारतीय युवकों के नाम पत्र) मे एक स्थान पर लिखा है-"ब्रह्मा, इन्द्र, कृष्ण आदि देवों के जो इतिहास विशेषतया पुराणों मे बयान किये गये हैं, व किसी भी शुद्ध, पवित्र मन के व्यक्ति के लिये घृणाजनक हैं। मैं उनके निन्दनीय कार्यों के वर्णन से अपने पृष्ठों को कलंकित करने का साहस नहीं कर सकता। यदि ऐसे कार्य जो इन देवों के द्वारा किये गये माने जाते हैं, मनुष्यों ने किये होते तो हममें से प्रत्येक भय और लज्जा के मारे स्तब्ध हुये बिना नहीं रहता।"*

T. A. M. Gerbier नामक एक कैथोलिक पादरी ने अपनी पुस्तक Dialogues on Hindu Religion में हिन्दू देवताओं के प्रति खूब विष उगलने के पश्चात् कृष्ण के विषय में लिखा है—

When meeting a woman alone, he was in

* आर्य जगत् जालन्धर वर्ष १२, सं० ३१

* वही

दुर्जनतोष न्याय से यदि यह मान भी लिया जाय कि राधा और कृष्ण का सम्बन्ध सर्वथा आध्यात्मिक और असांसारिक है, उसमें स्थूल वासना की तनिक भी गंध नहीं है, कृष्ण और गोपियों की जिन लीलाओं का वर्णन पुराणों और काव्यों में है, वे भी सर्वथा निर्दोष हैं, आत्माराम कृष्ण का अपनी विभूतियों में केवल लीला जनित क्रीड़ा मात्र है, तो भी समस्या का हल नहीं होता। पोद्दारजी, सातवलेकरजी अथवा थियोसोफी वालों के सन्तोष के लिये हम थोड़ी देर के लिये यह सब स्वीकार कर लेते हैं, परन्तु क्या इन्होंने कभी इस बात पर भी विचार किया है कि जिन कथाओं और वर्णनों की आध्यात्मिक व्याख्या कर वे स्वयं सन्तुष्ट हो जाते हैं और शुतुरमुर्ग की तरह आँखें बन्द कर अपने आपको खतरे से बाहर समझते हैं, उन कथाओं से विधर्मी ईसाई कितना लाभ उठाते हैं? हमारे महापुरुषों के प्रति कितना घृणित प्रचार किया जाता है

तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा अर्थात् सर्वभुक् वह्नि समान तेजस्वी पुरुषों को पाप नहीं होता। ईश्वराणां वचः सत्यं तथैवाचरितं क्वचित् अर्थात् ईश्वरीय शक्ति-सम्पन्न व्यक्तियों का वचन ही मान्य होता है उनका आचरण सब काल में मान्य वा अनुकरणीय नहीं होता—इस प्रकार कुछ मान कर कुछ न मान कर उत्तर देने में शुकदेव ने परीक्षित के प्रश्नों से अपने को बचाने की चेष्टा की है। परन्तु यह सब बुद्धिमान व्यक्ति स्वीकार करेंगे कि इस प्रकार का टालमटोल का शुकदेव का उत्तर किसी प्रकार भी युक्तियुक्त और विचार सिद्ध नहीं है। फलतः यह अति बुद्धि सम्पन्न लोग चाहे अपनी विकृत और स्वकपोलकल्पित व्याख्या द्वारा रासलीला के कृष्ण की सफेदी (Whitewash) करके कुछ उज्ज्वल करने के संकल्प से बारबार कितनी ही चेष्टा करें परन्तु हम एक बार नहीं सौ बार कहेंगे कि उनकी यह चेष्टा और इस प्रकार का उद्योग मिथ्या चेष्टा और मिथ्या उद्योग मात्र है।' —विरजानन्द चरित पृ० १७०,१७१

और हमारे अशिक्षित अथवा अल्पशिक्षित भाइयों का धर्म परिवर्तन कर किस प्रकार उन्हें ईसाई बना लिया जाता है। क्या उन्होंने कभी यह भी अनुमान किया है कि इन मिथ्या कथाओं को पढ़ कर या सुन कर सामान्य वर्ग पर क्या असर पड़ता है? वस्तुतः स्थिति यह है कि उन लोगों तक न तो आपकी ये आध्यात्मिक व्याख्यायें ही पहुंचती हैं और न वे इन्हें रूपक या अलंकार ही मानते हैं। आप चाहे गोपियों को सामवेद की ऋचायें मान कर कृष्ण के साथ इनका आध्यात्मिक सम्बन्ध कराते रहिये, परन्तु जन मानस में गहराई तक पहुंच कर बद्धमूल हुई इस धारणा को आप नहीं मिटा सकते कि गोपियाँ परकीया स्त्रियाँ थीं और उनका कृष्ण के साथ अवैध सम्बन्ध था। इन जन साधारण में प्रचलित धारणाओं से हमारे जातीय चरित्र का जो भयंकर ह्रास हुआ, क्या कभी किसी ने उसका अनुमान किया है?

हमारा यह निश्चित विश्वास है कि जब तक कृष्ण के पावन चरित्र पर लगाये गये पुराणकारों के मिथ्या दोषों को स्पष्ट रूप से अस्वीकार नहीं किया जायगा, तब तक कृष्ण का वास्तविक महनीय और उदात्त चरित्र जनसमाज के सम्मुख प्रतिष्ठित नहीं किया जा सकता और न विधर्मियों के विषैले प्रचार को ही रोका जा सकता है। अनार्ष और आधुनिक ग्रन्थों को अमान्य घोषित करना ही होगा। साम्प्रदायिक उन्माद का पोषण करने वाले और आर्य आदर्शों को विकृत करने वाले पुराणों का प्रमाण जब तक किया जायगा तब तक कृष्ण के वास्तविक स्वरूप का उद्घाटन नहीं हो सकता। राष्ट्रोत्थान और चरित्र निर्माण के लिये यह नितान्त आवश्यक है।

जनमनोवृत्ति का कुछ दिग्दर्शन ऊपर कराया जा चुका है। यह विधर्मियों द्वारा किये गये घृणित प्रचार का अवश्यम्भावी

the habit of following her until he found a spot suited for his evil purpose and then he would outrage her........However abominable may be the dealings of Krishna, the Hindus are not ashamed to celebrate them in innumerable disgraceful poems. Is it not astounding that they should worship as god a person guilty of so many abominations ?*

इसी पुस्तक के ३२७ पृष्ठ पर वे फिर लिखते हैं—

"Krishna's adulteries and murders are known to the wide world." वह कृष्ण किसी स्त्री को एकान्त में पाकर उसका पीछा करता और किसी विविक्त स्थान को देख कर वहाँ उस स्त्री से अपनी काम वासना शान्त करता....कृष्ण के कार्य चाहे कितने ही घृणास्पद क्यों न हों, हिन्दू लोग अपनी अनगिनती असभ्यतापूर्ण कविताओं में उनका वर्णन करते नहीं लजाते। क्या यह आश्चर्यजनक नहीं है कि वे एक ऐसे व्यक्ति को ईश्वर मान कर पूजते हैं जो अनेक अपराधों का अभियुक्त है। कृष्ण के दुराचार और हत्याओं के कृत्य विश्व में विख्यात हैं आदि आदि।

आज हमारे पौराणिक बंधुओं द्वारा पुराण वर्णित कृष्ण चरित्र की नूतन आध्यात्मिक व्याख्यायें प्रस्तुत की जा रही हैं। गीता प्रेस गोरखपुर द्वारा प्रकाशित कल्याण पत्र के सम्पादक, लेखक तथा अन्य बंधुगण एड़ी से चोटी तक का पसीना बहा कर पुराण कथित कृष्ण चरित्र के आधार पर लगाये जाने वाले आरोपों और लांछनों का परिमार्जन करने के लिये उन कथाओं की सर्वथा नवीन,

* पृष्ठ ७१

परन्तु बुद्धिसंगत और युक्तियुक्त व्याख्या करने की धुन में हैं।* उनके परिश्रम का अभिप्राय यह है कि कृष्ण से सम्बद्ध जो उद्दाम शृंगार प्रधान और वासनोत्तेजक कथायें भागवत, ब्रह्मवैवर्त आदि पुराणों में आई हैं, उन्हें अलौकिक बताकर अथवा उन पर आध्यात्मिकता का आवरण चढा कर पुराणों को सर्वथा निर्दोष सिद्ध किया जाय।

थियोसोफीकल सोसाइटी अड्यार (मद्रास) से भी, पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर के कथनानुसार† कुछ पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं जिनमें राधा कृष्ण के सम्बन्ध को आध्यात्मिक भूमिका के आधार पर स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है।‡ प० सातवलेकर भी ब्रह्मवैवर्त आदि की अश्लील कथाओं से अनभिज्ञ बनते हुये राधा और कृष्ण के पुराणोक्त वर्णनों को सर्वथा निर्दोष, निष्पाप और भक्ति व्यञ्जक मानते हैं, यद्यपि यह नहीं माना जा सकता कि उनके जैसा बहुश्रुत और बहुपठित व्यक्ति पुराणों के अश्लील अंशों से अपरिचित है।

---

* गोपी प्रेम ले० हनुमानप्रसाद पोद्दार गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित

† आर्यमित्र २६ जून १९५२ में उक्त पंडितजी का लेख।

‡ कृष्ण चरित्र के इन्हीं नवीन व्याख्याकारों को लक्ष्य में रख कर सुप्रसिद्ध बंगाली विद्वान् देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने एक स्थान पर लिखा है—"आजकल के विकृत और वैज्ञानिक व्याख्या बहुल समय में कोई २ अति बुद्धि सम्पन्न व्यक्ति कृष्ण चरित्र के सम्बन्ध में पुस्तक और प्रबंधादि लिख कर सिद्ध करना चाहते हैं कि रासलीला के उपलक्ष्य में कृष्ण ने ब्रज की गोपियों के साथ में मैथुनादि कुछ भी नहीं किया था। रासलीला के तेपारा में परीक्षित के प्रश्नों के उत्तर में शुकदेव तक ने स्वीकार किया है, यहाँ तक कि श्रीधर स्वामी और जीव गोस्वामी प्रभृति टीकाकारों ने भी माना है कि कृष्ण ने व्रज की स्त्रियों के साथ व्यभिचार किया था।...

दुर्जनतोष न्याय से यदि यह मान भी लिया जाय कि राधा और कृष्ण का सम्बन्ध सर्वथा आध्यात्मिक और असांसारिक है, उसमें स्थूल वासना की तनिक भी गंध नहीं है, कृष्ण और गोपियों की जिन लीलाओं का वर्णन पुराणों और काव्यों में है, वे भी सर्वथा निर्दोष हैं, आत्माराम कृष्ण का अपनी विभूतियों से केवल लीला जनित क्रीड़ा मात्र है, तो भी समस्या का हल नहीं होता। पोद्दारजी, सातवलेकरजी अथवा थियोसोफी वालों के सन्तोष के लिये हम थोड़ी देर के लिये यह मत स्वीकार कर लेते हैं, परन्तु क्या उन्होंने कभी इस बात पर भी विचार किया है कि जिन कथाओं और वर्णनों की आध्यात्मिक व्याख्या कर वे स्वयं सन्तुष्ट हो जाते हैं और शुतुरमुर्ग की तरह आँखें बंद कर अपने आपको खतरे से बाहर समझते हैं, उन कथाओं से विधर्मी ईसाई कितना लाभ उठाते हैं? हमारे महापुरुषों के प्रति कितना घृणित प्रचार किया जाता है

'तेजीयसां न दोषाय वन्हेः सर्वभुजो यथा' अर्थात् सर्वभुक् वह्नि समान तेजस्वी पुरुषों को दोष नहीं होता। एवं 'ईश्वराणां वचः सत्यं तथैव चरितं क्वचित्' अर्थात् ईश्वरीय शक्ति-सम्पन्न व्यक्तियों का वचन ही मान्य होता है उनका आचरण सब काल में मान्य वा अनुकरणीय नहीं होता—इस प्रकार कुछ मान कर कुछ न मान कर उत्तर देने से शुकदेव ने परीक्षित के प्रश्नों से अपने को बचाने की चेष्टा की है। परन्तु यह सब बुद्धिमान व्यक्ति स्वीकार करेंगे कि इस प्रकार का टालमटोल का शुकदेव का उत्तर किसी प्रकार भी युक्तियुक्त और विचार सिद्ध नहीं है। फलतः यह अति बुद्धि सम्पन्न लेखकगण अपनी विकृत और स्वकपोलकल्पित व्याख्या द्वारा रासलीला के कृष्ण को सफेदी (Whitewash) करके कुछ उज्ज्वल करने के संकल्प से बारबार कितनी ही चेष्टा करें परन्तु हम एक बार नहीं सौ बार कहेंगे कि उनकी यह चेष्टा और इस प्रकार का उद्योग मिथ्या चेष्टा और मिथ्या उद्योग मात्र है।''—विरजानन्द चरित पृ० १७०,१७१

और हमारे अशिक्षित अथवा अल्पशिक्षित भाइयों का धर्म परिवर्तन कर किस प्रकार उन्हें ईसाई बना लिया जाता है। क्या उन्होंने कभी यह भी अनुमान किया है कि इन मिथ्या कथाओं को पढ़ कर या सुन कर सामान्य वर्ग पर क्या असर पड़ता है ? वस्तुतः स्थिति यह है कि उन लोगों तक न तो आपकी ये आध्यात्मिक व्याख्यायें ही पहुंचती हैं और न वे इन्हें रूपक या अलंकार ही मानते हैं। आप चाहे गोपियों को सामवेद की ऋचायें मान कर कृष्ण के साथ उनका आध्यात्मिक सम्बन्ध कराते रहिये, परन्तु जन मानस में गहराई तक पहुंच कर बद्धमूल हुई इस धारणा को आप नहीं मिटा सकते कि गोपियाँ परकीया स्त्रियाँ थी और उनका कृष्ण के साथ अवैध सम्बन्ध था। इन जन साधारण में प्रचलित धारणाओं से हमारे जातीय चरित्र का जो भयंकर ह्रास हुआ, क्या कभी किसी ने उसका अनुमान किया है ?

हमारा यह निश्चित विश्वास है कि जब तक कृष्ण के पावन चरित्र पर लगाये गये पुराणकारों के मिथ्या दोषों को स्पष्ट रूप से अस्वीकार नहीं किया जायगा, तब तक कृष्ण का वास्तविक महनीय और उदात्त चरित्र जनसमाज के सम्मुख प्रतिष्ठित नहीं किया जा सकता और न विधर्मियों के विषैले प्रचार को ही रोका जा सकता है। अनार्ष और आधुनिक ग्रन्थों को अमान्य घोषित करना ही होगा। साम्प्रदायिक उन्माद का पोषण करने वाले और आर्य आदर्श को विकृत करने वाले पुराणों का प्रमाण जब तक किया जायगा तब तक कृष्ण के वास्तविक स्वरूप का उद्घाटन नहीं हो सकता। राष्ट्रोत्थान और चरित्र निर्माण के लिये यह नितान्त आवश्यक है।

जनमनोवृत्ति का कुछ दिग्दर्शन ऊपर कराया जा चुका है। यह विधर्मियों द्वारा किये गये घृणित प्रचार का अवश्यम्भावी

परिणाम था कि हिन्दू जनता पुराण वर्णित कृष्ण चरित्र को सत्य स्वीकार करने लगी और उसके सम्मुख नतमस्तक हुई। इधर कथावाचकों, पुराण-पाठियों, रासलीला वालों और स्वांगधारियों ने कृष्ण की इन शृंगार लीलाओं का अत्यन्त उत्तेजक और रसमय प्रदर्शन जनता के सम्मुख किया। कहीं कृष्ण वेशधारी नट गोपियों के साथ नृत्य कर रहे हैं, कहीं वे एकान्त में राधा के पाव पलोट रहे हैं और कहीं गोपियों के साथ दही और मक्खन के बहाने-गोरस मांगने २ ढीठता का प्रदर्शन कर रहे हैं। यही था कृष्ण चरित्र जो देश के विभिन्न भागों में, विभिन्न भाषाओं में प्रदर्शित किया जा रहा था। बंगाल, मिथिला, ब्रज, राजस्थान, गुजरात, सभी कृष्ण के नटनागर स्वरूप पर मुग्ध हो रह थे और उनका सुदर्शन चक्रधारी अत्याचारियों का दलन करने वाला तथा धर्मात्माओं को अभयदान देने वाला मंगलकारी स्वरूप जनमानस से विस्मृत हो रहा था।

सामान्य जनता में आज भी कृष्ण को लेकर यही भयंकर भ्रम फैला हुआ है। आप एक सामान्य व्यक्ति (a man in the street) से कृष्ण के विषय में जिज्ञासा कीजिये, आपको वही बात मिलेगी जिसका प्रचार पादरी लोग कर चुके हैं। पोद्दार जी या सातवलेकरजी की आध्यात्मिक व्याख्यायें चाहे जनता के गले न उतर सकी हों, परन्तु उन विधर्मियों का वह विषाक्त प्रचार अवश्य ही जनमन में स्थायी बन चुका है, जिसके कारण वे कृष्ण को 'चोर जार शिखामणि' कहते लज्जित नहीं होते।

कभी २ धूर्त लोग अपनी लम्पटता और व्यभिचार की प्रवृत्ति को छिपाने अथवा उसे उचित सिद्ध करने के लिए भी निर्लज्जता पूर्वक कृष्ण का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।* ऐसा करते

समय उनकी जिव्हा को पक्षाघात क्यों नहीं हो जाता, यही आश्चर्य है, परन्तु जब भाग्य ही विपरीत हो तो किसे दोष दिया जाय ?

कुछ लोग ऐसे भी हैं जो कृष्ण को साक्षात् ईश्वरावतार मानते हैं, उनमें भक्ति भी रखते हैं, परन्तु उनके पुराणोक्त चरित्र में उन्हें कोई असंगति दिखाई नहीं देती। जब उनसे पूछा जाता है कि यह क्या गड़बड़ माला है ? इधर तो इन्हें 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' कहते हो और दूसरी ओर उन पर इस प्रकार के निन्दनीय आरोप करते हो ? उन्हें इसका कोई खेद नहीं है। वे कहते हैं "नैव दोष."–कृष्ण षोड़श कला पूर्ण भगवान् थे, अतः उनका गोपियों के साथ जार भाव कदापि निन्दनीय नहीं है। ईश्वर को कोई बुराई नहीं व्यापती–"समरथ को नहिं दोष गुसाईं।
रवि पावक सुरसरि की नाईं ॥"

हाँ, हमें उनका अनुकरण नहीं करना चाहिये। इस कोटि के व्यक्तियों की भी कमी नहीं है।

हमने यथार्थ स्थिति का दिग्दर्शन करा दिया है। इस विकृत फोड़े पर केवल फाहा रख देने वालों के बस का यह रोग नहीं है। जब तक रोगी के कल्याण को दृष्टिपथ में रखते हुये, फोड़े में नश्तर लगाकर शरीर को रोगी रखने वाले मवाद को ही निकाल कर बाहर नहीं किया जायगा, तब तक रोगी के स्वास्थ्य लाभ करने में संदेह है। कृष्ण चरित्र की वास्तविक महत्ता का अनुशीलन तभी सम्भव है, जब इसकी इस विकृत दशा को दृष्टिपथ मे रक्खा जाय।

❖❖

३. ऋषि दयानन्द का क्रान्तिकारी दृष्टिकोण

उन्नीसवीं शताब्दि में होने वाले भारतीय पुनर्जागरण (Indian Renaissance) के प्रमुख सूत्रधार ऋषि दयानन्द ने जहाँ धर्म, समाज, वर्ण, आश्रम, लोकनीति आदि अनेक क्षेत्रों में क्रान्ति का सूत्रपात किया, वहाँ उन्होंने अपनी आर्ष दृष्टि से श्री कृष्ण के चरित्र की महत्ता, दिव्यता और पवित्रता को भी स्पष्ट रूप से देखा। उसमें उन्हें आप्त गुणों की अभिव्यक्ति दृष्टिगोचर हुई। साथ ही कृष्ण विषयक जन प्रचलित धारणाओं को देखकर उन्हें अत्यन्त खेद हुआ। कृष्ण के विषय में उन्होंने निम्न मार्मिक उद्गार प्रकट किये–"देखो, श्रीकृष्णजी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उसका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है, जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मरण पर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाये हैं। दूध, दही, मक्खन आदि की चोरी और कुब्जा दासी से समागम, पर स्त्रियों से रासमण्डल, क्रीडा आदि मिथ्या दोष श्रीकृष्णजी में लगाये हैं। इसको पढ़ पढ़ा, सुन सुना के अन्य मत वाले श्रीकृष्णजी की बहुत सी निंदा करते हैं। जो यह भागवत न होता तो श्रीकृष्णजी के सदृश महात्माओं की झूठी निंदा क्यों कर होती।"*

एक अन्य विद्वान पी. टामस (P Thomas) के कथन से भी यही ध्वनित होता है कि महाभारत ही कृष्ण के यथार्थ जीवन का निर्देशक है–

* सत्यार्थप्रकाश पृ २१४ वैदिक यन्त्रालय २९ वाँ संस्करण

"In this epic (Mahabharat) he appears as a soldier and diplomate and those accounts in it which are meant to deify him are considered interpolations. It is in the Vishnu Purana and the Bhagwata that we read the various legends that speak of his divine nature." Epics Myths and Legends of India. P. 71. अर्थात् इस महाकाव्य में कृष्ण का चित्रण एक सैनिक और राजनीतिज्ञ के रूप में हुआ है और इसमें के वे वर्णन जो उन्हें ईश्वर बताते हैं, निश्चित ही प्रक्षिप्त हैं। भागवत और विष्णु पुराण में ही वे कथायें हैं जो कृष्ण को ईश्वर सिद्ध करती हैं।

ऋषि दयानन्द के इन शब्दों पर विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने जो कुछ लिखा है वह शत प्रतिशत यथार्थ है। भागवत की इन मिथ्या कथाओं का सहारा लेकर अन्य मत वालों, विशेषतः ईसाइयों ने जो हमारे महापुरुषों की निंदा की है वह किसी से छिपी नहीं है। जिस कैथोलिक पादरी ने पुराणों के आधार पर कृष्णजी पर व्यभिचार का लांछन लगाया था, उसका उल्लेख ऊपर हो चुका है। उपर्युक्त पादरी ने अपनी उसी पुस्तक के पृष्ठ ७० पर लिखा है—"It is the popular opinion, founded on the Puranas, that he (Krishna) was in the bad habit of stealing the butter of the herd-women among whom he was living"* यह प्रचलित धारणा है कि कृष्ण उन ग्वालिनो का मक्खन चुरा लेते थे, जिनके बीच वे निवास करते थे। पुराण भी इसकी साक्षी

* Ibid P. 70.

देते हैं। अतः सिद्ध हुआ है कि ऋषि ने जो कुछ कहा है वह यथार्थ है।

कृष्णचरित्र के प्रसिद्ध लेखक बंकिमचन्द्र का मत भी ऋषि दयानन्द के इस कथन से शत प्रतिशत मिल जाता है। वे लिखते हैं, "कृष्ण को हम लोग क्या समझते हैं? यही कि वे बचपन में चोर थे—दूध, दही, मक्खन, चुरा कर खाया करते थे, युवावस्था में व्यभिचारी थे, और उन्होंने बहुतेरी गोपियों के पातिव्रत्य धर्म को नष्ट किया, प्रौढ़ावस्था में वंचक और शठ थे—उन्होंने धोखा देकर द्रोणादि के प्राण लिये। क्या इसी का नाम भगवचरित्र है?"*

क्या यह आश्चर्य और साथ ही संतोष की बात नहीं है कि कृष्ण महाराज के विषय में जिस निर्णय पर सुधारक शिरोमणि दयानन्द आये उसी पर बंकिम बाबू को भी आना पड़ा, यद्यपि यह मानने के लिये कोई प्रमाण नहीं है कि बंकिम ने यह विचार दयानन्द से लिया; और क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि कृष्ण का वास्तविक चरित्र वही है जो महाभारत में भगवान् द्वैपायन की लेखनी से प्रसूत हुआ है तथा अन्य ग्रन्थों के आधार पर कृष्ण महाराज पर जो आक्षेप किये जाते हैं वे सर्वथा निर्मूल और निराधार होने के कारण अप्रामाणिक हैं।

अतः कृष्ण के वास्तविक चरित्र को लोक में पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए हमें महर्षि दयानन्द और स्व. बंकिमचन्द्र का कृतज्ञ होना चाहिये।

४. कृष्ण की ऐतिहासिकता

यूरोपीय विद्वानों ने प्राचीन संस्कृत वाङ्मय का अत्यन्त लगन और परिश्रम पूर्वक अनुशीलन किया है और उसके महत्व का संसार के समक्ष उद्‌घाटन किया है, इसके लिये वे हमारे सम्मानार्ह हैं। परन्तु साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिये कि उनका यह अध्ययन निष्पक्षपात् होकर वास्तविकता को प्रकट करने के लिये नहीं था। इसके विपरीत उन्होंने अनेक पूर्वाग्रहों (Prejudices) और बधी बधाई धारणाओं को लेकर संस्कृत वाङ्मय पर लेखनी चलाई, जिसका अवश्यम्भावी परिणाम यह हुआ कि वे भारत के यथार्थ अतीत का दिग्दर्शन कराने में असफल रहे। उदाहरण के लिये वेदकाल निर्णय*, आर्यों का आदि देश भारत के बाहर बताना, आर्यसभ्यता को जंगली और बर्बरता पूर्ण बताना तथा उससे पूर्व भारत में द्रविड संस्कृति नामक काल्पनिक संस्कृति का अस्तित्व सिद्ध करना, भारतीय इतिहास के गौरवमय पृष्ठों को कवि कल्पना बताना आदि ऐसी बातें हैं जो यूरोपीय विद्वानों के एकांगी और पक्षपात पूर्ण अध्ययन के ज्वलन्त प्रमाण हैं।

इन्हीं विद्वानों की यह धारणा है कि महाभारत का युद्ध कुरु पांचालों का युद्ध था और पाण्डव कवियों की कल्पना हैं।† व्हीलर पाण्डवों की कथा को Fiction मानता है और कृष्ण तथा पाण्डवों के घनिष्ठ सम्बन्ध को इस आधार पर मिथ्या बताता है

* मैक्समूलर वेदों का काल ईसा से १०००—१२०० वर्ष पूव मानते हैं।

† वेबर, मोनियर विलियम्स, रमेशचन्द्रदत्त।

कि द्वारिका और हस्तिनापुर के बीच की भौगोलिक दूरी लगभग १६०० मील है, अतः यह सामीप्य असम्भव है। फ्रान्सीसी विद्वान बोरनफ (Bournouf) कृष्ण की ऐतिहासिकता का इस आधार पर निषेध करते हैं, कि बौद्ध शास्त्रों में उनका उल्लेख नहीं है। वे इतना सोचने का कष्ट नहीं उठाते कि वैदिक धर्म विद्वेषी बौद्ध, कृष्ण का उल्लेख क्यों करने लगे ?

इसमें भी भयंकर एक और धूर्तता है जिसकी ओर बंकिम ने हमारा ध्यान आकर्षित किया है। उनका कथन है कि भारत के गौरव की अभिवृद्धि करने वाली बातों को तो यूरोपीय विद्वान् मिथ्या कल्पना या अलंकार योजना कह कर उड़ा देना चाहते हैं परन्तु यदि कोई बात भारतीयों को कलंकित करने वाली होती है तो उसकी सत्यता की डिंडिम घोष करते नहीं थकते। उदाहरण के लिये, "भारत के पाण्डव जैसे वीर पुरुषों की कथा मिथ्या है, और पाण्डव कवि की कल्पना मात्र हैं, परन्तु पाण्डव पत्नी द्रौपदी का पांच पतियों से विवाह होना सत्य है, क्योंकि इससे यह सिद्ध होता है कि पुराने भारतवासी असभ्य थे और उनमें स्त्रियों का बहुविवाह प्रचलित था।"*

यूरोपीय मनीषियों के इस पक्षपातपूर्ण और पूर्वाग्रहयुक्त अनुशीलन का एक अवश्यम्भावी परन्तु भयंकर परिणाम यह भी निकला कि उनके शिष्य भारतीय पण्डितों, पुरातत्त्वविदों और प्राच्यविद्या के प्रेमियों (Orientialists) ने अपने गौरांग गुरुओं की धारणाओं को अक्षरशः सत्य स्वीकार कर लिया। फलस्वरूप, अपने स्वतंत्र अध्ययन और अन्वेषण के पश्चात् भी वे भारतीय राष्ट्र के गौरव की वृद्धि के स्थान पर उसे हीनतर ही सिद्ध

---

* कृष्ण चरित्र पृ० १०

करते रहे। राजेन्द्रलाल मित्र, रमेशचन्द्र दत्त, तिलक, आर. जी भाण्डारकर आदि से जाने अनजाने स्वदेश के गौरव का ह्रास ही हुआ है। ऐसे लोग अन्वेषण कार्य में भारतीय पद्धति को स्वीकार नहीं कर सके थे। अविकसित भाषा विज्ञान, असिद्ध विकासवाद और अपूर्ण नृतत्त्व विज्ञान आदि के आधार पर प्राचीन भारत के विषय में उन्होंने जो धारणायें बनाई हैं, वे अधिकाश में कपोल कल्पित मिथ्या और अधूरी हैं। ऐसे ही लोग कृष्ण जैसे तेजस्वी, पराक्रमी और प्रखर चरित्रवान् व्यक्ति की ऐतिहासिकता में सदेह करने लगे और उसे कवियों की आदर्श कल्पना बताने लगे। स्वाभिमान के पतन का इससे अधिक उदाहरण और क्या हो सकता है कि महात्मा गाधी जैसे विचारशील परन्तु अपरिपक्व शास्त्रीय ज्ञान वाले व्यक्ति भी महाभारत के युद्ध और कृष्ण को रूपक से अधिक महत्त्व नहीं देते थे। उन्होंने तो एक कदम और आगे बढ़कर रामायण और राम को भी अलकार कहना शुरू कर दिया। उनके अनुसार गोस्वामी तुलसीदास ने इस कथा के द्वारा मानवता को सदेश दिया है।*

महाभारत और कृष्ण के विषय में उन्होंने अपने गीता के 'अनासक्तियोग' नामक गुजराती भाष्य में लिखा है—

"सन् १८८८-८९ मा ज्यारे गीतानु प्रथम दर्शन थयु त्यारे ज मने एम लाग्यु के आ ऐतिहासिक ग्रन्थ नथी, पण तेमा भौतिक युद्ध ना वर्णन ने निमित्ते प्रत्येक मनुष्य ना हृदय नी अदर निरतर चालता द्वन्द्व युद्ध नु ज वर्णन छै। मानुषी योद्धाओं नी रचना हृदयगत युद्ध ने रसिक बनाववाने सारु घडेली कल्पना छै। महाभारत ग्रन्थ ने हुँ आधुनिक अर्थ मा इतिहास नथी

* 'राम ऐतिहासिक महापुरुष थे' विजयदशमी विशेषाक—और अर्जुन २००० वि०

गणातो ' गीता ना कृष्ण मूर्तिमंत शुद्ध सम्पूर्ण ज्ञान छे पण काल्पनिक छे ' मात्र सम्पूर्ण कृष्ण काल्पनिक छे, सम्पूर्णावतार नुं पाछल थी थयेलुं आरोपण छे।''* अर्थात् सन १८८८–८९ में जब मैंने गीता का प्रथम दर्शन किया तो मेरे मन में ऐसा लगा कि यह ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं है। परन्तु इसमें भौतिक युद्ध को निमित्त बना कर प्रत्येक मनुष्य के हृदय में सदा चलने वाले द्वन्द्व युद्ध का ही वर्णन है। मानुषी योद्धाओं की रचना हृदयगत युद्ध को रोचक बनाने के लिये मनगढन्त कल्पना है। महाभारत को मैं आधुनिक अर्थों में इतिहास नहीं गिनता। गीता के कृष्ण मूर्तिमन्त शुद्ध सम्पूर्ण ज्ञान हैं, परन्तु काल्पनिक हैं—सम्पूर्ण कृष्ण काल्पनिक हैं—अवतार का आरोपण पीछे से किया गया है।

आगे गीताभीष्य का प्रारम्भ करते हुये 'धर्म क्षेत्रे' इत्यादि श्लोकों पर गांधी जी लिखते हैं—"आ शरीर रूपी क्षेत्र धर्म क्षेत्र छे, केम के ओ मोक्ष नु द्वार थई शके छे। पाप मां तेनी उत्पत्ति छे अने पाप नुं ओ भाजन थई रहे छे, तथी ते कुरुक्षेत्र छे। कौरव एटले आसुरी वृत्तियों, पाण्डुपुत्र एटले दैवी वृत्तिओ। प्रत्येक शरीर मां सारी अनेनठारी वृत्तिओ वच्चे युद्ध चाल्या ज करे छे। ओम कोण नथी अनुभवतुं।''* अर्थात् यह शरीर रूपी क्षेत्र ही धर्म क्षेत्र है क्यों कि यह मोक्ष का द्वार हो सकता है। पाप मे इसकी उत्पत्ति है और पाप का भाजन हो रहा है इसलिये यह कुरुक्षेत्र है। कौरव-यह आसुरी वृत्तियाँ हैं। पाण्डुपुत्र दैवी वृत्तियाँ हैं। प्रत्येक शरीर में अच्छी और बुरी वृत्तियों के बीच युद्ध चलता रहता है, इसे कौन नहीं अनुभव करता ?

स्पष्ट है कि गाधी जी महाभारत के अप्रतिम सूत्रधार श्रीकृष्ण

* अनासक्तियोग—नवजीवन प्रकाशन १९८९ पृ० ५, ६, ७ प्रस्तावना

* अनासक्तियोग (अ० १ श्लो० १ पर नोट)

और उनके युद्ध सम्बन्धी उपदेशों में आस्था नहीं रखते। वे स्पष्ट रूप से महाभारत और गीता, कौरव, पाण्डव और कृष्ण आदि को अनैतिहासिक, फलतः काल्पनिक रूपक मानते हैं। दबी जबान से यह भी कहते हैं कि आधुनिक अर्थों में महाभारत ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं है अथवा उनके कथन से कृष्ण नाम के अवतारी (और ऐतिहासिक) पुरुष का निषेध नहीं होता। यहाँ हमें गांधीजी के उस मनोविज्ञान का पता लगाना है जिससे प्रभावित होकर उन्होंने राम, कृष्ण आदि ऐतिहासिक पात्रों और रामायण, महाभारत आदि इतिहास ग्रन्थों को काल्पनिक बताया और उनके ऐतिहासिक अस्तित्व या महत्व को स्वीकार नहीं किया।

गांधीजी के इस विचार का मूल हमें उनकी स्वतःकल्पित अहिंसा सम्बन्धी नीति में मिलता है। गांधीजी की अहिंसा नीति चाहे बौद्धों और जैनों की अहिंसा भावना से अधिक व्यापक और पूर्ण क्यों न हो, परन्तु वह प्राचीन वैदिक ग्रन्थों, यथा वेद, उपनिषद्, गीता, मनुस्मृति और योग दर्शन में प्रतिपादित अहिंसा से भिन्न है। वैदिक आदर्श के अनुसार निवृत्तिमार्ग का अनुसरण करने वाले संन्यासी परिव्राजकों के लिये भूतदया, विश्वमैत्री और पूर्ण अहिंसा भावना के पालन पर जोर दिया गया है, परन्तु सामान्य पुरुषों एवं देश के शासक वर्ग के लिये अत्याचार से स्वयं बचने और प्रजा को बचाने के लिये शस्त्र ग्रहण का स्पष्ट आदेश है। गांधीजी अपने आदर्शवाद की धुन में परिव्राजकों और योगियों वाली अहिंसा को सर्वत्र प्रचलित करना चाहते थे जो मानव-प्रकृति को देखते हुये असम्भव है। इसी स्वकल्पित अहिंसा सिद्धान्त को गीता, महाभारत आदि ग्रन्थों पर मंढ़ने के लिए गांधीजी को महाभारतीय युद्ध को दैवी और आसुरी मनोवृत्तियों के युद्ध का रूपक और कृष्ण को भी मूर्तिमन्त ज्ञान का

आलंकारिक वर्णन मानना पड़ा। परन्तु यह तो मनमोदक के अतिरिक्त कुछ नहीं है-मुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ता हरीतकी-मुंह ही तो है, हम चाहे हरें को दस हाथ लम्बी ही बतायें। कुछ वर्षों बाद शायद गांधीजी के सिद्धान्तों की भी यही गति हो और लोग उन्हें भी काल्पनिक ही मानने लगें, तो कोई क्या कर सकता है। इस तरह से ऐतिहासिक तथ्यों को भुठलाया नहीं जा सकता।

कृष्ण की ऐतिहासिकता महाभारत की प्रामाणिकता पर निर्भर है। यदि महाभारत का ऐतिहासिक महाकाव्य भारतीय इतिहास के लिये प्रामाणिक आधार के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है तो उसके प्रमुख नायक कृष्ण महाराज की ऐतिहासिक स्थिति के विषय में सदेह रहित होकर विश्वास किया जा सकता है। अत. यहाँ महाभारत के ऐतिहासिक महत्त्व पर विचार करना आवश्यक है क्यो कि ऐसा किये बिना कृष्ण चरित की वास्तविकता संदेहास्पद ही रहेगी।

रामायण और महाभारत भारतीय परम्परा के प्रमुख ऐतिहासिक ग्रन्थ स्वीकार किये गये हैं। यद्यपि पाश्चात्य दृष्टिकोण के इतिहास लेखकों ने उनको उचित महत्व नहीं दिया है। ऐसे लोगों का कथन है कि महाभारत में असत्य, असम्भव और अनैतिहासिक घटनाओं का बाहुल्य है अत. उसे प्रामाणिक इतिहास कैसे माना जा सकता है? उनके इस कथन में कुछ तथ्य अवश्य है, क्योंकि अनेक प्रक्षिप्त अंशों के समाविष्ट हो जाने के कारण उसका वास्तविक स्वरूप कुछ विकृत अवश्य हो गया है परन्तु इससे उसके ऐतिहासिक महत्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती। यूरोपियन विद्वानों द्वारा प्रामाणिक समझे जाने वाले रोमन, ग्रीक और मुसलमानी इतिहास ग्रन्थों में भी नाना असम्भव एवं अस्वाभाविक घटनाओं का समावेश हो गया है, परन्तु वे प्रमाण

कोटि से बहिष्कृत नहीं समझे जाते, फिर महाभारत पर ही उनकी वक्र दृष्टि क्यों है ?

दूसरी बात यह है कि महाभारत एक छन्दोबद्ध काव्य है यद्यपि इतिहास की दृष्टि से भी उसका महत्व कम नहीं है। पाश्चात्यों ने इसे श्लोकबद्ध होने के कारण epic (महाकाव्य) कहा है और उनकी दृष्टि में epic का कोई ऐतिहासिक मूल्य नहीं। पाश्चात्य परिपाटी के अनुसार इतिहास ग्रन्थ पद्य में नहीं लिखे जाते अतः इस पद्य रीति में लिखे गये ग्रन्थ को इतिहास मानने में संकोच होता है परन्तु यह उनकी भारतीय वाङ्मय की विशेषताओं से अनभिज्ञता सूचित करता है। संस्कृत साहित्य की यह विशेषता है कि उसमें लगभग सभी विषयों के ग्रन्थों की रचना पद्य के माध्यम से हुई है। गद्य बहुत कम लिखा गया है और जो गद्य की रचनायें मिलती भी हैं, वे या तो टीका या भाष्यों के रूप में हैं अथवा कथा कहानी जैसे गद्य काव्य के लिये। मौलिक ग्रन्थ चाहे वे गणित, ज्योतिष, विज्ञान, आयुर्वेद, कोष आदि भौतिक विषयों से सम्बन्ध रखते हों, अथवा दर्शन, धर्म और आध्यात्म से, उन सभी की रचना पद्य में हुई है। संस्कृत वाङमय का अधिकांश भाग अनुष्टुप छन्द में लिखा गया है। अतः केवल श्लोक बद्ध होने के कारण ही महाभारत के ऐतिहासिक महत्त्व से इन्कार नहीं किया जा सकता। यह तो महाकवि व्यास की काव्यप्रतिभा का अनोखा दृष्टान्त है कि उन्होंने भारतीय इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना को पद्यबद्ध रूप दिया।

वेबर जैसे दुराग्रही विद्वान महाभारत की प्राचीनता को सदेह की दृष्टि से देखते हैं और उसकी अर्वाचीनता सिद्ध करने के लिये एक विचित्र हेतु देते हैं। उनके कथनानुसार यूनानी राजदूत मेगास्थनीज ने अपनी यात्रा पुस्तक में महाभारत का उल्लेख नहीं

किया अत महाभारत की रचना ईस्वी सन् की प्रथम शताब्दि के आस पास हुई है। वेबर के शब्द ये हैं –"Since Megasthenes says nothing of this epic, it is not improbable hypothesis that its origion is to be placed in the interval between his time and that of Chrysostom (Some European visitor to India who heard Mahabharat from a sailor) for what ignorant sailor took note of, would hardly have escaped his observation"* अर्थात् मेगास्थनीज महाभारत के विषय में कुछ नहीं कहता, इसलिये यह अनुमान लगाना असम्भव नहीं होगा कि इसका निर्माण काल मेगास्थनीज और Chrysostom (कोई यूरोपियन यात्री, जिसने किसी नाविक से महाभारत की कथा सुनी) के समय के बीच में है। यह अनुमान इसलिये सत्य है कि एक साधारण नाविक को जिस ग्रन्थ का ज्ञान है, वह मेगास्थनीज की दृष्टि से ओझल कैसे रह पाता। इसी निस्सार हेतु को देकर वेबर महोदय महाभारत की अर्वाचीनता सिद्ध करना चाहते हैं।

मेगास्थनीज का हवाला देते समय वेबर साहब यह भूल जाते हैं कि मेगास्थनीज लिखित सम्पूर्ण भारत वृत्तान्त वर्तमान में उपलब्ध नहीं है। अन्य ग्रन्थों में उनके जो २ उद्धरण मिले हैं उन्हें ही एकत्रित कर प्रकाशित कर दिया गया है और वही 'मेगास्थनीज की भारत यात्रा' के नाम से प्रसिद्ध है। अत मूल ग्रन्थ के अभाव में वेबर साहब का का यह निर्णय दे देना कि उसमें महाभारत का

---

* History of Sanskrit Literature Eng Trans P 196 Trubner & co 1882

उल्लेख नहीं मिलता, अनुचित है और ऐसे निर्बल हेतु से महाभारत की अर्वाचीनता भी सिद्ध नहीं हो सकती।

जो लोग महाभारत के पात्रों को रूपक 'अलंकार' का सहारा लेकर काल्पनिक मानते हैं, उनकी कुछ चर्चा ऊपर की जा चुकी है। उन्हें ज्ञात होना चाहिये कि वास्तविक इतिहास और रूपकमयी रचना में अंतर होता है। वेदादि शास्त्रों में इन्द्र, वृत्र, उर्वशी पुरूरवा आदि के अनेक रूपक मिलते हैं परन्तु इससे यह निष्कर्ष निकालना अनुचित होगा कि प्राचीन ग्रन्थों में रूपक के सिवा कुछ है ही नहीं। इन्हीं विद्वन्मन्यों ने राम और सीता की शाब्दिक व्युत्पत्ति के आधार पर रामायण की कथा को कृषि कर्म का रूपक देकर समाप्त करना चाहा, परन्तु इन क्लिष्ट कल्पनाओं से वास्तविकता का दिग्दर्शन नहीं हो सकता। बंकिम बाबू ने ऐसे 'रूपक प्रिय' विद्वानों का मजाक उड़ाते हुये लिखा है कि 'लस्' धातु से लासन साहब (एक पाश्चात्य संस्कृतज्ञ) की व्युत्पत्ति होती है और उनका व्यक्तित्व और कृतित्व सभी रूपक ही सिद्ध होता है।*

पाश्चात्य विद्वानों की इन धारणाओं के विपरीत महाभारत के प्रसिद्ध अनुशीलनकर्ता रायबहादुर चिंतामणि विनायक वैद्य ने अपने "महाभारत मीमांसा" नामक ग्रन्थ में उपर्युक्त वेबर, रमेशचन्द्र दत्त, हौलर आदि की कल्पनामूलक धारणाओं का खण्डन करते हुये भारतीय युद्ध तथा पाण्डवों एवं कृष्ण के अस्तित्व को सप्रमाण सिद्ध किया है। † महाभारत के ऐतिहासिक मूल्यांकन के लिये वैद्य महोदय का यह ग्रन्थ अत्यन्त उपादेय है।

महाभारत के अतिरिक्त अन्य प्राचीन ग्रन्थों में भी भारतीय युद्ध, पाण्डव और कृष्ण सम्बंधी अनेक निर्देश मिलते हैं, जिससे

* कृष्ण चरित्र पृ० ४०

† महाभारत मीमांसा (संक्षिप्त संस्करण) सरस्वती सिरीज पृ० २८-३२

इनकी ऐतिहासिकता पर पर्याप्त प्रकाश पडता है। यहाँ पाणिनीय अष्टाध्यायी के कुछ सूत्रों को उद्धृत कर यह सिद्ध किया जायगा कि पाणिनि के काल मे महाभारत का लोगों को ज्ञान था और वे उसके पात्रों से भली भांति परिचित थे। पाणिनि की तिथि पर्याप्त प्राचीन है, यद्यपि वेबर जैसे लोगों ने उन्हें आधुनिक सिद्ध करने की निष्फल चेष्टा की है। यूरोपीय विद्वान् गोल्टस्टूकर ने पाणिनि का समय ईसा से १०००-११०० वर्ष पूर्व माना है। प० युधिष्ठिर मीमांसक ने अपनी अपूर्व शोध और सप्रमाण विवेचन के आधार पर पाणिनि को इससे भी अधिक प्राचीन ठहराया है।* पाणिनि के निम्न सूत्रों में महाभारत सम्बन्धी संकेत मिलते हैं—

सूत्र ६।२।३८ में 'भारत' शब्द पडा है जो प्रसिद्ध महाभारत का सूचक है।

'गवि युधिभ्यां स्थिर' ८।३।९५ मे युधिष्ठिर का संकेत है। पाण्डु पत्नी कुन्ती की ओर संकेत करने वाला निम्न सूत्र है— स्त्रियामवन्ति कुन्ति कुरुभ्यश्च' ४।१।१७४ इसी प्रकार नकुल और द्रोण का उल्लेख क्रमश ६।३।७५ और ४।१।१०३ में है। कृष्ण और अर्जुन का साथ २ उल्लेख ४।३।९८ सूत्र में है, जहाँ कहा गया है—

'वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन्'।

उपनिषदों का काल तो पाणिनि से भी प्राचीन है। ब्राह्मण ग्रन्थों का सम्पादन महाभारत के समय मे और उसके कुछ आगे पीछे हुआ था।† उपनिषद भी अधिकांश में इन्हीं ब्राह्मण ग्रन्थों के ही भाग हैं जिनमें अध्यात्म विद्या का वर्णन है। छान्दोग्य उपनिषद् में देवकीपुत्र कृष्ण और उनके गुरु घोर आंगिरस नामक

*संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास भाग १

† वैदिक वाङ्मय का इतिहास भाग २ प० भगवद्दत्तजी लिखित

ऋषि का उल्लेख मिलता है। उपनिषद् का पाठ इस प्रकार है—अथैतद् घोर आंगिरसः कृष्णाय देवकीपुत्राय उक्त्वा उवाच। अपिपास एव स बभूव।❀ कौषीतकी ब्राह्मण में भी जो निश्चय ही छान्दोग्य उपनिषद् से प्राचीन है, घोर आंगिरस और देवकीपुत्र कृष्ण का वर्णन मिलता है। हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि ये हमारे चरितनायक वासुदेव कृष्ण ही हैं। अतः कृष्ण की ऐतिहासिकता और प्राचीनता निर्विवाद है।

मेगास्थनीज ने भारत के प्रसिद्ध देवता का वर्णन हिरक्लीज के नाम से किया है। वे श्रीकृष्ण ही हैं। उसने लिखा है-हिरक्लीज की पूजा शौरसेनी लोग करते हैं और इन लोगों का मिथोरा (मथुरा) नाम का मुख्य शहर है।†

उपर्युक्त प्रमाणों से भली भांति सिद्ध होता है कि कृष्ण एक ऐतिहासिक महापुरुष थे। प्राचीन भारतीय वाङ्मय में उनका सर्वत्र उल्लेख मिलता है। पाश्चात्यों ने यद्यपि उन्हें अनैतिहासिक और काल्पनिक सिद्ध करने की चेष्टा की है, परन्तु वे अपने प्रयास में सर्वथा असफल हुये हैं। यदि कृष्ण नाम का कोई पुरुष कभी हुआ ही न होता, तो उसके पीछे एक विशिष्ट परम्परा का जन्म न हुआ होता और न वह करोड़ों व्यक्तियों के हृदय में पूजनीय देवता की तरह आदर का स्थान प्राप्त करता।

❀ छान्दोग्य उपनिषद्—३।१६।६

† महाभारत मीमांसा सरस्वती सिरीज़ पृ० ३१,

५. कृष्ण चरित्र के मौलिक उपादान

कृष्ण चरित्र का उल्लेख महाभारत, हरिवंश और पुराणों में मिलता है। इनमें महाभारत का वर्णन सर्वाधिक प्रामाणिक और महत्वपूर्ण है। ऋषि दयानन्द ने भी वास्तविक कृष्ण चरित्र जानने का उपाय महाभारत को ही बताया है परन्तु प्रश्न उत्पन्न होता है, क्या वर्तमान में उपलब्ध महाभारत अपने इस रूप में प्रारम्भ में ही था अथवा उसकी कायवृद्धि समय २ पर होती रही है। इस बात से कोई इनकार नहीं करेगा कि समय २ पर महाभारत में मिलावट की गई है और इन प्रक्षेपकर्ताओं ने कृष्ण चरित्र को भी अछूता नहीं छोड़ा है। कृष्ण को ईश्वर का अवतार घोषित करने के अनेक प्रयत्न इन मिश्रण कर्ताओं की ओर से हुये हैं। परन्तु फिर भी महाभारत को हम सावधानता पूर्वक कृष्ण चरित्र का वास्तविक स्वरूप जानने के लिये प्रयोग में ला सकते हैं। परन्तु ऐसा करने से पूर्व महाभारत के विद्यमान स्वरूप का हाल जानना भी आवश्यक है।

ऋषि दयानन्द ने महाभारत के विस्तार की कथा का वर्णन अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के ११ वें समुल्लास में इस प्रकार किया है-"राजा भोज के बनाये सञ्जीवनी इतिहास में स्पष्ट लिखा है कि व्यासजी ने चार सहस्र चार सौ और उनके शिष्यों ने पांच सहस्र छः सौ श्लोक युक्त अर्थात् सब दश सहस्र श्लोकों के प्रमाण महाभारत बनाया था। वह महाराजा विक्रमादित्य के समय में बीस सहस्र, महाराजा भोज कहते हैं मेरे पिताजी के समय में पचीस और अब मेरी आधी उम्र में तीस सहस्र श्लोक युक्त महाभारत का पुस्तक मिलता है। जो ऐसे ही बढ़ता चला

तो महाभारत का पुस्तक एक ऊट का बोझा हो जायगा।* और वास्तव में ऐसा ही हुआ। आज महाभारत एक ऊट के बोझे से कम नहीं है। यह कौन स्वीकार करेगा कि वर्तमान मे प्राप्त लगभग १ लाख श्लोकों के वृहद् आकार का महाभारत ग्रन्थ अकेले व्यास की ही रचना है और इसमें कुछ भी मिश्रण नहीं हुआ है ?

महाभारत के प्रसिद्ध विद्वान प० चितामणि विनायक वैद्य ने जय, भारत और महाभारत नामक तीन रूप इस ग्रन्थ के स्वीकार किये हैं और व्यास, वैशम्पायन और सौति को क्रमश उनका लेखक स्वीकार किया है। इनमें व्यास पाण्डवों के समकालीन थे, तथा वैशम्पायन न अर्जुन के पौत्र जनमेजय को भारतीयुद्ध की कथा सुनाई थी। सौति उग्रश्रवा ने कई सौ वर्ष पश्चात् नैमिषारण्य में ऋषियों को महाभारत की कथा सुनाई। † इससे सिद्ध होता है कि महाभारत के प्राचीन रूपों में क्रमश वृद्धि होती रही है और इसके फलस्वरुप इसकी रचना शैली में भी अनिवार्य रूपेण अन्तर आगया है।

महाभारत में प्रक्षेप होने के कुछ और भी स्पष्टतर प्रमाण हैं। गरुडपुराण में लिखा है—"दैत्या सर्वे विप्रकुलेषु भूत्वा, कलौयुगे भारते षट्सहस्रयाम्। निष्कास्य कांश्चिन्नवनिर्मितानां निवेशन तत्र कुर्वन्ति नित्यम्‡ ॥ अर्थात् दैत्य लोग कलियुग में ब्राह्मण कुलों में जन्म लेकर, जिस भारत में ६ हजार श्लोक थे, उसमें से कई श्लोकों को निकालकर नये घडे हुये अनेक श्लोकों को उसमे मिला देते हैं।

* सत्यार्थप्रकाश० पृ० ३७० आ० सा० मण्डल का सस्करण

† महाभारत मीमासा (सरस्वती सिरीज) प्रथम अध्याय

‡ गरुड पुराण वेंकटेश्वर प्रेस पृ० २१९ ब्रह्मकाण्ड १। ६९

लगभग इसी प्रकार की सम्मति सुप्रसिद्ध द्वैतवादी आचार्य श्री मध्व ने अपने 'महाभारत तात्पर्य निर्णय' नामक ग्रन्थ में दी है—"क्वचिद् ग्रन्थान् प्रक्षिपन्ति क्वचिदन्तरितानपि कुर्युः क्वचिच्चव्यत्यासं प्रमादान् क्वचिदन्यथा । अनुत्सन्ना अपि ग्रन्थाः व्याकुला इति सर्वशः । उत्सन्ना प्रायशः सर्वे कोट्यंशोऽपि न वर्तते ।"* अर्थात् धूर्त लोग कहीं ग्रन्थों में प्रक्षेप कर देते हैं, कहीं प्रमादवश बदल देते हैं और कहीं जान बूझ कर। इस प्रकार जो ग्रन्थ नष्ट नहीं हुये वे भी व्याकुल हो गये हैं, अर्थात् इनमें बहुत गड़बड़ हो गई है। प्रायः तो वे नष्ट हो गये हैं। अब करोड़वां अंश भी उनका बचा

बताया है कि, "एक ही विषय पर इस प्रकार विपरीत मतों का होना यह सिद्ध करता है कि इनमें से सृष्टि उत्पत्ति का एक ही क्रम (जो निश्चय ही वेदानुकूल होना चाहिये) सत्य है और वही ग्रन्थ के मूल रचयिता को अभिप्रेत है, परन्तु कालान्तर में ये विरोधी अंश भी महाभारत के अंग बन गये।"*

बंकिम बाबू ने महाभारत में प्रक्षिप्त भागों के अस्तित्व के लिये निम्न हेतु दिये हैं—

(१) आदि पर्व के द्वितीय अध्याय का नाम पर्व संग्रहाध्याय है। इसमें महाभारत के लगभग सभी विषयों का उल्लेख है और छोटी से छोटी घटना भी इसमें नहीं छूटी है। अब जो बड़ा प्रकरण महाभारत में आये और जिसका उल्लेख इस पर्व संग्रहाध्याय में न हो, उसे अवश्य क्षेपक समझना चाहिये। उदाहरण के लिये आश्वमेधिक पर्व के अनुगीता और ब्राह्मण गीता प्रकरण।

(२) अनुक्रमणिकाध्याय में महाभारत को १ लाख श्लोकों का बताया है और किस पर्व में कितने श्लोक हैं यह पर्व संग्रहाध्याय में लिखे हैं, जिसके अनुसार समस्त १८ पर्वों में ८४८३६ श्लोक होने चाहियें। एक लाख की संख्या पूरी करने के लिये पर्व संग्रहकार ने लिखा है कि इसमें हरिवंश के १२००० श्लोक और मिलाये जायं। इसे जोड़ने पर ९६८३६ श्लोक हुये, परन्तु प्रचलित महाभारत की श्लोक संख्या १०७३९० है। इससे सिद्ध हुआ कि लगभग ११००० श्लोक महाभारत में बढ़ाये गये हैं।

(३) अनुक्रमणिकाध्याय में लिखा है कि व्यास ने १५० श्लोकों की अनुक्रमणिका बनाई है, परन्तु उपलब्ध महाभारत के अनुक्रमणिकाध्याय में २७२ श्लोक मिलते हैं। अतः ११२ श्लोक तो इस अध्याय में ही बढ़ाये गये हैं।

---

* वैदिक गीता–स्वा० आत्मानन्द सरस्वती

(४) महाभारत के वर्तमान रूप श्रोताओं वक्ताओं की परम्परा का आलोचनात्मक दृष्टि से विचार करें तो ज्ञात होता है कि वर्तमान में प्राप्त महाभारत सम्पूर्णतया व्यास की कृति नहीं। इसमें वैशम्पायन, सूत और एक अज्ञात नामा लेखक (जिसने नैमिषारण्य प्रसंग के प्रारम्भिक श्लोक लिखे हैं) के न जाने कितने श्लोक हैं।

(५) अनुक्रमणिकाध्याय में लिखा है * कि उपाख्यान भाग को छोड़ कर व्यास ने २४००० श्लोक रचे और वे व्यास ने अपने पुत्र शुक को पढ़ाये। शुकदेव से वैशम्पायन ने महाभारत पढ़ा और वही २४००० वाला भारत जनमेजय को सुनाया। वह २४००० वाला मूल महाभारत क्षेपकों के कारण आज चौगुने आकार का हो गया।†

महाभारत में क्षेप भाग हैं यह तो सिद्ध हो चुका, परन्तु उनको पृथक् कैसे किया जाय, यह प्रश्न उपस्थित होता है। यहाँ भी बंकिम हमारी सहायता करते हैं। उनके अनुसार,

(१) पर्व संग्रहाध्याय में जिस घटना का उल्लेख नहीं है वह निश्चय ही प्रक्षिप्त है।

(२) जो घटनायें परस्पर विरोधी हैं, उनमें से एक अवश्य प्रक्षिप्त है।

---

* चतुर्विंशति साहस्रीं चक्रे भारत संहिताम्।
उपाख्यानैर्विना तावद् भारतं प्रोच्यते बुधैः॥
ततोऽध्यर्धशतं भूयः संक्षेपं कृतवान् ऋषिः।
अनुक्रमणिकाध्यायं वृत्तान्तानां सपर्वणाम्॥
इदं द्वैपायनः पूर्वं पुत्रमध्यापयच्छुकम्।
ततोऽन्येभ्योऽनुरूपेभ्यः शिष्येभ्यः प्रददौ मुनिः॥

—म० भा० आदि पर्व १०१–१०३

† कृष्ण चरित्र पृ० ५१ से ५८

(३) महर्षि व्यास संस्कृत के रस-सिद्ध कवि थे। उनकी काव्य रचना में उनकी पृथक विशिष्टता के दर्शन होते हैं । परन्तु प्रचलित महाभारत के कई अंश मूल लेखक की रचना शैली के विपरीत हैं और ऐसे अंश निश्चय ही प्रक्षिप्त हैं।

(४) जहाँ सुसंगतता का अभाव हो, और कोई बात प्रसंग विरुद्ध हो, उसे भी प्रक्षिप्त ही समझना चाहिये।

महाभारत की इस प्रकार अन्तरंग परीक्षा कर लेने के पश्चात् वंकिमचन्द्र ने यह निष्कर्ष निकाला कि उपलब्ध महाभारत में तीन पृथक् २ तहें हैं। महाभारत का जो मौलिक अंश है वह नितान्त उदार, विकारशून्य और प्रौढ़ कवित्व से पूर्ण है। दूसरा अंश अनुदार है परन्तु उसमें काव्य चातुरी और दार्शनिक व्याख्या का घटाटोप है। जहाँ तक कृष्ण का सम्बन्ध है "पहली तह में कृष्ण ईश्वर या विष्णु के कहीं अवतार नहीं माने गये हैं। उन्होंने स्वयं भी अपना ईश्वरत्व कहीं नहीं माना है। कृष्ण ने मानुषी शक्ति के अतिरिक्त दैवी शक्ति से कहीं कोई काम नहीं लिया। पर दूसरी तह में वह डंके की चोट ईश्वर माने गये हैं। कृष्ण ने स्वयं भी अपनी ईश्वरता का ढोल बजाया है और कवि ने भी उन्हें ईश्वर सिद्ध करने का बड़ा प्रयत्न किया है।" *

महाभारत की तीसरी तह अनेक शताब्दियों से बनती चली आ रही है। जिसे जो अच्छा लगा उसने वही मिला दिया। यह अंश सर्वथा अप्रामाणिक है। वंकिम के अनुसार पहली तह ही सबसे पुरानी है अतः उसे ही असली समझकर ग्रहण करना चाहिये। जो बातें दूसरी और तीसरी तह में मिलें और पहली तह

* कृष्ण चरित्र पृ० ६३।

में न मिले उन्हें कपोल कल्पित और अनैतिहासिक समझकर छोड़ ही देना चाहिये।*

महाभारत की श्रोता वक्ता परम्परा का अध्ययन करने के पश्चात् बंकिम ने जो निष्कर्ष निकाले हैं, वे अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं—

(१) प्रचलित महाभारत व्यासकृत पहली संहिता नहीं है।

(२) इसके वैशम्पायन संहिता होने में भी संदेह है।

(३) इसका प्रायः तीन चौथाई भाग क्षेपक है।

६. क्या पुराण विश्वसनीय हैं ?

महाभारत के अतिरिक्त कृष्णचरित्र जानने के साधन पुराण और महाभारत का परिशिष्ट ग्रन्थ हरिवंश है। इनकी स्थिति महाभारत से भिन्न है। पुराणों के निर्माण काल में अवतारवाद की धारणा दृढ़ रूप से लोगों में प्रविष्ट हो गई थी अतः इन ग्रन्थों में कृष्ण का वर्णन एक सामान्य मानव से भिन्न विष्णु के अवतार के रूप में हुआ है। सामान्यतया कृष्ण चरित्र का उल्लेख ब्रह्म, पद्म, विष्णु, वायु, भागवत, ब्रह्मवैवर्त, स्कन्द, वामन और कूर्म इन ९ पुराणों में मिलता है, परन्तु जैसा विस्तार ब्रह्म, विष्णु, भागवत और ब्रह्मवैवर्त में है, उतना अन्य पुराणों में नहीं है। इस पौराणिक वर्णन में न तो महाभारत के कृष्ण की राजनैतिक विचक्षणता का ही उल्लेख हुआ है और न उनकी चारित्रिक महत्ता, ओजस्विता और उदात्तता का। पुराणकारों की दृष्टि में कृष्ण की राजनैतिक कुशलता का मूल्य नितान्त स्वल्प है। वे उनकी वात्सल्य और शृंगार लीलाओं के चित्रण की ओर ही विशेषरूप से उन्मुख हुये हैं। भागवत और ब्रह्मवैवर्त में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से दिखाई देती है। अतः कृष्ण चरित्र की मौलिकता को नष्ट कर उसे अभिनव रूप देने का उत्तरदायित्व भी पुराणकारों पर ही है। नारद पांचरात्र आदि सम्प्रदायों के उदय होने पर भागवत आदि वैष्णव पुराणों की रचना हुई जिन्होंने वासुदेव की पूजा का प्रचार किया।

पुराणों का रचनाकाल अधिक पुराना नहीं है। ब्राह्मणधर्म में जिस अवतारवाद की प्रतिष्ठा हुई है उसका मूल जैनियों के तीर्थंकरों और बौद्धों के बोधिसत्वों में देखा जा सकता है। सभी पौर्वात्य और पाश्चात्य विद्वान् इस बात से सहमत हैं कि वर्तमान समय में प्रचलित

१८ पुराणों की रचना गुप्तकाल के आस पास हुई है। ऋषि दयानन्द ने राजा भोज प्रणीत संजीवनी इतिहास की साक्षी से लिखा है कि राजा भोज के राज्य में व्यासजी के नाम से मारकण्डेय और शिवपुराण किसी ने बना कर खड़ा किया था, उसका समाचार राजा भोज को विदित होने से उन पण्डितों को हस्तच्छेदनादि दण्ड दिया और उनसे कहा कि जो कोई काव्यादि ग्रन्थ बनावे तो अपने नाम से बनावे, ऋषि मुनियों के नाम से नहीं।*

वस्तुतः पुराणों की रचना न तो एक समय में हुई है और न एक व्यक्ति द्वारा। अतः अष्टादश पुराणों का कर्तृत्व व्यासजी पर थोपना एक साहस मात्र है। जैसा कि डा० सम्पूर्णानन्दजी कहते हैं, "यह मानना कि सारे पुराण व्यासजी के कहे या लिखे हैं व्यासजी का उपहास करना है। उनको ऐसी भोंडी बातों के लिये जो श्रुति, तर्क और इतिहास के विरुद्ध हैं, दायी बनाना अन्याय है। पुराणों का अन्त साक्ष्य बतलाता है कि वह न तो एक समय बने हैं, न एक व्यक्ति उनका रचयिता है।"†

कृष्ण चरित्र के प्रसिद्ध मीमांसक वंकिमचन्द्र की सम्मति भी यही है, "वर्तमान अष्टादश पुराण एक मनुष्य के बनाये या एक ही समय विभक्त या समहीत हुये हैं ऐसा मालूम नहीं पड़ता। यह पृथक २ समय में संगृहीत हुये हैं।"‡ अपने इस कथन को सिद्ध करने के लिये उन्होंने निम्न प्रमाण दिये हैं—

जो अनेक ग्रंथ लिखता है वह एक ही विषय को बारंबार वर्णन करने के लिये नहीं लिखता।

(३) एक ही लेखक की रचना में पारस्परिक विरोध की सम्भावना नहीं रहती। ये सब दोष पुराणों में न्यूनाधिक रूप में सर्वत्र मिलते हैं, अतः सिद्ध है कि पुराण एक ही व्यक्ति की रचना नहीं है।*

ऋषि दयानन्द ने जो तर्क आधुनिक पुराणों के व्यासकृत न होने मे दिया है वह इस प्रकार है—

"जो अठारह पुराणों के कर्ता व्यासजी होते तो उनमें इतने गपोड़े न होते क्योंकि शारीरक सूत्र, योग शास्त्र के भाष्य आदि व्यासोक्त ग्रन्थों के देखने से विदित होता है कि व्यासजी बड़े विद्वान, सत्यवादी, धार्मिक, योगी थे। वे ऐसी मिथ्या कथा कभी न लिखते और इससे यह सिद्ध होता है कि जिन सम्प्रदायी परस्पर विरोधी लोगों ने भागवतादि नवीन कपोलकल्पित ग्रन्थ बनाये हैं उनमे व्यासजी के गुणों का लेश भी नहीं था। और वेद शास्त्र विरुद्ध असत्यवाद लिखना व्यास सदृश्य विद्वानों का काम नहीं।†

ऋषि के कथन का यह अभिप्राय नहीं है कि प्राचीन काल में पुराण नाम वाले किन्हीं ग्रन्थों का अस्तित्व ही नहीं था। 'पुराण' शब्द का प्रयोग अथर्ववेद में मिलता है।‡ परन्तु यहाँ उसका अभिप्राय किसी ग्रन्थ विशेष से नहीं है, क्योंकि वेदों में Proper names नहीं पाये जाते। अथर्ववेद के अतिरिक्त शतपथ ब्राह्मण, छान्दोग्य उपनिषद्, मनुस्मृति आदि प्राचीन ग्रन्थों में भी पुराणों

* कृष्ण चरित्र पृ० ८५

† सत्यार्थप्रकाश एकादश समुल्लास

‡ ऋचः सामानि छंदांऽसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टा जज्ञिरे सर्वे देवा दिविश्रिता॥ ११।२७।२४

का उल्लेख है। स्वामी दयानन्द ने "ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीरिति" इस ब्राह्मण वचन को उद्धृत करते हुये लिखा है कि ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ ब्राह्मण ग्रन्थों ही के इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी ये पांच नाम हैं।॥ बंकिम ने भी ऋषि दयानन्द के इस मत का समर्थन किया है, यह बड़े सन्तोष का विषय है। वे लिखते हैं, "पुराण का अर्थ पहले पुरातन था।† पीछे पुरातन घटनाओं का वर्णन हुआ। शतपथ ब्राह्मण, गोपथ ब्राह्मण, छान्दोग्योपनिषद्, आश्वलायन सूत्र, अथर्व संहिता, वृहदारण्यक, महाभारत, रामायण, मानवधर्म शास्त्र में, जहाँ देखो पुराणों के होने की बात पाई जाती है। किंतु इन सब ग्रन्थों में किसी में भी आजकल के पुराणों का नाम नहीं है।"‡

बंकिम के मत में शायद व्यास ने कोई मूल पुराण संहिता बनाई थी और उसका अध्ययन उसने अपने शिष्यों को कराया था परन्तु आज वह प्राप्त नहीं है। कालान्तर में आधुनिक १८ पुराण ही व्यास के नाम से प्रसिद्ध हो गये। हमें इसे स्वीकार करने में कोई विशेष बाधा नहीं है, क्योंकि बंकिम यह तो मान ही चुके हैं कि प्रचलित पुराण व्यास रचित नहीं हैं।

हुआ। पुराणों में बुद्धावतार का वर्णन भूतकाल की क्रिया में है। अतः सिद्ध होता है कि पुराणों की रचना बुद्ध के पश्चात् हुई है और उन्हें व्यासोक्त कहना तथा ५००० वर्ष पूर्व की रचना मानना अनुचित है। विष्णु पुराण में जैन, बौद्ध और चार्वाक आदि मतों का वर्णन विस्तार पूर्वक किया गया है,* जो उसकी नवीनता का स्पष्ट प्रमाण है।

(२) लिंग पुराण में चक्रांकित मत का खण्डन मिलता है और किसी व्यक्ति से यह अप्रकट नहीं है कि चक्रांकित मत का प्रवर्तन रामानुजाचार्य ने किया जो १२ वीं शताब्दी में हुये। अतः लिंग पुराण को व्यासोक्त नहीं कहा जा सकता। सम्बद्ध श्लोक यह है—

ाप्त चक्रे तापयित्वा यस्य देहः प्रदह्यते।
। जीवन् कुणपस्त्याज्यः सर्व कर्म बहिष्कृतः॥

(३) ब्रह्माण्ड पुराण और पद्म पुराण में तम्बाकू सेवन का निषेध है। इतिहास का एक सामान्य विद्यार्थी भी जानता है कि तम्बाकू भारत में मुगल काल में आई। अत. उक्त पुराणों के इन अंशों की आधुनिकता स्पष्ट है।†

(४) शांकर मायावाद का खण्डन पद्मपुराण में मिलता है, जिसे विज्ञानभिक्षु ने अपने सांख्य-प्रवचन भाष्य में उद्धृत किया है। शंकराचार्य का समय ९वीं शती है। अतः पद्म पुराण के आधुनिक होने में कोई संदेह नहीं। सम्बद्ध श्लोक यह है—

* विष्णु पुराण—३।१८। १२, १९, २४ से ३० गीता प्रेस गोरखपुर

† प्राप्ते कलियुगे घोरे सर्व वर्णाश्रमे नरः।
तमालं भक्षितं येन स गच्छेन्नरकार्णवे॥
धूम्रपान रत विप्रं दान कुर्वेति यो नरः।
दातारो नरकं यान्ति ब्राह्मणो ग्राम शूकरः॥

मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्ध मेव च ।
मयैव कथितं देवि, कलौ ब्राह्मण रूपिणा ॥"

(५) स्कन्दपुराण में पुरी के जगन्नाथ मंदिर का वर्णन मिलता है परन्तु इतिहासकार इसे वि० स० १२३८ में उडीसा के राजा अनंग भीमदेव का बनाया मानते हैं। अत स्कन्द का यह उल्लेख व्यासोक्त कैसे हो सकता है ?

(६) युधिष्ठिर के ३६ वर्ष पश्चात् परीक्षित गद्दी पर बैठा और उसने ६० वर्ष बाद शुकदेव से भागवत की कथा सुनी। परन्तु महाभारत के भीष्मपर्व में शुकदेव की मृत्यु का उल्लेख है। अतः ९६ वर्ष बाद शुकदेव का परीक्षित को भागवत सुनाना असम्भव है।

(७) पद्मपुराण में सोमनाथ, बनारस, रामेश्वर, मथुरा आदि के मंदिरों का यवनों द्वारा तोड़ा जाना लिखा है। ये घटनायें मुसलमानों के भारत आगमन के पश्चात् की हैं। अतः उक्त पुराण की नवीनता सिद्ध है

(८) पुराणों में ऋषि, मुनि, देवों, देवताओं की निंदा स्थान २ पर मिलती है। अत ये ग्रन्थ ऋषिप्रोक्त और प्राचीन कदापि नहीं कहे जा सकते।*

---

* विशेष विस्तार के लिए देखिये—

(१) भारत में मूर्तिपूजा ले० राजेन्द्र का मूर्तिपूजा और पौराणिक काल नामक प्रकरण।

(२) स्वामी विरजानन्द सरस्वती का जीवन ले० स्वा० वेदानन्द सरस्वती —उपक्रमणिका

(३) विरजानन्द चरित ले० देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय-अनार्ष ग्रन्थ खण्डन प्रकरण

(४) पुराण भेद ले० हीरालाल शर्मा वैद्य आर्य भास्कर प्रेस

(९) व्यासकृत शारीरक सूत्रों तथा योगभाष्यादि ग्रन्थों में जो निर्मल ज्ञानगंगा प्रवाहित हो रही है, पुराणों में उसका पता भी नहीं लगता।

(१०) भविष्य पुराण आदि तो सर्वथा नवीन हैं क्यों कि इसमें मुसलमानों के आक्रमण, अंग्रेजी शासन, १८५७ की राज्यक्रान्ति, विक्टोरिया शासन और ब्रिटिश पार्लमेन्ट तक का वर्णन मिलता है।† यह अवश्य है कि आधुनिक वर्णन भविष्यवाणी के रूप में भविष्यकाल की क्रिया में लिखा गया है, परन्तु ऐसा किये बिना काम भी नहीं चल सकता था।

(११) किन्हीं २ पुराणों में इतिहास की कुछ शृंखला भी मिलती है, परन्तु वह उतनी प्रामाणिक नहीं है। उदाहरण के लिये, भागवत में भविष्य कथन के रूप में भावी राजाओं की जो वंशावलियाँ दी गई हैं, उनमें से अधिकांश कपोल-कल्पित और ‡मिथ्या हैं।

अष्टादश पुराणों में भी सब पुराण समान महत्व के और समान श्रद्धा के भाजन नहीं हैं। सात्विक, राजस, और तामस रूप में उनका वर्गीकरण किया गया है—मत्स्य, कूर्म, लिंग, शिव, स्कन्द और अग्नि-ये पुराण तामस हैं। विष्णु, नारद, भागवत, गरुड, पद्म और वराह सात्विक है। शेष-ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, मारकण्डेय, भविष्य, वामन और ब्रह्म राजस हैं। अठारह पुराणों

(५) पौराणिक ढोल की पोल-प्र० गोविन्दराम हासानन्द

(६) पुराणों में परस्पर विरोध-स्वा० वेदानन्द तीर्थ

(७) शास्त्रार्थ महारथी-ले० शिवस्वामी सरस्वती

(८) पौराणिक पोल प्रकाश-ले० प० मनसाराम जी 'वैदिक तोप'

† वैदिक सम्पत्ति-ले० रघुनन्दन शर्मा

‡ पं० शिवपूजन सिंह पथिक का लेख-वेदवाणी, काशी

के अन्तर्गत कौन २ से पुराण आते हैं, इस पर भी सब पुराण सहमत नहीं हैं। मारकण्डेय के अनुसार नृसिंह पुराण अठारह के अन्तर्गत है, और लिंगपुराण बहिष्कृत है। ब्रह्मपुराण के अनुसार लिंगपुराण स्वीकृत है और नृसिंह बहिष्कृत है। इसी प्रकार भागवत को लेकर शाक्तों और वैष्णवों में बड़ा भारी झगड़ा है। शाक्त लोग देवी भागवत को (जिसमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि की अच्छी मरम्मत की गई है) महापुराण मानते हैं और वैष्णव लोग विष्णु भागवत को 'महापुराण' संज्ञा देते हैं।† निर्णय आज तक नहीं हुआ।

उक्त विवेचन के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि उपलब्ध पुराण ग्रन्थों को ऋषि प्रोक्त आर्ष ग्रन्थों की संज्ञा नहीं दी जा सकती। न तो वे व्यास रचित ही हैं और न उनपर अधिक विश्वास ही किया जा सकता है। इनमें साम्प्रदायिक विद्वेष का जो विष भरा हुआ है, उसी ने भारत के विशुद्ध वातावरण को विषाक्त बनाया यह संदेहातीत है। अत कृष्ण चरित्र को

† स्कन्दपुराण में लिखा है—

भगवत्या. कालिकाया माहात्म्य यत्र वर्ण्यते ।
नाना दैत्य वधोपेत तद्वै भागवत विदु" ॥
कलौ किंचिद् दुरात्मानो धूर्ता वैष्णवमानिन ।
अन्यद्भागवत नाम कल्पयिष्यन्ति मानवा" ॥

भगवती कालिका का माहात्म्य जिसमें वर्णित हुआ है, तथा जिसमें उनके द्वारा नाना दैत्यों का वध वर्णित है वह भागवत ग्रन्थ है। कलियुग में कोई धूर्त, दुरात्मा वैष्णव मन्य व्यक्ति भागवत के नाम से दूसरा ग्रन्थ बना लेंगे। यहाँ देवी भागवत ही वास्तविक भागवत बताया गया है, और वैष्णव भागवत को धूर्त और दुरात्माओं की कृति माना गया है।

समालोचना में पुराणों को प्रामाण्य कदापि स्वीकार नहीं किया जा सकता। हरिवंश की स्थिति भी पुराणों से भिन्न नहीं है।

पुराणों के प्रमाण के विषय से वंकिम की स्थिति—

कृष्ण के आप्त चरित्र का अनुसंधान महाभारत की सहायता से ही करना पड़ेगा। पुराणों में कृष्ण विषयक उल्लेखों की चर्चा और आलोचना जहाँ जहाँ २ आवश्यकता होगी, अवश्य की जायगी। पुराणों के प्रामाण्य के विषय में वंकिम बाबू की स्थिति नितान्त विषम और शोचनीय हो गई है। इसका कारण यह है कि यद्यपि वे महाभारत की तुलना में पुराणों को अत्यन्त अल्प महत्व देते हैं, परन्तु महर्षि दयानन्द प्रतिपादित आर्ष ग्रन्थ प्रमाणवाद* के सिद्धान्त से अपरिचित होने के कारण वे पुराणों के प्रमाण का सर्वांश में तिरस्कार नहीं कर सके। फल स्वरूप उन्हें पुराणों की असंगत और मिथ्या गाथाओं की संगति लगाने का दुरूह कार्य अपनी आत्मा के प्रतिकूल होने पर भी करना पड़ा। फल यह हुआ कि उनकी विवेचना अधिकांश में आत्म-विरोध के (self-contradiction) दोष से दूषित हो गई। कृष्ण चरित्र के वास्तविक मूल्यांकन के कार्य में पुराणों के प्रामाण्य को अस्वीकार कर देने से हम उन अनेक क्लिष्ट कल्पनाओं से मुक्त हो जायेंगे, जिनसे वंकिम बाबू मुक्त नहीं हो सके। अस्तु

अब हम हमारे प्रकृत विषय कृष्ण चरित्त पर आते हैं।

❖❖

* केवल ऋषिकृत ग्रन्थ ही प्रामाणिक हैं, यह सिद्धान्त प्राचीन होते हुये भी मध्यकाल में लुप्त ही गया था। वर्तमान समय में दण्डी विरजानन्द ने इसको पुनः प्रतिष्ठित करते हुये अपने शिष्य ऋषि दयानन्द को इस सिद्धान्त का प्रचार करने की आज्ञा दी। यह शास्त्र सुधार का महान प्रयत्न था। ले०

७. वंश परिचय

कृष्ण यदुवंशी थे। भागवत पुराण के अनुसार† यदु महाराज ययाति के पुत्र थे। यह वंश अत्रि से प्रारम्भ होता है। अत्रि के पुत्र चन्द्रमा कहे गये हैं। इन्हीं से इस वंश का नाम चन्द्रवंश प्रसिद्ध हुआ। ययाति तक की वंश परम्परा भागवत के अनुसार इस प्रकार है—

अत्रि
|
चन्द्र
|
बुध
|
इला
|
पुरुरवा
|
आयु
|
नहुष
|
ययाति
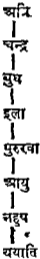
ययाति के शर्मिष्ठा और देवयानी नामक दो रानियाँ थीं जिन से उसे पांच पुत्र उत्पन्न हुये। शर्मिष्ठा से द्रुह्यु, अनु और पुरु। देवयानी से यदु और तुर्वसु। पुरु के वंश में दुष्यन्त, भरत, कुरु आदि विश्वप्रसिद्ध राजा हुये। दुर्योधन, युधिष्ठिर आदि पौरव इसी पुरु वंश के थे। कृष्ण और अन्य यादव यदु की संतान थे।

† नवम स्कन्ध—चन्द्रवंश वर्णन

हरिवंश के विष्णु पर्व में यादवों को इक्ष्वाकु वंशी बताया गया है।

कृष्ण के वश के विवेचन के प्रसग में बंकिम बाबू बड़े फेर में पड़ गये हैं। ऋग्वेद संहिता में उन्हे ययाति, नहुष,* यदु, तुर्वसु† आदि अनेक ऐतिहासिक दीख पडने वाले नाम मिले। अब यदि इन वेदोक्त पदों को ऐतिहासिक समझें तो पुराण कथित यादवों के प्राचीन इतिहास से इनकी संगति कैसे लगायें? यद्यपि इससे पूर्व पुरुरवा, उर्वशी, विष्णु के तीन पाद आदि वैदिक रूपकालंकारों का स्पष्टीकरण करते समय उन्होने यह स्वीकार किया है कि वेदों में रूपक का बीज अत्यन्त सूक्ष्म रूप में मिलता है, उसी को पुराणों में उपन्यास के ढंग पर नमक मिर्च लगा कर बहुत नवीन रूप दे दिया गया है।‡

बात यह है कि वेद में लौकिक इतिहास की सत्ता स्वीकार करने के कारण ही उनके समक्ष यह कठिनाई आई है और इसका कारण वेदार्थ की प्राचीन नैरुक्त पद्धति से अनभिज्ञ होना है। अनादि ईश्वरीय ज्ञान वेद में लौकिक इतिहास नहीं है। यास्क के अनुसार वेद के सब पद यौगिक हैं और उनका धात्वर्थ (Root meaning) ही ग्रहण किया जाता है। यास्क द्वारा प्रचारित यह वेदार्थ की शैली ही प्राचीन काल में वेद के रहस्य को समझने की कुञ्जी स्वीकार की गई थी। भारतीय परम्परा वेद को ईश्वर का अनादि ज्ञान स्वीकार करती है अतः बंकिम द्वारा उद्धृत वेद मंत्रों में यदु और नहुष आदि ऐतिहासिक पुरुषों का इतिवृत्त ढूंढना

* ऋग्वेद १० । ४९ । ८

† ऋग्वेद १० । ४९ । ८, १० । ६२ । १०, १ । ३६ । १८

‡ कृष्ण चरित्र—"इतिहास का पूर्वापर क्रम" शीर्षक परिच्छेद

हास्यास्पद है। हाँ, यह अवश्य है कि लोक में व्यक्तियों को जो भिन्न २ नाम दिये जाते हैं और पूर्वकाल में दिये गये हैं वे वेदों से ही लेकर दिये गये। इसमें मनुस्मृति का भी प्रमाण है। † वेदार्थ के इस रहस्य को न समझने के कारण ही बंकिम को ऋग्वेद में कृष्ण के पूर्वजों का इतिहास दृगोचर हो रहा है। कहीं वे यदु को अनार्य राजा बता रहे हैं और ऐतिहासिक यदु से उसकी संगति लगाने में असमर्थ हो रहे हैं। वस्तुतः वेदवर्णित यदु और नहुष आदि नामों का इन्हीं नामों के ऐतिहासिक पुरुषों से दूर का भी सम्बन्ध नहीं है।

---

† सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेदशब्देभ्यः एवादौ पृथक संस्थाश्च निर्ममे ॥ मनु० १।२१

वेद एव हि सर्वेषामादर्शः सर्वदा स्थितः।
शब्दानां तत उद्धृत्य प्रयोगः सम्भविष्यति ॥
कुमारिल कृत तन्त्रवार्तिक। पृ० २०६

ऋषीणां नामधेयानि याश्च वेदेषु सृष्टयः।
नानारूपं च भूतानां कर्मणां च प्रवर्तनम् ॥
वेदशब्देभ्य एवादौ निर्मिमीते स ईश्वरः।
शर्वर्यन्ते सुजातानामन्येभ्योऽपिदधात्यजः ॥
महाभारत शान्ति पर्व अ० २३२।२५,२६

नामरूपं च भूतानां कृत्यानां च प्रपञ्चनम्।
वेद शब्देभ्यः एवादौ देवादीनां चकार सः ॥
ऋषीणां नामधेयानि यथा वेद श्रुतानि वै।
तथा नियोग योग्यानि ह्यन्येषामपि सोऽकरोत् ॥
विष्णु पुराण १।५।६४,६५

८. जन्म

मथुरा के यादव शूरसेन के पुत्र वसुदेव का विवाह देवक की कन्या देवकी के साथ हुआ। देवक उग्रसेन के भाई थे जो मथुरा के राजा और कंस के पिता थे। इन्हीं वसुदेव और देवकी के पुत्र कृष्ण थे, जिन्होंने भाद्रपद कृष्णा अष्टमी की रात्रि को रोहिणी नक्षत्र में, जब कि आकाश में घोर पर्जन्य वृष्टि और भयंकर विद्युत गर्जना हो रही थी, जन्म लिया। कृष्ण जन्म का मूल इतिवृत्त इतना ही है।

पुराणों में इसका विस्तार इस प्रकार मिलता है कि वसुदेव देवकी से विवाह कर घर लौट रहे थे और देवकी का चचेरा भाई कंस उनका रथ हांक रहा था। उस समय आकाशवाणी होती है कि देवकी की आठवीं संतान के हाथों कंस का वध होगा। इस पर कंस वहीं देवकी को मारने के लिये तैयार हो गया। वसुदेव ने उसे समझाया कि वह अज्ञानवश भगिनी हत्या का पाप न करे और वह अपनी सब संतानें उसे दे देगा। कंस ने यह सुझाव मान लिया और वसुदेव देवकी को कैद में डालकर उनके संतान होने की प्रतीक्षा करने लगा। कारागार में देवकी के ६ सन्तानें उत्पन्न हुईं जो कंस के हाथों मारी गईं। सातवें पुत्र का गर्भ में ही नष्ट हो जाने का उल्लेख है परन्तु •पुराणों के अनुसार विष्णु की योगमाया ने उसे वसुदेव की दूसरी पत्नी रोहिणी के गर्भ में डाल दिया। यही पुत्र आगे चलकर बलराम के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

देवकी के आठवें गर्भ से श्रीकृष्ण उत्पन्न हुये। वसुदेव उन्हें रातोंरात गोकुल में नंद के यहाँ रख आये और उनकी सद्यः उत्पन्न पुत्री को लाकर देवकी के पास रख दिया। ब्रह्मपुराण और विष्णु पुराण में लिखा है कि कर चुकाने के लिये नन्द आदि गोप स्वयं

उस समय मथुरा आये हुये थे और यमुना किनारे ठहरे हुये थे। दूसरे दिन वसुदेव के कन्या जन्म का समाचार कंस को मिला तो वह सदा की भांति कारागार में गया और उस नवजात शिशु को प्रस्तर शिला पर पटककर मारने लगा, परन्तु वह कन्या कंस के मारने वाले के उत्पन्न होने की घोषणा करती हुई आकाश में चली गई। इस पर कंस की निराशा का पार नहीं रहा। उसने अपनी बहिन और बहनोई को निर्दोष जानकर मुक्त कर दिया।*

महाभारत में इन घटनाओं का संकेत मात्र भी नहीं है। इसमें से अनेक बातें असम्भव होने से भी मिथ्या कोटि में आ जायेंगी। सार इतना ही है कि कंस के अत्याचारों से यादव बड़े दुखी रहते थे। उन्हें अपने धन, स्त्री, पुत्र आदि के अपहरण का सदा भय लगा रहता था। इसलिये वसुदेव ने अपनी स्त्री रोहिणी और पुत्र कृष्ण को नन्द गोप के यहाँ भेज दिया। कृष्ण गोकुल के ग्राम्य वातावरण में पलने लगे।

◆◆

६. बाल्यकाल की घटनायें

पुराणों में कृष्ण के बाल्यकाल की अनेक घटनाओं का वर्णन मिलता है, परन्तु इनमें से अधिकांश असम्भव और अस्वाभाविक होने के कारण कृष्णचरित्र के वास्तविक मूल्यांकन में कोई महत्वपूर्ण योग नहीं देतीं। इनका अध्ययन इसी दृष्टि से मनोरंजक है कि तिल का ताड़ बना देने में पुराण लेखक कैसे सिद्धहस्त हैं। बाल्य-जीवन की किसी भी सम्भव या असम्भव घटना को अलौकिकता का जामा पहना कर कृष्ण के ईश्वरावतार होने की

* भागवत स्कन्ध १० पू०, विष्णुपुराण अंश अ० ३।४

पुष्टि करना ही इन ग्रन्थकारों का उद्देश्य है। इन घटनाओं की आलोचना का प्रकार इस प्रकार होगा—

(१) पुराणोल्लिखित घटना का स्थूल वर्णन।

(२) घटना की सम्भवता और असम्भवता पर विचार।

(३) महाभारत में यदि उसका संकेत है।

(४) बंकिम की रूपक योजना की समीक्षा।

अब हम एक २ कथा को क्रमशः लेंगें।

(१) पूतना बध—भागवत, विष्णु और ब्रह्म आदि सभी पुराणों में पूतनाबध का उल्लेख सर्व प्रथम आता है। कृष्ण वधार्थ कंस की भेजी हुई पूतना नामकी राक्षसी सुन्दर स्त्री का वेश धारण कर नंद के घर आई और प्यार से कृष्ण को गोद में लेकर स्तनपान कराने लगी। कृष्ण उसका आशय समझ गये और उन्होंने ऐसे जोरों से उसके स्तनों को मुंह में दबा कर खींचा कि उसके प्राण निकल गये। मरते समय पूतना ने अपना वास्तविक रूप धारण कर लिया। उसके शरीर का विस्तार छः कोस का हो गया।* भागवत की इस असम्भव गाथा पर ऋषि दयानन्द ने ठीक ही लिखा है—"यदि पूतना का शरीर वास्तव में इतना बड़ा होता तो मथुरा और गोकुल दोनों दब कर पोप जी का घर भी दब गया होता।" † यह तो कथा का स्थूल कंकाल है। अब इसके उद्गम का पता लगाना चाहिये, तभी इसकी वास्तविकता का पता चल सकेगा।

महाभारत के शिशुपाल बध प्रकरण में पूतना बध की चर्चा।

* भागवत दशमस्कन्ध पू० अ० ६

† सत्यार्थप्रकाश—एकादश समुल्लास

आई है।* विष्णुपुराण में पूतना को बालघातिनी कहा है।† हरिवंश ने उसे कंस की धात्री कहा है जो पक्षी बनकर आई है।‡ ब्रह्म वैवर्त पुराण में पूतना कंस की बहिन बताई गई है। भागवतकार ने इस घटना का जैसा अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन किया है, उसका उल्लेख हो चुका है। पूतना सूतिकागृह का एक रोग भी होता है☞ जिसके विषय में कहा जाता है कि बालक के जोर से दुग्ध पान करने से यह नहीं रहता।

पं० चमूपति एम० ए० ने अपने 'योगेश्वर कृष्ण' नामक ग्रन्थ में विष्णुपुराण की घटना का ही समर्थन किया है। उनके अनुसार पूतना एक स्त्री थी जिसका दूध पीते ही बच्चे मर जाते थे। जैसा उसके नाम से प्रतीत होता है उसके स्तनों में पस थी। अपनी स्वाभाविक दुष्टता के कारण उसने एक रात कृष्ण को गोदी लेकर अपने स्तनों में लगा लिया। कृष्ण ने उसका स्तन मुंह में लेने के स्थान में उसे दोनों हाथों से लेकर भींच लिया। इससे उसकी पस निकल गई। फिर जो उन्होंने मुंह में लेकर बलपूर्वक चूंसा तो रक्त स्राव बड़े वेग से आरम्भ हो गया। पूतना चीख मार २ कर वहीं मर गई। बालक ने रक्त को तो क्या पीना था थूक ही दिया होगा। परन्तु इससे स्राव की क्रिया झट शुरू हो गई जो पूतना की मृत्यु

* महाभारत सभापर्व अ० ४२।४
पूतनाघात पूर्वाणि कर्माण्यस्य विशेषतः ।
त्वया कीर्तयतास्माकं भीष्म प्रव्यथितं मनः ॥

† विष्णुपुराण अंश ५ अ० ५।७।८

‡ कस्यचित्त्वथ कालस्य शकुनि वेश धारिणी ।
धात्री कंसस्य भोजस्य पूतनेति परिश्रुता ॥ हरिवंश विष्णु पर्व ६।२२

☞ सुश्रुत

का कारण हुई।* अब यहाँ दो सम्भावनायें दिखाई देती हैं। या तो विष्णुपुराण के अनुसार पूतना को मारना स्वीकार किया जाय या सुश्रुत के अनुसार पूतना को रोग मान कर इसे आलंकारिक वर्णन समझा जाय। हमें विष्णुपुराण का ही कथन उचित प्रतीत होता है, क्योंकि आगे शिशुपाल ने कृष्ण महाराज के लिये स्त्री-घातक शब्द का प्रयोग किया है।† कृष्ण के जीवन में पूतना को छोड़ कर और किसी स्त्री को मारने का उल्लेख नहीं मिलता। अतः पं० चमूपति का कथन ही समीचीन है कि कृष्ण ने बाल घातिनी पूतना को मारा। विष्णुपुराण का यह वर्णन भागवत की तुलना में अतिरंजित भी नहीं है।

(२) शकट भंजन—भागवतकार के अनुसार यशोदा ने एक बार एक छकड़े के नीचे कृष्ण को सुला दिया। कृष्ण के लात मार देने से वह उलट गया।‡ यह शकट भंजन की कथा है। महाभारत में शिशुपाल इसका संकेत करते हैं—"और भी यदि इसने अचेत लकड़ी की गाड़ी पांव से गिराई हो तो भला कौन सा बड़ा काम किया?§ शिशुपाल का कथन यथार्थ ही है इसमें कोई अलौकिकता नहीं।

बंकिम को इस प्रसंग में ऋग्वेद में इन्द्र के द्वारा उषा का

* योगेश्वर कृष्ण पृ० १४,१५

† गोघ्नः स्त्रीघ्नश्च सन् भीष्म कथं संस्तवमर्हति।
सभापर्व ४१।१६

‡ भागवत १०।७ विष्णु पु० ५।६

§ महाभारत सभापर्व अ० ४१।५
चेतनारहितं काष्ठं यद्यनेन निपातितम्।
पादेन शकटं भीष्म किं कृतमद्भुतम्॥

शकट भञ्जन किया जाना याद आता है और वे कृष्ण की लीलाओं में वेदों के तथाकथित उपाख्यानों का मिश्रण मानने के लिये बाध्य होते हैं। पर वास्तव में वेद का कृष्ण की बाल्यलीलाओं से दूर का भी सम्बन्ध नहीं है।

(३) यशोदा की गोद में कृष्ण का विश्वम्भर मूर्ति धारण करना* भागवत की कपोल कल्पना है। इसका उल्लेख न तो ब्रह्मपुराण में है और न विष्णुपुराण में, महाभारत की तो बात ही क्या? अवतारवाद की प्रतिष्ठा के लिये ऐसे चमत्कारपूर्ण किस्से गढ़े जाते हैं।

(४) तृणावर्त–भागवत में लिखा है† कि तृणावर्त नामक असुर कृष्ण को लेकर आकाश में उड़ गया। इसका वर्णन पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है मानो यह बवंडर था। वायु के तीव्र बवंडर में बालक का उड़ जाना आश्चर्य की बात नहीं, परन्तु यह कथा कल्पित है। विष्णुपुराण में और ब्रह्मपुराण में उसका कोई संकेत नहीं है।

(५) कृष्ण के मिट्टी खा लेने पर यशोदा उसके मुख को खोल कर देखती है और उसे कृष्ण के मुख में समस्त ब्रह्माण्ड दिखाई देता है। यह कथा भी भागवत की असत्य कल्पना है।‡ अन्य पुराणों में इसका उल्लेख नहीं है।

(६) यमलार्जुन—§ शरारत करने के कारण एक दिन कृष्ण ऊखल के साथ बांध दिये गये। वे उस ऊखल को लुढ़काते २ ले चले और अर्जुन के वृक्षों के एक युग्म के समीप पहुँचे। वृक्षों की जड़ों

* भागवत दशम स्कन्ध अ० ७

† ,, ,, ,, अ० ७

‡ भागवत १० । ८

§ भागवत—१० । १० वि० पु० ५ । ६

में ऊखल अटक गया और वृक्ष टूट गये। यहाँ तक तो असम्भव जैसी कोई बात नहीं। अर्जुन के वृक्ष साधारणतया छोटे ही होते हैं और उनका इस तरह टूट जाना भी सम्भव है। परन्तु भागवत-कार को इतने से ही संतोष नहीं हुआ। उसने यमलार्जुन को कुबेर के शापग्रस्त पुत्र ठहराया और कृष्ण के चरणस्पर्श से उनकी मुक्ति की व्यवस्था की। यह स्पष्ट ही अतिरंजना है क्योंकि विष्णुपुराण में इस घटना का उल्लेख होने पर भी अर्जुन के वृक्षों को शापग्रस्त कुबेर पुत्र नहीं माना है और न उनके शापमोचन का ही वर्णन है। इस सीधी सरल कथा का संकेत महाभारत के शिशुपाल वध प्रकरण में भी है।

कृष्ण द्वारा दूध, दही और मक्खन चुराना—बाल्यकाल में श्रीकृष्ण दूध, दही, मक्खन आदि पदार्थों के बड़े प्रेमी थे। गोपियों के घर में घुस जाना और वहाँ से मक्खन आदि चुरा लेना कृष्ण के बायें हाथ का खेल था। मक्खन चुराने के लिये कृष्ण बड़े बदनाम हैं। कृष्ण चरित्र में प्रवेश पाने वाली विकृतियों में एक बड़ी विकृति उन्हें माखनचोर घोषित करना भी है। भागवत में ही इसकी धूम है।† विष्णुपुराण और महाभारत में इनका बीज मात्र भी नहीं है। वस्तुतः यह आरोप उतना गम्भीर नहीं है, जितना इसे बढ़ा चढ़ा कर दिखाया गया है। बालकों को धर्म अधर्म का ज्ञान नहीं होता और न उन्हें अपने पराये का ही बोध होता है। ऐसी दशा में यदि कृष्ण ने बाल्यावस्था में मक्खन आदि का चोरी की तो उसे नैतिक दृष्टि से अनुचित नहीं ठहराया जा सकता। नीति शास्त्र के नियम बालकों पर लागू भी नहीं होते। परन्तु यह तो भागवतकार के कल्पना विलास के अतिरिक्त कुछ

† भागवत १०। १०

नहीं है। मक्खन चुरा कर बंदरों को बांटना कृष्ण की परोपकार वृत्ति का द्योतक है जो और भी स्पृहणीय है।

बंकिम ने इस प्रश्न का एक दूसरे पहलू से देखा है। वे कृष्ण को भगवान् का साक्षात् अवतार मानते हैं। इन्हें यह कैसे स्वीकार होता कि आदर्श स्थापन के लिये मानव शरीर धारण करने वाले भगवान् स्वयं चोरी करें और लोक के समस्त स्तेय वृत्ति को प्रोत्साहन दें। स्वयं भगवान् ने कहा है—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ गीता ३। २१

श्रेष्ठ पुरुष जो जो आचरण करता है, अन्य पुरुष भी उसके अनुसार ही वर्तते हैं। वह पुरुष जो कुछ प्रमाण करता है, लोग भी उसका ही अनुकरण करते हैं। वास्तव में कृष्ण को साक्षात् ईश्वर समझने वालों के लिये यह प्रश्न बड़े महत्व का है। बंकिम का समाधान है† कि ईश्वर के लिये कोई वस्तु अपनी या पराई नहीं है। सारा जगत् ही उसका है इसलिये चोरी का कोई आक्षेप कृष्ण पर नहीं आता। परन्तु यह कोई संतोषजनक समाधान नहीं है। भले ही सारा संसार ईश्वर का हो, परन्तु लोकादर्श को प्रतिष्ठित करने के लिये अवतार धारण वाले कृष्ण यहाँ जगत के समक्ष चोरी के अतिरिक्त और कौन सा आदर्श प्रतिष्ठित कर रहे हैं?

अच्छा होता यदि बंकिम ईश्वरावतार की कल्पना को छोड़कर अपनी विवेचना को यहीं तक सीमित रखते कि धर्माधर्म के ज्ञान से शून्य चपल स्वभाव वाले बालक यदि कोई अपराध करते हैं तो उसमें दोष नहीं माना जा सकता, क्योंकि इस अवस्था तक बालक में कर्तव्याकर्तव्य बुद्धि ही जाग्रत नहीं होती है।

† कृष्ण चरित्र पृ० १२२

परन्तु क्या कृष्ण भक्तों को इससे संतोष होता। परवर्ती काव्यों और भक्ति ग्रन्थों में यह माखन चोरी का वर्णन अतिशयोक्ति की चरम सीमा तक पहुँच जाता है, और परोक्ष दृष्टि से वह लोक संग्रह के आदर्श में बड़ा भारी बाधक सिद्ध हुआ है। पौराणिक विद्वान् अपनी सम्पूर्ण बुद्धि और चातुर्य को लगा कर इस आरोप की बुद्धिवादी ढंग से व्याख्या करना चाहते हैं, परन्तु उन्हें सफलता मिलनी तो दूर रही, उलटी यह विकृति भयंकर रूप से साकार होकर अपना कुसंस्कार लोगों के हृदय पट पर छोड़ जाती है।

लेखक को एक ऐसे ही जन्माष्टमी उत्सव का स्मरण हो रहा है। उसमें पंजाब के प्रसिद्ध सनातनधर्मी विद्वान् प्रो० वशिष्ठ अपना भाषण दे रहे थे। माखन चोरी का प्रसंग आने पर आप कहने लगे, "लोग कृष्ण को माखन चोरी के लिये बदनाम करते हैं और कहते हैं कृष्ण चोर थे। हाँ, ठीक ही तो है। कृष्ण चोर थे। इसमें क्या विप्रतिपत्ति है? क्या वेद भगवान् को चोर नहीं कहता? वेद मे तो लिखा है—'तस्कराणां पतये नमः' † भगवान् चोर ही नहीं चोरों का सरदार है - यह वेद कहता है।" इतना कह कर आपने साक्षी के लिये सभा में उपस्थित एक आर्यसमाजी पंडितजी की ओर देखा और व्यंगपूर्ण शब्दों में कहा, "मेरी बात पर विश्वास न हो तो पूछो इन प० जी से। आप वेदों के प्रकाण्ड पंडित हैं। यहाँ वेद में ईश्वर को चोर ही नहीं चोरों का सरदार बताया गया है।" प्रोफेसर महोदय की इस वाक्छल पूर्ण वक्तृता को सुन कर मैं अवाक् रह गया। वेद से अनभिज्ञ जनता को वेद के नाम से बहकाने का कितना सरल तरीका है। वेद के जिस मत्र में "तस्कराणां पतये नमः" वचन आता है वह यजुर्वेद के रुद्राध्याय के अन्तर्गत है और वहाँ उसका अर्थ चोरों के सरदार

† य० १६ । २१

को नमस्कार करने का न होकर उसको दण्ड देने का है। क्योंकि निरुक्त में नमः के जहाँ अनेक अर्थ नमन करना, अर्चना आदि हैं, वहाँ दण्ड देना भी है। वेद का वास्तविक अभिप्राय है कि हम चोरों और लुटेरों के सरदारों को दण्ड दें ताकि वे फिर समाज की हानि न कर सकें। ऐसे स्पष्ट और युक्तिसंगत अर्थ को छोड़ कर सनातनधर्म के मान्य विद्वान ने जो अनर्थ किया उसका एकमात्र कारण है—पुराणों की प्रतिष्ठा को बचाना। परन्तु क्या इससे पुराणों का कलंक दूर हो सकता है और क्या इससे कृष्ण चरित्र पर लगाई गई कलंक कालिमा धोई जा सकती है, कदापि नहीं। गोकुल की कथा यहीं समाप्त होती है।

◆◆

१०. वृन्दावन गमन

गोकुल में उत्पातों के बढ़ जाने के कारण नंद आदि गोप अपने परिवार सहित वृन्दावन चले गये।* विष्णु पुराण और हरिवंश में वृन्दावन गमन का कारण भेड़ियों का उपद्रव बढ़ना बताया गया है।†

वृन्दावन की घटनायें—

भागवत के अनुसार कृष्ण ने यहाँ आकर वत्सासुर, बकासुर और अघासुर‡ नामक तीन दैत्यों को मारा। इनमें से पहला गोवत्स का रूप धारण कर आया था तथा अन्य दो पक्षी और

* भागवत दशम स्कन्ध पू० अ० ११, १२

† विष्णु पुराण ५। ६

‡ भागवत १०। १२

सर्प के रूप में थे। कृष्ण जैसे प्रतापी बालक का अपने साथी ग्वाल बालों की रक्षा करने के लिये ऐसे उपद्रवी पशुओं को मारना कोई आश्चर्य की बात नहीं है, परन्तु ये कथायें भागवत के अतिरिक्त अन्य किसी भी ग्रन्थ में नहीं मिलतीं। अतः इनकी प्रामाणिकता सन्देहास्पद है। बंकिम ने अपने रूपक प्रेम के कारण वत्स, बक और अघ शब्दों के धात्वर्थ की खोज की है, और उसके आधार पर इनका अर्थ क्रमशः निंदक, कुटिल शत्रु और पाप किया है। वस्तुतः इसका कोई प्रयोजन नहीं है, क्योंकि जब भागवतकार को ही इस रूपक योजना की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई तो मुद्दई सुस्त गवाह चुस्त वाला मामला हो जाता है। पुराण लेखक का उद्देश्य तो ऐसी घटनाओं के द्वारा कृष्ण का अवतार घोषित कर उसकी अलौकिक शक्तियों का उन्मेष दिखाना है।

इसके पश्चात् भागवत में ब्रह्मा द्वारा कृष्ण की परीक्षा का उल्लेख है। ब्रह्माजी कृष्ण के साथी ग्वाल बालों और गाय बछड़ों को चुरा कर ले जाते हैं। कृष्ण उनकी जगह दूसरे ग्वाले और बछड़े बना कर अपना काम यथापूर्व करते हैं। यद्यपि नारायण ने ही ब्रह्मा को द्वितीय स्कन्ध में यह वरदान दिया था—"भवान् कल्प विकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित्"† अर्थात् आप सृष्टि और प्रलय में कभी भी मोह को प्राप्त न होगे, परन्तु लेखक इस वरदान को भूल गया और यहाँ दशम स्कन्ध में ब्रह्मा को पुनः मोह होगया, जिसके कारण उन्होंने वत्सहरण किया। भागवत का यह पारस्परिक विरोध उसके लेखक का प्रमादी होना सूचित करता है।‡

कृष्ण के दावानल पान§ की कथा पर बंकिम की टिप्पणी

† भागवत स्कन्ध २ अ० ९ श्लो० ३६

‡ सत्यार्थ प्रकाश एकादश समुल्लास

§ भागवत १० । १९

बड़ी मार्मिक है—"शैवों के शिव विष पान कर नीलकण्ठ हुये थे, इसलिए वैष्णवों ने भी श्रीकृष्ण को अग्नि पान कराकर ही छोड़ा।"*

कालिय दमन†

यमुना के एक दह में कालिय नाम का भयंकर विषधर सर्प सपरिवार रहता था, उसके कई फण थे और वह अपनी विषैली श्वासों से प्राणियों के लिये बड़ा कष्टदायक था। उसकी विष की ज्वाला से वृक्षों के पत्ते तक झुलस गये। पशु पक्षी तो क्या, मनुष्य भी उसके पास जाने का साहस नहीं करते थे। श्रीकृष्ण ने उसके दमन करने का निश्चय किया। एक दिन कदम्ब की ऊंची शाखा से पानी में कूद पड़े और कालिय के निवास स्थान पर पहुँच गये। कालिय उन पर झपटा परन्तु ये झट उसके फणों पर चढ गये और वंशी बजा कर नृत्य करने लगे। इस प्रकार उसके फणों पर नाचने २ कृष्ण ने उसे अधमरा कर दिया, उसे रक्त का वमन होने लगा और वह बेहोश सा हो गया। अपने पति की यह अवस्था देखकर नाग पत्नियों ने कृष्ण की स्तुति करना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रसंग की चर्चा करते हुये वंकिम बाबू को मजाक करने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ है। वे लिखते हैं, "भागवत-कार ने नाग कन्याओं से जो स्तुति कराई है, उससे ज्ञात होता है कि नाग की स्त्रियां दर्शन शास्त्र की अच्छी ज्ञाता थीं। विष्णु पुराण में उन्होने जो स्तव किया है ‡ वह बड़ा ही मधुर है। उसके पढ़ने से यही जान पड़ता है कि मनुष्य की स्त्रियाँ भले ही विष उगलने वाली कही जाय, पर नाग कन्यायें तो सुधा सिंचन करने वाली

* कृष्ण चरित्र पृ० १२७

† भागवत १० । १६ वि० पु० ५ । ७

‡ वि० पु० ५।७

हैं।†" कालिय भी अब तक पूर्ण परास्त हो गया था। उसने भी श्री कृष्ण की स्तुति की तब श्रीकृष्ण ने उसे छोड़ दिया और उसे यमुना त्याग कर अन्यत्र निवास करने का आदेश दिया। इस प्रकार यमुना का जल साफ हुआ।

महाभारत में कालियदमन की कथा नहीं है। यह पुराणकारों की कल्पना है इसलिये इस पर विशेष टीका टिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं है। औचित्य की दृष्टि से विचार किया जाय तो कृष्ण जैसे तेजस्वी बालक के लिये किसी विषधर सर्प का दमन करना असम्भव नहीं है।

इस कथा को देखकर अपनी आदत के अनुसार बंकिम बाबू रूपक कल्पना का लोभ संवरण नहीं कर सके। कृष्ण के मानवीय चरित्र का आग्रह, अलौकिक और असम्भव के प्रति अश्रद्धा, महाभारत की तुलना में पुराणों का अप्रमाण आदि धारणायें रखते हुये भी बंकिम अवतारवाद से अपना पल्ला नहीं छुड़ा सके और न ही पुराण लेखकों की ईमानदारी पर उन्हें कभी संदेह हुआ। इसलिये चाहे ऐतिहासिक दृष्टि से वे पुराणवर्णित कथाओं को मिथ्या ही क्यों न समझें, उन पर रूपक का आवरण डालकर उनसे किसी न किसी उपदेश की सिद्धि करना बंकिम बाबू का बड़ा प्रिय कार्य रहा है।

यहाँ भी उन्होंने कालिय दमन का यह रूपक कल्पित किया है—"कृष्ण सलिला कालनदी ही कालिन्दी है। विपत्काल रूपी भयंकर भंवरें इसमें पड़ी हैं। कुटिल गति वाले दुख ही इसमें निवास करने वाले विषैले सर्प हैं जिनके आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीन फण हैं। विपत्ति के इस गहन गह्वर में

† कृष्ण चरित्र पृ० १२८

फंस कर जब मनुष्य को दुख रूपी विषधर त्रासित करता है तो कृष्ण (ईश्वर) के पाद पद्मों के सिवा उसका कौन सा सहारा रहता है। अभय की वंशी सुन कर आशा का संचार होता है। तात्पर्य यह है कि ईश्वर की शरण में जाने से दुख रूपी सांप से निष्कृति मिलती है।†" वास्तव में कल्पना बड़ी सुन्दर है, परन्तु विचारणीय यह है कि ऐतिहासिकों के लिये रूपक कल्पना का क्या उपयोग हो सकता है ? इतिहासकार का कार्य तथ्यों की योजना करना है न कि कल्पना सृष्टि रचकर विगत अतीत को अपने दृष्टिकोण से देखना। अतः पुराणों की इन असम्भव गाथाओं को रूपक मान कर उनमें सत्यता का अन्वेषण करना व्यर्थ है। यदि पुराणकार को ही इस घटना में कोई रूपक कल्पना अभीष्ट होती तो वह इसका संकेत अवश्य करता। जब मूल ग्रन्थ में ही रूपक का संकेत नहीं है तो ऐसा करना क्लिष्ट कल्पना के अतिरिक्त और क्या है ?

इन्द्रयज्ञ निवारण और गोवर्द्धन पूजा—

इन्द्र यज्ञ के प्रकरण का विवेचन प्रारम्भ करने के पूर्व कृष्ण और बलराम द्वारा मारे जाने वाले दो एक असुरों की चर्चा करना अनुपयुक्त न होगा, इनका वर्णन विष्णु पुराण और ब्रह्मपुराण में है। ब्रह्मपुराण के अनुसार धेनुकासुर गधे के रूप में आया और बलराम द्वारा मारा गया। विष्णुपुराण में इसका वध कृष्ण के द्वारा दिखाया गया है। ब्रह्मपुराण में प्रलम्बासुर नामक राक्षस कृष्ण को मारने के लिये गोप वेश धारण कर आया और कृष्ण द्वारा मारा गया। विष्णुपुराण में इसके मारने का श्रेय बलराम को दिया गया है। पुराणों के परस्पर विरोध का यह अच्छा नमूना है। एक

† कृष्ण चरित्र पृ० १२८, १२९

ही लेखक जब तक वह भंग पीकर लिखने नहीं बैठे ऐसी उलटी बातें नहीं लिख सकता। अब गोवर्द्धन का प्रसंग लीजिये—

गोप लोग प्रतिवर्ष वृष्टि के लिये इन्द्र यज्ञ किया करते थे। कृष्ण ने लोगों को समझाया कि गोप जीवन का आधार गोवंश और गोवर्द्धन पर्वत है, अतः इन्द्रपूजा बंद होनी चाहिये और उसके स्थान पर गायों, गोवत्सों और गोवर्द्धन की पूजा होनी चाहिये। ऐसा ही हुआ। इन्द्रपूजा बंद हो गई और गायों तथा बछड़ों की पूजा हुई। गोवर्द्धन को जो खाद्य पदार्थों का भोग चढ़ाया गया उसे कृष्ण ने गोवर्द्धन का रूप धारण कर खा लिया। इन्द्र अपना यह अपमान देख कर कुपित हुआ और उसने मेघों को व्रज पर मूसलाधार वृष्टि करने की आज्ञा दी। अतिवृष्टि से दुखी होकर गोपियाँ और ग्वाले अपने पशुओं को लेकर कृष्ण की शरण में आये। कृष्ण ने गोवर्द्धन पर्वत उठा का सब को शरण दी और व्रज की रक्षा की। अन्त में इन्द्र ने पराजय स्वीकार की और वह कृष्ण की शरण में आकर क्षमायाचना करने लगा। यह है भागवत कार की उपन्यास कल्पना।*

महाभारत में शिशुपाल महाराज पर व्यंग करता हुआ कहता है—"दीमक के टीले के समान गोवर्द्धन पर्वत को इसने सप्ताह भर थामा भी हो तो वह मेरी समझ में कोई बड़ी बात नहीं है।"† यह लीजिये—शिशुपाल के लिये गोवर्द्धन पर्वत दीमक का टीला ही है! वस्तुतः यह कथा ही असम्भव होने से त्याज्य है। इसमें यदि सत्य का अंश कुछ है तो वह इतना ही है कि कृष्ण

* भागवत १०।अ० २४,२५, विष्णुपुराण ५।१०,११

† महाभारत सभापर्व अ० ४१।९

वल्मीकं मात्रं सप्ताहं यद्यनेन धृतोऽचलः।
तथा गोवर्द्धनो भीष्म न तच्चित्रं मतं मम॥

जैसे दूरदर्शी पुरुष गायों और ग्वालों की सुविधा की दृष्टि से गोवर्द्धन जैसे हरे भरे पर्वत का पूर्ण उपयोग लेने के पक्षपाती थे। पूजा का तात्पर्य जहाँ मान करना और सत्कार करना है, वहाँ किसी वस्तु का उचित उपयोग लेना भी है। गोवर्द्धन पूजा में कृष्ण का यही उद्देश्य रहा होगा।

यहाँ भी वंकिम चन्द्र को गोवर्द्धन धारण आदि कार्यों में पुराण लेखक का कुछ 'गूढ़ तात्पर्य' (?) दृष्टि गोचर हुआ है, यद्यपि इससे पूर्व वे हमारी तरह ही इस कथा को असंभव समझ कर छोड़ चुके हैं। वह गूढ़ तात्पर्य यह है—"प्राचीन आर्य लोग जड़ पदार्थों में परमात्मा की सत्ता और शक्ति समझ कर उनकी पूजा किया करते थे। सूर्य, अग्नि, जल, वायु, वृष्टि आदि की पूजा इसी प्रकार प्रचलित थी। कृष्ण ने मेघों की पूजा बंद करा कर पर्वत और बछड़ों की पूजा प्रचलित कर दी। वंकिम की दृष्टि में यह ठीक ही है क्योंकि आकाशादि जड़ पदार्थों की पूजा की अपेक्षा दरिद्रों और गोवत्सों को खिलाना अधिक धर्म सम्मत है।"*

स्तूयते'' दिया है, उससे भी आर्यों का जड़ पूजक होना तो सिद्ध नहीं होता यह अवश्य जाना जाता है कि परमात्मा एक ही है और वही विभिन्न प्रकार से पूजित होता है। अतः बंकिम का यह श्रम भी व्यर्थ गया। पुराणों की गाथा से कोई उपदेश की बात सिद्ध नहीं हुई।

आज के बुद्धिवाद के युग में गोवर्द्धन धारण जैसी असम्भव कल्पनाओं पर कौन विश्वास करेगा। अब तो युक्तिसंगत और वैज्ञानिक नियमों के अनुकूल बातें ही मानी जाती हैं। तभी तो पुराण वर्णित अलौकिक कथाओं की अलौकिकता को मिटा कर उनका स्वाभाविक और बुद्धिग्राह्य रूप ही जनता के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि स्व० पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय ने गोवर्द्धन धारण की जो युक्ति अनुकूल व्याख्या की है, वह बड़ी मनोरम है। उनके कथन का तात्पर्य यह है कि एक बार व्रज में जब घोर वृष्टि हुई तो उससे व्रज के गोप, गोपियों, गायों और बछड़ों आदि प्राणियों को बड़ा कष्ट हुआ। ऐसे भयंकर जल प्लावन के समय कृष्ण जैसे लोकसेवक का जनता की सेवा के कार्य में पीछे रहना असम्भव था। वे तुरन्त रक्षा कार्य में कूद पड़े। उन्होंने अपनी चतुरता, धैर्य, कार्य-कुशलता और सहयोग तथा सेवा की भावना से घोर विपत्तिकाल में लोगों की रक्षा की। पर्वत की गुफाओं और कन्दराओं में वृष्टि पीड़ित प्राणियों के निवास की व्यवस्था की और इस प्रकार उनको प्राण रक्षा की। यही उनका गोवर्द्धन धारण करना था—

लख अपार प्रसार गिरीन्द्र में,
व्रजधराधिप के प्रिय पुत्र का।

सकल लोग लगे कहने उसे,
रख लिया उंगली पर श्याम ने ॥*

यह है कृष्ण का वास्तविक गोवर्धन धारण ।

यहाँ आते २ कृष्ण की किशोरावस्था समाप्त होती है। इसके आगे पुराणों में रास लीला, गोपी प्रेम और राधा आदि के प्रसंग लिये गये हैं। कृष्ण चरित्र को सर्वाधिक रूप से विकृत करने के लिये पुराणों के ये प्रसंग ही उत्तरदायी हैं, इसका निर्देश पूर्व ही किया जा चुका है। अब इनकी आलोचना की जायगी।

◆◆

११. गोपी प्रसंग

महाभारत में कृष्ण और गोपियों के प्रेम सम्बन्ध का कोई उल्लेख न होने के कारण यह स्पष्टत: काल्पनिक ज्ञात होता है। [कृष्]ण चरित्र के विषय मे महाभारत की प्रामाणिकता सिद्ध की जा [चुक]ी है अत. इसमें गोपियों का उल्लेख न होना यह सिद्ध करता [है] कि परवर्ती पुराणकारों ने ही इसकी सृष्टि की है। इसके मिथ्या [औ]र अनैतिहासिक होने का एक और भी कारण है। सभापर्व [में] राजसूय यज्ञ के अवसर पर शिशुपाल ने कृष्ण की भरपेट निन्दा

की, इसमें उसने कृष्ण के बाल्यकाल और यौवन काल की कोई छोटी से छोटी घटना को भी नहीं छोड़ा। यदि गोपियों और कृष्ण का जार सम्बन्ध प्रचलित होता तो कृष्ण को बदनाम करने का यह स्वर्ण अवसर वह कदापि नहीं चूकता। परन्तु यहाँ तो शिशुपाल भी मौन है। अतः गोपी प्रसंग को पुराण काल और काव्यकाल की उपज क्यों न माना जाय ?

महाभारत में केवल एक स्थान पर द्रौपदी के केशाकर्षण के अवसर पर कृष्ण के लिये पाञ्चाली के मुख से 'गोपीजनप्रिय' शब्द का प्रयोग हुआ है।[†] सम्पूर्ण श्लोक इस प्रकार है—

आकृष्यमाणे वसने द्रौपद्या चिन्तितो हरि ।
गोविन्द द्वारिकावासिन् कृष्ण गोप? जैन प्रिय ॥
सभा० ६७।४१

परन्तु इस सम्बोधन से तो कृष्ण और गोपियों के किसी जा[र] सम्बन्ध की सूचना नहीं मिलती। कृष्ण अपने रूप और गुणों [के] कारण ग्राममण्डली में सर्वजनप्रिय थे, गोपी और ग्वाल सभ[ी] उन्हें हृदय से प्यार करते थे, जैसा कि अब भी सुन्दर औ[र] क्रीडाप्रिय बालक अपने गाँव और मुहल्ले वाले स्त्री पुरुषों [के] प्रेमपात्र बन जाते हैं। अत उक्त सम्बोधन से गोपबालाओं क[ा] कृष्ण के प्रति केवल वात्सल्य स्नेह ही झलकता है।

यद्यपि बंकिम बाबू ने महाभारत में उल्लेख न होने के कार[ण] गोपी प्रसंग को ऐतिहासिक दृष्टि से कोई महत्व नहीं दिया है पर[न्तु]

† इस समय द्रौपदी अपने होश हवास में नहीं थी। महाभारत उसे 'विसंज्ञ कल्पा' कहता है। अत ऐसी प्रतिकूल मन स्थिति में [य]दि उसने अपने सहायक कृष्ण को पुकारा भी तो यह अमनोवैज्ञानिक न[हीं] है।—लेखक

अवतारवाद और पुराण प्रमाणवाद से पीछा न छूटने के कारण उन्होंने इस प्रसंग की भी युक्तिसंगत व्याख्या करने की चेष्टा की है। यह तो वे स्वयं स्वीकार करते हैं कि "विष्णुपुराण, हरिवंश और भागवत में उपन्यास की उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। महाभारत में गोपियों की कथा नहीं है, विष्णु पुराण, में पवित्र भाव से है, हरिवंश में विलासिता की कुछ गंध है, भागवत में उसकी अधिकता है, पर ब्रह्म वैवर्त की कुछ मत पूछिये, उसमें तो विलासिता की नदी उमड़ चली है।" कृष्ण चरित्र पृ० १३६

विष्णुपुराण

विष्णुपुराण वर्णित रास लीला * प्रसंग को बंकिम ने विस्तार पूर्वक उद्धृत किया है † और उससे निम्न निष्कर्ष निकाले हैं—

(१) 'रम् क्रीड़ायाम्' धातु से सिद्ध होने के कारण "रमण" शब्द का अर्थ सामान्य मनोरञ्जन की क्रीड़ाओं से है। इसी प्रकार 'रास' एक क्रीड़ा विशेष है। ‡ इसका वासना से कुछ सम्बन्ध नहीं है।

(२) रासलीला रूपक है। यह कृष्ण और गोपियों की चित्त-रंजिनी वृत्ति का अनुशीलन है। ¶ गोपियों के लिये यह ईश्वर की उपासना का एक प्रकार है।

हमें प्रथम के विषय में कुछ नहीं कहना है। शृंगारोद्दीपन की भावना से वर्जित मनोरंजन प्रधान क्रीड़ाओं पर आक्षेप करना हमारा उद्देश्य नहीं है। विष्णु पुराण में शायद कोई बड़ी आपत्ति

---

* वि० पु० ५।१३
† कृष्ण चरित्र पृ० १३७-१४५
‡ वही पृ० १४६
¶ वही पृ० १४७

नहीं यद्यपि निम्न श्लोक हमारे हृदय में शंका पैदा करने का पर्याप्त अवसर प्रदान करते हैं—

काचिद् प्रविलसद्बाहुः परिरम्य चुचुम्ब तम् ।
गोपी गीतस्तुति व्याजान्निपुणा मधुसूदनम् ।।
गोपी कपोल संश्लेषमभिगम्य हरेर्भुजौ ।
पुलकोद्गम्यस्याय स्वेदाम्बु घनतां गतौ ।।*

कपटता में निपुण एक गोपी ने कृष्ण के गीत की स्तुति करने के छल से बाहु से आलिंगन कर मधुसूदन का चुम्बन किया। कृष्ण की दोनों भुजायें किसी गोपी के कपोलों से छू जाने पर पुलकोद्गम स्वरूप अन्नादि उत्पन्न करने के लिये स्वेदाम्बु मेघ बन गये। प्रथम श्लोक में गोपी के छलपूर्ण आलिंगन और चुम्बन का वर्णन है और दूसरे श्लोक में तो स्पष्ट ही कहा गया है कि किसी गोपी के कपोलों का स्पर्श हो जाने के कारण कृष्ण को प्रस्वेद सात्विक हो गया। साहित्य मे रति भाव की उत्पत्ति नायक नायिका में ही मानी जाती है, बालक बालिका में नहीं। अतः विष्णुपुराण के उपर्युक्त श्लोक निश्चय ही लौकिक वासना रंजित प्रेम के सूचक हैं।

बंकिम के इस कथन से भी हम सहमत नहीं हैं कि प्राचीन काल मे स्त्रियों के लिये ज्ञानमार्ग का निषेध था, इसलिये जारभाव से ईश्वर की भक्ति करने के अतिरिक्त उनके लिये मोक्ष का और कोई मार्ग ही नहीं था। उनका यह कथन निश्चय ही शास्त्र विषयक अनभिज्ञता का सूचक है। वैदिककाल में ही घोषा, अपाला, लोपामुद्रा आदि अनेक मंत्रद्रष्टा ऋषिकायें हो गई हैं जिन्होंने वेद मंत्रों का साक्षात्कार किया। ज्ञानमार्ग में प्रवीण

* वि० पु० ५।१३।५४,५५

उपनिषदों की गार्गी, मैत्रेयी, सुलभा आदि ब्रह्मवादिनी स्त्रियाँ प्रसिद्ध ही हैं। अत बंकिम के इस कथन में कुछ अधिक सार नहीं है कि ज्ञानकाण्ड का निषेध होने और कर्मकाण्ड के जटिल होने के कारण स्त्रियों का भक्तिमार्ग में ही विशेष अधिकार था। और वह भक्ति भी कौन सी, पुराणों की वासना रंजित जारभाव मूलक जिसका उपादान बंकिम के कथनानुसार लौकिक सौन्दर्य है। शास्त्रकारों ने जिस ब्रह्म को प्राप्त करने के लिये योगसाधन, जप, उपासना, सत्संग, परोपकार आदि श्रेष्ठ कर्मों का विधान किया, उसे इन पुराणकारों ने इतना सस्ता बना दिया, जिसकी कोई सीमा नहीं रही। अब जार भाव भी भक्ति के अन्तर्गत परिगणित होने लगा। बंकिम कहते हैं—"जो ब्रह्म ज्ञानियों के ज्ञान का और योगियों के याग का चरमोद्देश्य है, वही ज्ञान प्राप्त कर गोपियां ईश्वर में लीन हो गईं।" * ब्रह्म में अवस्थित होने का क्या ही सहज उपाय है! परन्तु क्या यह विडम्बना के अतिरिक्त भी कुछ है?

लीला को आत्माराम की आत्मक्रीड़ा का रूप दिया है, परन्तु जब कृष्ण का ईश्वरत्व ही सिद्धि की अपेक्षा रखता है तो रासलीला की इस आध्यात्मिक व्याख्या का अधिक मूल्य नहीं हो सकता।

हरिवंश —

इसी प्रकार हरिवंश का गोपी प्रसंग उद्धृत करने के अनन्तर बंकिम बाबू उसे कविता, गम्भीरता, विद्वत्ता और उदारता में विष्णुपुराण से न्यून बतलाते हैं। उनके कथनानुसार विष्णुपुराणकार ने रास के जिस गूढ़ तात्पर्य का संकेत किया था वह हरिवंशकार नहीं समझ सका। यदि नहीं समझ सका तो यह हरिवंशकार के लिये खेद और लज्जा का विषय है। विष्णुपुराण कर्ता व्यास ने तो रूपक की कल्पना कर रास क्रीड़ा को निर्दोष सिद्ध कर दिया पर हरिवंश कर्ता व्यासजी उस रहस्य को न समझ कर विलास वर्णन में फंस गये। क्या अब भी कोई व्यक्ति आधुनिक पुराणों को एक ही व्यक्ति की रचना कहने का साहस कर सकता है? बंकिम को भी हरिवंश का यह कथन—"तास्त पयोधरोत्तानैरुरोभि समपीडयन्" अखरा। वास्तव में विलासिता और आध्यात्मिकता का समन्वय कठिन ही है।

भागवत—

बंकिम भागवत को अन्य पुराणों से नया मानते हैं और यह भी वे स्वीकार कर चुके हैं कि उसमें विलासिता की कुछ अधिक गंध है। अंत में तो वे यहाँ तक लिखने के लिये बाध्य हुये कि कहीं कहीं तो भागवतकार ने आजकल की रुचि के विरुद्ध कर दिया है। परन्तु कुछ ही पंक्तियों के बाद आप लिखते हैं, "उसके (भागवत) भीतर भक्ति तत्व छिपा हुआ है। हरिवंशकार की"

तरह भागवतकार विलासप्रियता के दोष से दूषित नहीं है।" † मैं नहीं कह सकता कि इससे अधिक परस्पर विरोध और किसी ग्रन्थकार की रचना में हो सकता है।

भागवत में रास का वर्णन १० वे स्कन्ध के पांच अध्यायों में हुआ है जो रास पंचाध्यायी के नाम से प्रसिद्ध हैं। इसका आरम्भ २२ वें अध्याय की चीरहरण लीला से होता है। चीर हरण की कथा महाभारत, विष्णुपुराण, हरिवंश आदि में कहीं नहीं। बंकिम के अनुसार यह भागवत बनाने वाले की कल्पना है और आजकल की रुचि के विरुद्ध भी है। सर्व प्रचलित और अश्लील होने के कारण मूल कथा को न लिख कर यहाँ बंकिम के तद्विषयक विचारों की समीक्षा करना ही उपयुक्त होगा। बंकिम चन्द्र चाहे चीरहरण लीला में कोई शिक्षाप्रद उपदेश ढूंढ निकालने में सफल हो जायं, परन्तु वे भागवत की अश्लीलता को छिपा नहीं सके। चीरहरण विषयक श्लोकों को उद्धृत करने के प्रसंग में बंकिम बाबू लिखते हैं—"पीछे जो कुछ हुआ वह मैं स्त्री और बालकों के समझने योग्य भाषा में किसी तरह नहीं लिख सकता।" यहाँ आपने केवल मूल संस्कृत श्लोक ही लिखे हैं, परन्तु अपनी रूपक प्रियता के फेर में पड़कर भागवतकार के नग्नवर्णन को भूल कर लिखने लगे, "भक्ति का यही छिपा हुआ तत्व है।" यदि वास्तव में यह भक्ति का गूढ़ रहस्य है तो इससे आप स्त्रियों और बालकों को क्यों वंचित रखना चाहते हैं? क्या चीरहरण जैसी आदर्श (?) लीला से भारत के बालक और नारी वर्ग लाभ नहीं उठायेंगे?

पौराणिक वर्ग की दृष्टि में—जिसमें हम बंकिमचन्द्र को भी सम्मिलित कर लेते हैं, चीरहरण लीला के निम्न उद्देश्य थे—

---

† पृ० १५६ कृष्ण चरित्र

(१) गोपियाँ यमुना जल में नग्न होकर स्नान कर रही थीं। उनके वस्त्रापहरण द्वारा कृष्ण उन्हें यह सिखाना चाहते थे कि नदी में इस प्रकार नग्न स्नान करना मर्यादा विरुद्ध है और इससे जल के अभिमानी देवता का अपमान होता है।

टिप्पणी—यह ठीक है कि शिष्टता की दृष्टि से सार्वजनिक जलस्थानो पर नग्न स्नान करना उचित नहीं है। जल के अभिमानी देवता का तो हम अस्तित्व ही स्वीकार नहीं करते। परन्तु क्या गोपियों को शिक्षा देने का यही उपाय था कि उनके वस्त्र चुरा लिये जायं ?

(२) हमारे समक्ष एक पुस्तक है—"भगवान् कृष्ण की पवित्र चीरहरण लीला और उसका रहस्य।" †इसके लेखक महात्मा आनन्द स्वरूपजी ने चीरहरण लीला को एक रूपक माना है। इसके अनुसार चित्त वृत्तियाँ गोपियाँ हैं और अन्तरात्मा भगवान् कृष्ण हैं। चित्तवृत्तियों को अन्तरात्मा में लीन करना इसका आध्यात्मिक उद्देश्य बताया गया है। लेखक ने अन्य वस्तुओं के सांग रूपक की योजना इस प्रकार की है—

वस्त्र—पंचतन्मात्रायें

यमुना—असंप्रज्ञात समाधि

कदम्ब वृक्ष—ब्रह्मरंध्र

यह तो है चीरहरण लीला की आध्यात्मिक व्याख्या। इसके अतिरिक्त लेखक ने इस लीला पर राजनैतिक और सामाजिक दृष्टि से भी विचार किया है। राजनैतिक दृष्टि से विचार का अभिप्राय यह है कि चीरहरण लीला द्वारा कृष्ण ने गोपियों को स्वदेशी वस्त्रों के धारण करने का उपदेश दिया और विदेशी वस्त्रों की हानियाँ बताईं। शायद कांग्रेस के स्वदेशी वस्त्र आन्दोलन से ही प्रभावित होकर लेखक को यह व्याख्या करने का अवसर

† प्रकाशक—मरुधर प्रकाशन समिति जोधपुर प्रथम सं० १९९३

प्राप्त हुआ। चीरहरण लीला का सामाजिक दृष्टि कोण वही है जिस पर हम पूर्व ही विचार कर चुके हैं, अर्थात् नग्नस्नान के दोषों का दिग्दर्शन कराना। पुस्तक के अन्त में लेखक ने यह भी बताने का यत्न किया है कि चीरहरण के समय कृष्ण की आयु लगभग १० वर्ष की थी क्योंकि ११ वर्ष के प्रारम्भ में ही उन्होंने व्रज छोड़कर मथुरा के लिये प्रयाण किया। दश वर्ष के बालक के हृदय में काम विकार की उत्पत्ति हो ही नहीं सकती। अतः इस दृष्टि से भी चीरहरण लीला निर्दोष है।

चीरहरण लीला का भागवत वर्णित स्वरूप और उसकी इन नूतन व्याख्याओं पर सम्पूर्ण रीतया विचार करने के पश्चात् ही हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि रूपक कल्पना और आलंकारिक व्याख्यायें बहाने मात्र हैं। हमारे पास इसके लिये क्या प्रमाण है कि यह सारी बातें आध्यात्मिकता का उपदेश देने के लिये लिखी गई हैं, या इनसे राजनैतिक और सामाजिक आदर्श उपस्थित होता है? वस्तुतः इतिहास इतिहास ही है और रूपक रूपक ही। ऐतिहासिक महापुरुषों की जीवन घटनाओं का विश्लेषण करते समय रूपक योजना को पृथक् ही रखना पड़ेगा। क्या कृष्ण के अतिरिक्त अन्य ऐतिहासिक पुरुषों की चरित्रालोचना करते समय

वैष्णव

भवन जैसी लीलायें अथवा वल्लभ सम्प्रदाय के महाराजों के लाइवल केस। परमात्मा इन पौराणिकों को सद्बुद्धि दे ताकि वे पुराणों के कुत्सित वर्णनों के फेर में न पड़ कर कृष्ण चरित्र की पवित्रता की रक्षा करें। अस्तु।

चीरहरण की इस लीला के साथ रासलीला का कारणकार्य का सम्बन्ध है। गोपियों के चीर लौटाने के उपरान्त कृष्ण ने उन्हें वचन दिया कि जिस उद्देश्य से तुमने कात्यायनी व्रत किया है वह आगामी शरद् ऋतु की पूर्णिमा को सफल होगा। अर्थात् तुमने मुझे पति रूप में प्राप्त करने की इच्छा की है, तुम्हारी यह इच्छा आगामी पूर्णिमा को पूर्ण होगी (अर्थात् उस दिन मैं तुम्हारा पति बनूंगा)। इसके पश्चात् रास पंचाध्यायी का प्रकरण आता है जिस में गोपियों और कृष्ण की रास क्रीड़ा का विस्तृत वर्णन है। पौराणिक उपाख्यानों के समर्थक लोग निम्न तर्क देकर कृष्ण गोपी सम्बन्ध की शुद्धता और पवित्रता सिद्ध करने का प्रयास करते हैं—

(१) कृष्ण और गोपियों का सम्बन्ध आध्यात्मिक है—लौकिक नहीं। इसे समझाने के लिये वे एक अन्य तर्क की उद्भावना करते हैं—

(२) गोपियां जीवात्माओं की प्रतीक हैं और कृष्ण साक्षात् ब्रह्म (परमात्मा) हैं। उनका यह मिलन आत्मा और परमात्मा के मिलन का रूपक है—अलंकृत वर्णन है। यदि पुराण वर्णित इन प्रसंगों के स्थूल शारीरिक मिलन के वर्णनों की ओर उनका ध्यान आकर्षित कराया जाता है तो वे कहते हैं कि उस समय श्रीकृष्ण की

(३) आयु दश वर्ष के आस पास थी। उनके मन में काम का उदय कैसे हो सकता था ?

प्राप्त हुआ। चीरहरण लीला का सामाजिक दृष्टि कोण वही है जिस पर हम पूर्व ही विचार कर चुके हैं, अर्थात् नग्नस्नान के दोषों का दिग्दर्शन कराना। पुस्तक के अन्त में लेखक ने यह भी बताने का यत्न किया है कि चीरहरण के समय कृष्ण की आयु लगभग १० वर्ष की थी क्योंकि ११ वर्ष के प्रारम्भ में ही उन्होंने ब्रज छोड़कर मथुरा के लिये प्रयाण किया। दश वर्ष के बालक के हृदय में काम विकार की उत्पत्ति हो ही नहीं सकती। अतः इस दृष्टि से भी चीरहरण लीला निर्दोष है।

चीरहरण लीला का भागवत. वर्णित स्वरूप और उसकी इन नूतन व्याख्याओं पर सम्पूर्ण रीत्या विचार करने के पश्चात् ही हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि रूपक कल्पना और आलंकारिक व्याख्यायें बहाने मात्र हैं। हमारे पास इसके लिये क्या प्रमाण है कि यह सारी बातें आध्यात्मिकता का उपदेश देने के लिये लिखी गई हैं, या इनसे राजनैतिक और सामाजिक आदर्श उपस्थित होता है? वस्तुतः इतिहास इतिहास ही है और रूपक रूपक ही। ऐतिहासिक महापुरुषों की जीवन घटनाओं का विश्लेषण करते समय रूपक योजना को पृथक ही रखना पड़ेगा। क्या कृष्ण के अतिरिक्त अन्य ऐतिहासिक पुरुषों की चरित्रालोचना करते समय भी हम रूपक कल्पना का सहारा लेते हैं? फिर सारी बात घूम फिर कर कृष्ण के ईश्वर होने पर आ खड़ी होती है और अवतारवादियों के पास इसके लिये प्रमाणों का सर्वथा अभाव है। अतः हमारा यह निश्चित मत है कि चीरहरण आदि लीलायें पुराण लेखकों की कपोल कल्पनायें हैं इनसे कृष्ण चरित्र की पावनता नष्ट होती है, विधर्मियों को कटाक्ष करने का अवसर मिलता है, व्यभिचारियों को अपने दुष्कर्मों के लिये ईश्वरीय प्रेरणा का सहारा मिलता है, और उसका दुष्परिणाम होता है—कलकत्ते के गोविन्द-

भवन जैसी लीलायें अथवा वल्लभ सम्प्रदाय के महाराजों के लाइबल केस। परमात्मा इन पौराणिकों को सद्बुद्धि दे ताकि वे पुराणों के कुत्सित वर्णनों के फेर में न पड़ कर कृष्ण चरित्र की पवित्रता की रक्षा करें। अस्तु।

चीरहरण की इस लीला के साथ रासलीला का कारणकार्य का सम्बन्ध है। गोपियों के चीर लौटाने के उपरान्त कृष्ण ने उन्हें वचन दिया कि जिस उद्देश्य से तुमने कात्यायनी व्रत किया है वह आगामी शरद्‌ऋतु की पूर्णिमा को सफल होगा। अर्थात् तुमने मुझे पति रूप में प्राप्त करने की इच्छा की है, तुम्हारी यह इच्छा आगामी पूर्णिमा को पूर्ण होगी (अर्थात् उस दिन मैं तुम्हारा पति बनूंगा)। इसके पश्चात् रास पंचाध्यायी का प्रकरण आता है जिस में गोपियों और कृष्ण की रास क्रीड़ा का विस्तृत वर्णन है। पौराणिक उपाख्यानों के समर्थक लोग निम्न तर्क देकर कृष्ण गोपी सम्बन्ध की शुद्धता और पवित्रता सिद्ध करने का प्रयास करते हैं—

(१) कृष्ण और गोपियों का सम्बन्ध आध्यात्मिक है—लौकिक नहीं। इसे समझाने के लिये वे एक अन्य तर्क की उद्भावना करते हैं—

(२) गोपियां जीवात्माओं की प्रतीक हैं और कृष्ण साक्षात् ब्रह्म (परमात्मा) हैं। उनका यह मिलन आत्मा और परमात्मा के मिलन का रूपक है—अलंकृत वर्णन है। यदि पुराण वर्णित इन प्रसंगों के स्थूल शारीरिक मिलन के वर्णनों की ओर उनका ध्यान आकर्षित कराया जाता है तो वे कहते हैं कि उस समय श्रीकृष्ण की

(३) आयु दस वर्ष के आस पास थी। उनके मन में काम का उदय कैसे हो सकता था ?

(४) पुराणेतर कथाओं से वे यह भी सिद्ध करने का यत्न करते हैं कि गोपियाँ पूर्व जीवन में वेदों की ऋचायें थीं और उन्होंने जब त्रेता युग में भगवान् राम के अपूर्व रूप माधुर्य से मुग्ध होकर उनसे रमण की इच्छा प्रकट की तो उन्होंने कृष्णावतार तक प्रतीक्षा करने को कहा और यह भी कहा कि उस समय वे गोपियाँ बन कर इन्हें जार भाव से प्राप्त कर सकेंगी।

बंकिम को इन अद्भुत व्याख्याओं से कुछ भी संतोष नहीं होता। वे इन्हें पुराण लेखकों की मन गढ़न्त कथायें ही समझते हैं, परन्तु रूपक का भूत पीछे पड़ा होने के कारण अनेक द्राविड़ प्राणायाम करने के अनन्तर वे भी उक्त निर्दिष्ट प्रथम तर्क के आस पास घूमते रहते हैं और भागवतकार को निर्दोष सिद्ध करने का असफल प्रयास करते हैं।

वस्तुत: पौराणिक व्याख्याकारों के उपर्युक्त तर्क बड़े कच्चे हैं। आत्मा परमात्मा के रूपक की युक्ति अधिक देर तक नहीं ठहरती। वेदों में जार भाव की भक्ति का कहीं उल्लेख नहीं है और न कहीं इस बात का संकेत है कि जीवात्मा स्त्री बन कर परमात्मा को पति के रूप में प्राप्त करता है। वेदों में जीव और ईश्वर का सम्बन्ध पिता पुत्र, राजा प्रजा, स्वामी सेवक, गुरु शिष्य और मित्र मित्र का तो अवश्य बतलाया गया है* परन्तु पति पत्नी भाव या परकीया भाव का वर्णन कहीं नहीं है। यह उपासना वाममार्ग की है

* पिता पुत्र का सम्बन्ध—

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ। अधा ते सुम्नमीमहे॥

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा॥

मित्र मित्र का सम्बन्ध—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।

जो सहजयानी बौद्धों के सम्प्रदाय में होकर वैष्णव मत में प्रविष्ट हुई और सखी सम्प्रदाय के रूप में घोर अतिवादिता को प्राप्त हो गई। इस प्रकार के रूपकों की व्यर्थ कल्पना के अनौचित्य को बार बार बताने की आवश्यकता नहीं है।

जब रूपक वाला तर्क निष्फल हो जाता है तो पौराणिक वर्ग यह कहने लगता है कि रास लीला के समय कृष्ण की आयु दस वर्ष के लगभग थी, उस समय यौन भावनाओं का उदय भी नहीं होता, अतः ऐसी परिस्थिति में उन पर गोपियों से रतिक्रीडा करने का आरोप नहीं लगाया जा सकता। हमारा निवेदन है कि आपके पुराण ही इस बात की साक्षी देते हैं कि गोपियों के साथ उनका शारिरिक सम्बन्ध स्थापित हुआ था। वासना के स्पष्ट संकेतों के विद्यमान रहते हुये भी यदि हठवादिता के वशवर्ती होकर आप इस सम्बन्ध को शुद्ध और पवित्र ही मानते रहें तो यह दुराग्रह के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। साथ ही यदि पुराणों में उस समय कृष्ण की अवस्था ९—१० वर्ष की बताई गई है तो पुराणों पर परस्पर विरुद्ध कथन का एक दोष और आता है। एक ओर तो पुराणकार कृष्ण को अल्पवयस्क बालक बताता है और दूसरी ओर संभोग का स्थूल वर्णन करता है। अब पुराण क्या हुआ—चूं चूं का मुरब्बा हो गया। कृष्ण बालक भी हैं, अतः वे शृङ्गार के उपादानों को क्या समझें? साथ ही कृष्ण गोपियों से शृङ्गार चेष्टायें भी करते हैं। यह परस्पर विरोध का दोष ही पुराणों की मान्यता में सबसे बड़ा बाधक सिद्ध होता है।

हम तो श्रीकृष्ण के बाल्यकाल को शुद्ध और पवित्र ब्रह्मचर्य की अवस्था समझते हैं अतः पुराण वर्णित सब बातों को मिथ्या समझने के कारण हमारे पक्ष में कोई दोष नहीं आता।

गोपियों को वेदों की ऋचाओं का अवतार मानना चण्डूखाने

की गप्प के अतिरिक्त और क्या है ? भला शब्द जैसा सूक्ष्म तत्व भी स्त्री शरीर धारण कर सकता है ? यह कथा राम के पवित्र यश को भी कलंकित करती है"। एक समय आया था जब कि रामोपासक सम्प्रदाय में भी परकीया भाव की उपासना का प्रवेश हो गया था। पुराण की घटना उसी ओर संकेत करती है।

भागवत के रासलीला वर्णन में स्थूल ऐन्द्रिय भावनाओं का स्पष्ट वर्णन है। बंकिम भी भागवत में वासनामूलक भावनाओं की उपस्थिति स्वीकार करते हैं, अतः जो लोग यह कहते हैं कि भागवत वर्णित रासलीला में कुछ भी स्थूलता नहीं है उन्हें सावधान होकर निम्न श्लोकों को पढ़ना चाहिये—

कस्याश्चिन्नाट्य विक्षिप्त कुण्डलत्विषमण्डितम् ।
गण्डं गण्डे संदधत्याः प्रादात्ताम्बूलचर्वितम् ॥
नृत्यन्ती गायन्ती काचित् कूजन्नूपुरमेखला ।
पार्श्वस्थाच्युत हस्ताब्जं श्रान्ताऽधात् स्तनयोःशिवम्॥

क्या यहाँ कृष्ण गोपी के आध्यात्मिक सम्बन्धों की चर्चा हो रही है ?

इसी विचित्र रासलीला की कथा को सुनकर बेचारे परीक्षित ने शुकदेव से ठीक ही पूछा था—

संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च ।
अवतीर्णो हि भगवानंशेन जगदीश्वरः ॥
स कथं धर्मसेतूनां वक्ताकर्त्ताभिरक्षिता ।
प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन् परदाराभिमर्शणम् ॥*

हे ब्रह्मन्, आपने कहा था कि भगवान् जगदीश्वर धर्म की स्थापना करने और अधर्म को प्रशमन करने के निमित्त अंशावतार लेते हैं। उन्होंने स्वयं धर्म मर्यादा का वक्ता, कर्ता और रक्षिता होकर किस प्रकार उसके विपरीत परस्त्रीस्पर्श रूपी महान अधर्म का काम किया ? इस उचित प्रश्न का जैसा निर्लज्जतापूर्ण उत्तर शुकदेव ने दिया, उसे पढ़कर तो एक बार लज्जा को भी लज्जा आजायगी। उन्होंने कहा—"समरथ को नहिं दोष गुसाईं"। भगवान् स्वयं ईश्वरावतार हैं अतः उन्हें परदारास्पर्श का दोष दूषित नहीं कर सकता। वाह क्या तर्क है ? एक ओर तो गीता में कहते हैं—

* भागवत १०। ३३। २७

यद्यदाचरति श्रेष्ठः स्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ ३ । २१

श्रेष्ठ पुरुषों के आचरण का अनुकरण सामान्य जनता करती है, अतः उन्हें अपने आचरण को विशेषतया पवित्र और अनुकरणीय बनाना चाहिये। अब यदि कृष्ण के इसी भागवतोक्त कदाचार का लोग अनुकरण करने लगें तो समाज में जो उच्छृंखलता और अराजकता उत्पन्न हो जायगी, उसके लिये भागवत के अतिरिक्त और कौन उत्तरदायी होगा ? शुकदेवजी के उत्तर से चाहे पाठकों का समाधान हो या न हो, इससे यह तो अवश्य सिद्ध हो गया कि वास्तव में दाल में कुछ काला अवश्य था। यदि कृष्ण का परस्त्रीसम्पर्क न हुआ होता और कृष्ण अल्पायु बालक ही होते तो परीक्षित इतना मूर्ख नहीं था कि वह व्यर्थ में इस प्रकार की शंका उपस्थित करता। अस्तु।

इस प्रसंग को अब अनावश्यक विस्तार न देते हुये इतना ही कह देना पर्याप्त समझते हैं कि कृष्ण गोपी मिलन का पुराणकृत वर्णन हमारी संस्कृति का अमिट कलंक है। यदि दुर्जनतोष न्याय से इसे आध्यात्मिक रूपक मान भी लिया जाय और उसके आधार पर गोपियों के आचरण को भक्ति प्रेरित समझा जाय तो भी पुराणों के उन वासना रंजित स्थलों का क्या होगा, जिनमें विषय वासना का उद्दाम नृत्य दिखाई देता है। उदाहरण आगे राधा के प्रसंग में आयेंगे। पुराणों और काव्यों की यह गर्हित स्थूलता ही कृष्ण चरित्र की सबसे बड़ी विकृति है। जब तक पुराणों को मान्य समझा जायगा तब तक कृष्ण चरित्र की शुद्धि असम्भव है और जब तक कृष्ण का निर्मल और लोक पावन चरित्र संसार के

सम्मुख नहीं आता तब तक विश्व मानव की प्रगति और उन्नति भी असम्भव है।

बंकिम के निम्न कथन के प्रारम्भिक अंश से चाहे हम सहमत न हों, परन्तु उसका शेष अंश हमारे सामने एक महान सत्य का उद्घाटन करता है—"भागवत में भक्ति का जो गूढ़ तत्व है, वह जयदेव गोस्वामी के हाथों में जाकर मदन धर्मोत्सव बन गया। तब से हमारी जन्मभूमि मदनोत्सव के बोझ से दबी चली आती है। इस हेतु कृष्ण चरित्र की नूतन व्याख्या की आवश्यकता है।"†

१२. राधा

पौराणिक धर्म में राधा कृष्ण की प्रेयसी के रूप में स्वीकृत हुई है, परन्तु वह कृष्ण की विवाहिता भार्या नहीं है। राधा के बिना कृष्ण की कल्पना आज का हिन्दू नहीं कर सकता। वह कृष्ण की प्रमुख शक्ति के रूप में कल्पित की गई है और दार्शनिक प्रवृत्ति के लोगों ने दोनों को पुरुष और प्रकृति का स्थानापन्न स्वीकार किया है। हमारे विवेचन में राधा की रूपक योजना या आध्यात्मिक व्याख्या के लिये कोई स्थान नहीं है, हम शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टि से इसकी गवेषणा करने के इच्छुक हैं।

जिन महाभारत, पुराण आदि ग्रन्थों में कृष्ण चरित्र का समारोह पूर्वक वर्णन किया गया है, उनमें एक ब्रह्मवैवर्त पुराण को छोड़ कर किसी में राधा का उल्लेख नहीं है। भागवत के टीकाकारों को जब मूल ग्रंथ में कहीं राधा का पता नहीं चला तो उन्होंने पाद टिप्प-

† कृष्ण चरित्र पृ० १६४

स्त्रियों में राधा का नाम इस आधार पर जोड़ना प्रारम्भ कर दिया कि रास पंचाध्यायी में जहाँ कृष्ण का किसी विशेष गोपी को साथ लेकर अन्तर्धान हो जाना लिखा है, उस विशेष गोपी से भागवतकार का अभिप्राय 'राधा' से ही है। परन्तु यह टीकाकारों का विशुद्ध भ्रम है। क्यों कि कृष्ण का गोपी विशेष को लेकर गायब हो जाना राधा के अस्तित्व को सिद्ध नहीं करता, हाँ ऐसा सोचना गोपियों की ईर्ष्या जन्य मनःस्थिति में सम्भव अवश्य है।

अतः यह स्वीकार करने में कुछ भी शंका नहीं होनी चाहिये कि जो राधा आज वैष्णव भक्तों की 'स्वामिनीजी,' 'लाड़िलीजी' आदि के पद पर प्रतिष्ठित है और जिसके बिना कृष्ण की पौराणिक कल्पना अधूरी रहती है, उसका अस्तित्व भी महाभारत, हरिवंश, भागवत और विष्णु पुराण में नहीं है। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं राधा का नाम सर्वप्रथम ब्रह्मवैवर्त पुराण में मिलता है। प्रो० विल्सन की सम्मति में यह पुराण सर्वथा नवीन है। अन्यान्य खोजों से भी यह सिद्ध हो गया है कि इसकी रचना १६ वीं शताब्दी के लगभग हुई है।* मत्स्य पुराण में ब्रह्मवैवर्त पुराण का जो लक्षण और परिचय दिया हुआ है, वह वर्तमान उपलब्ध ब्रह्मवैवर्त में नहीं घटता, इससे बंकिम का यह अनुमान है कि प्राचीन ब्रह्मवैवर्त लुप्त हो गया और उसके स्थान पर यह नवीन ग्रन्थ प्रचलित हो गया। खैर कुछ भी हो, प्रचलित ब्रह्मवैवर्त में ही राधा की प्रथम कल्पना की गई है और यह भी सिद्ध हो गया कि यह ग्रन्थ सर्वथा नवीन है। अतः ऐतिहासिक दृष्टि से राधा का कृष्ण के जीवन में एक औपन्यासिक घटना से अधिक महत्व नहीं है।

* पं० वेंकटेश नारायण तिवारी का सरस्वती में लेख

राधा के तथाकथित आलंकारिक रूप की समीक्षा करने से पूर्व यह देख लेना आवश्यक है कि ब्रह्मवैवर्त में अवतारवाद का सिद्धान्त एक अभिनवरूप में उपस्थित हुआ है। अब तक यह समझा जाता था कि कृष्ण विष्णु के अवतार हैं, परन्तु ब्रह्मवैवर्त ने नक्शा पलट दिया। यहाँ कृष्ण ही अनादि चिन्मय तत्व ठहराये गये हैं और विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र आदि देवत्रयी उनकी कृति है। कृष्ण का निवास गोलोक में है जहाँ वे अपनी चिन्मय शक्ति राधा के साथ निवास करते हैं। गोलोक में राधा के अतिरिक्त अन्य गोपियाँ भी रहती हैं। इनमें एक वृजा नामक गोपी है। वृजा के साथ कृष्ण का सम्बन्ध स्थापित हो जाने पर राधा कृष्ण से नाराज होकर कहती है—

> शीघ्रं पद्मावतीं गच्छ रत्नमालां मनोरमाम्।
> अथवा वनमालांश रूपेण प्रतिमाम् व्रज ॥ ६० ॥
> हे नदीकान्त दवेश देवानां च गुरोर्गुरो।
> मया ज्ञातोऽसि भद्रं ते गच्छ गच्छ ममाश्रमात् ॥ ६१
> हे सुशील शशिकान्ते हे पद्मावति माधवी।
> निवार्यतां च धूर्तोऽयं किमत्रास्य प्रयोजनम् ॥६२॥

यहाँ तो पुराणकार ने मधुर वचनों की वृष्टि ही करा दी है। पुराणों की सती, साध्वी पतिव्रताओं के मुख से ऐसे ही वचन शोभा देते हैं।

> कथं दुनोषि मां लोल रति चौर्गातिलम्पट ॥*

राधा कृष्ण को वृजा के मंदिर में रंगे हाथों पकड़ने के लिये जाती है तो वृजा के द्वारपाल श्रीदामा उसे रोकते हैं। राधा

* ब्रह्म वैवर्त प्र० कृष्ण जन्म खण्ड ३।५९

श्रीदामा को असुर होने का शाप देती है। श्रीदामा बदले में राधा को मनुष्य कुल में जन्म लेने, रायाण वैश्य की स्त्री बनने और कलंक लगने का शाप देते हैं। फलतः राधा और कृष्ण धराधाम पर अवतीर्ण होते हैं।

ब्रह्मवैवर्त में राधा और कृष्ण की जिस विलास लीला का वर्णन किया गया है वह अत्यन्त स्थूल और संस्कृत रुचि के प्रतिकूल है। उसमें नग्न वासना का इतना उत्तेजक वर्णन मिलता है जिसे देख कर कोई यह कहने का साहस नहीं कर सकता कि यह पुस्तक व्यास जैसे विद्वान, संयमी और तपस्वी ऋषि की कृति है। इतना होने पर भी लोगों को राधा और कृष्ण के विषय में बड़ी भक्ति भाव पूर्ण बातें कहते सुना जाता है। वे यह कह कर पुराणों की रक्षा करते हैं कि यह सब वर्णन आध्यात्म भावनाओं से ओत प्रोत है। उनके कथन का सारांश निम्न है—

(१) राधा और कृष्ण का सम्बन्ध अलौकिक और दिव्य है। उसमें किसी प्रकार की मांसलता और स्थूलता नहीं है।

(२) श्रीपाद दामोदर सातवलेकर का कथन है कि राधा का कृष्ण के प्रति पवित्र भक्तिपूर्ण सम्बन्ध है उसमें कामुकता के भाव देखना भूल है।†

(३) बंकिम जैसे मनीषी यद्यपि राधा के अस्तित्व को पौराणिक लेखकों का कल्पना विलास मात्र समझते हैं, परन्तु पुराणों के मिथ्या उपाख्यानों को एक दम त्याग देने के साहस के अभाव में इसे पुरुष और प्रकृति का रूपक मानते हैं। आगे प्रसंग आने पर बंकिम के मत को विस्तृत रूप से उद्धृत कर उसका खण्डन किया जायगा।

† कृष्ण का चरित्र—पं० श्री० दा० सातवलेकर—आर्यमित्र २६ जून १९५२

सर्व प्रथम राधा और कृष्ण का सम्बन्ध विचारणीय है। गोलोक में उनका चाहे जितना निकट का सम्बन्ध हो, परन्तु ब्रह्मवैवर्त में ही राधा को कृष्ण की मातुल पत्नी (मामी) बताया गया है। कैसे, जरा ब्रह्मवैवर्त के श्लोकों का अवलोकन कीजिये—

वृषभानोश्च वैश्यस्य सा च कन्या बभूव ह ।
सार्द्धं रायाण वैश्येन तत्सम्बन्धं चकार सः ॥
कृष्ण माता यशोदाया रायाणस्तत्सहोदरः ।
गोलोके गोप कृष्णांशः सम्बन्धात्कृष्ण मातुलः ॥*

वह राधा वृषभानु वैश्य की कन्या थी। उसने उसका सम्बन्ध रायाण वैश्य से कर दिया जो कृष्ण की माता यशोदा का भाई था। वह रायाण गोलोक में तो कृष्ण का अंश था, किन्तु सम्बन्ध की दृष्टि से कृष्ण का मामा था। कहिये कैसी रही। कहाँ तो राधा और कृष्ण के अलौकिक, अप्राकृतिक, इन्द्रियातीत सम्बन्ध की दुहाई दी जा रही थी और अब पुराणकार ने कैसा भैरवीचक्र उपस्थित किया है।

पुराणकार यहां तक रहते तब भी गनीमत थी, परन्तु उन्हें तो एक तमाशा खड़ा करना था। ऊपर के प्रमाणों से राधा कृष्ण की मामी सिद्ध की गई है। लीजिये अब राधा कृष्ण की पुत्री सिद्ध की जा रही है—

आविर्बभूव कन्यैका कृष्णस्य वामपार्श्वतः ।
तेन राधा समाख्याता पुराविद्भिर्द्विजोत्तमः ॥ ब्रह्मखण्ड

कृष्ण के वाम पार्श्व से एक कन्या उत्पन्न हुई उसका नाम विद्वान द्विजों ने राधा रक्खा। यहाँ राधा की उत्पत्ति कृष्ण

* ब्रह्मवैवर्त पुराण प्रकृति खण्ड अ० ३९

के वाम पार्श्व से उसी प्रकार हुई है जिस प्रकार बाइबल में खुदा ने आदम की पसली की हड्डी से हव्वा को पैदा किया। इसे पिता पुत्री सम्बन्ध कहें या क्या ?

इसी पुराण में यह भी दिखलाया गया है कि आयु की दृष्टि से राधा कृष्ण से बहुत बड़ी थी। जहाँ ब्रह्मवैवर्तकार ने राधा और कृष्ण के मिलन का प्रसंग दिखाया है वहाँ आप देखेंगे कि राधा युवती है और कृष्ण बालक हैं। नन्द के कहने से राधा बालक कृष्ण को गोद में लेती है। यह दूसरी बात है कि फिर कृष्ण अपनी माया से युवक बन कर उसी राधा से काम क्रीडा करने लगते हैं जिसकी गोद में थोड़ी देर पहले वे पुत्र तुल्य विद्यमान थे। और राधा कृष्ण की प्रेयसी तो है ही। स्वयं ब्रह्मा ने राधा का कृष्ण के साथ विवाह कराया था। अब इस पुराण को पढ़ कर आप राधा कृष्ण का सम्बन्ध कैसा मानेंगे, यह आप पर ही छोड़ा जाता है।

ब्रह्मवैवर्त के ऐसे स्पष्ट प्रमाणों के होते हुए भी जो राधा और कृष्ण के आध्यात्मिक प्रेम की दुहाई देते हैं और जिन्हें पुराणों में कुछ भी खटकने वाली बात नहीं दिखाई देती, उनकी बुद्धि पर तरस आता है। ब्रह्मवैवर्त की रचना का तो उद्देश्य ही राधा कृष्ण के क्रीडा विलास का वर्णन करना प्रतीत होता है। बंकिमचन्द्र ने राधा कृष्ण मिलन की घटना का आरम्भिक भाग तो कृष्ण जन्म खण्ड से उद्धृत कर दिया परन्तु ब्रह्मवैवर्त वर्णित राधा कृष्ण के स्थूल विलास का वर्णन करने का साहस उन्हें भी नहीं हुआ। उन्होंने इतना लिख कर ही अपनी लेखनी को विराम दिया—"राधा कृष्ण के व्याह के बाद विहार वर्णन है। यह कहना व्यर्थ है कि ब्रह्मवैवर्त की रास लीला बस यथैव च है।" †वस्तु

† कृष्ण चरित्र पृ० १७८

के सामने रहने पर भी यदि कोई उसे न देख सके तो यह उसका नेत्र दोष ही माना जायगा। यदि ब्रह्मवैवर्त का यह शृङ्गारपूर्ण संभोग वर्णन पढ़कर भी पं० सातवलेकर उसे नजर अंदाज करना चाहें तो यह उनका साहस मात्र होगा। अत्यन्त अश्लील होने के कारण हम उसे उद्धृत नहीं कर सकते। यदि कोई मूल ग्रंथ में इस प्रकरण को देखना चाहे तो ब्रह्मखण्ड ४ अ० १६ में देख सकता है। इससे स्पष्ट हो जायगा कि पुराणों ने कृष्ण चरित्र को कलंकित करने में कितना भाग लिया है। इसी पुराण में श्रीकृष्ण की शान में और क्या २ वचन कहे गये हैं उनकी भी जरा बानगी देखिये—

साक्षाज्जारश्च गोपीनां दुष्टः परम लंपटः।
आगत्य मथुरां कुब्जां जघान मैथुनेन च ॥
वृषभानुसुता राधा सुदाम्नः शापकारणात्।
त्रिंशकोटिं च गोपीनां गृहीत्वा भर्तुराज्ञया ॥
पुण्यं च भारतं क्षेत्रं गोलोकादाजगाम सा ॥
ताभिः सार्द्धं स रेमे च पत्नीभिर्मुदितान्वितः।
पाणिं जग्राह राधायाः स्वयं ब्रह्मा पुरोहितः ॥*

भावार्थ—कृष्ण गोपियों के साक्षात् जार, दुष्ट तथा अति लंपट थे। मथुरा में आकर कुब्जा को मैथुन से मार डाला। वृषभानु की पुत्री राधा, सुदामा के शाप और पति की आज्ञा से तीस करोड़ गोपियों को साथ लेकर गोलोक से पवित्र भारतवर्ष में आई। वह कृष्ण उन अपनी पत्नियों के साथ प्रसन्नतापूर्वक रमण करते रहे। स्वयं ब्रह्मा ने पुरोहित बन कर राधा का पाणिग्रहण, कृष्ण के साथ कराया।

* कृष्ण जन्म खण्ड० अ० ११५

ब्रह्मवैवर्त का यह विपाक प्रभाव जयदेव, विद्यापति और चण्डीदास पर पड़ा और चैतन्य की कीर्तन मण्डली भी उससे अप्रभावित नहीं रही। हिन्दी के सूरदास आदि कवियों ने भी इसी ब्रह्मवैवर्त के आधार पर राधा के परकीया स्वरूप की कल्पना की, जिसका उदाहरण निम्नपद है—

"नीवी ललित गही यदुराई।
जबहिं सरोज धर्यो श्रीफल पर तब यशुमति तह आई" ॥

पुराणों के इस कलुष ने कृष्ण चरित्र को ही अपवित्र किया हो सो बात नहीं, रामोपासना पर भी इसका गहरा प्रभाव पड़ा। वहाँ भी परकीया भावना का प्रवेश हुआ और उसने एक पत्नीव्रत की मर्यादा धारण करने वाले मर्यादापुरुषोत्तम की मर्यादा को धूल में मिला कर किस प्रकार सखी सम्प्रदाय का उत्तेजित किया और सीताजी की सौतें किस प्रकार बढ़ने लगीं, इसकी तो कथा ही पृथक है।*

अब बंकिम की रूपक कल्पना पर विचार करना चाहिये। जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है बंकिम ने राधा और कृष्ण को पुरुष और प्रकृति का रूप दिया है। इनके कथनानुसार वैष्णवों की राधा वही है जो सांख्यकार की मूल प्रकृति है। राधा ईश्वर की शक्ति है, दोनों का परिणय विधि सम्पादित है। वह शक्तिमान् की शक्ति की स्फूर्ति है। दोनों का विहार उसी शक्ति का विकास है। सांख्य द्वारा समर्थित प्रकृति और पुरुष का द्वैत ही राधा कृष्ण का युग्म है। इस रूपक की व्याख्या करने के लिये आपने सांख्य दर्शन के सिद्धान्तों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। ब्रह्म वैवर्त और

* (१) हिन्दी साहित्य का इतिहास प० रामचन्द्र शुक्ल
(२) वर्तमान श्री अयोध्या माहात्म्य।

विष्णु पुराण के लम्बे २ उद्धरण इसी बात को सिद्ध करने के लिये दिये हैं, परन्तु हमारी आपत्तियां स्पष्ट हैं—

(१) राधा कृष्ण को सांख्य के प्रकृति और पुरुष बताने में आपके पास क्या प्रमाण हैं ? क्या सांख्य दर्शन के किसी ग्रन्थ में ऐसा मानने के लिये कोई संकेत मिलता है ? क्या कपिल कृत सांख्य दर्शन, विज्ञानभिक्षु कृत प्रवचन भाष्य, ईश्वरकृष्ण की सांख्य कारिका, गौड़पाद भाष्य, वाचस्पति मिश्र की तत्त्व कौमुदी अनिरुद्धवृत्ति आदि सांख्य मत के किसी भी ग्रंथ में राधा और कृष्ण को प्रकृति और पुरुष का पर्याय माना गया है ? यदि नहीं तो राधा तत्त्व को सांख्य तत्त्व ज्ञान में ढूंढ़ना बालू में से तेल निकालने के तुल्य है। क्या दर्शन और पुराण का कभी समन्वय हुआ है ?

(२) यदि पुराणों में ही कहीं २ राधा को मूल प्रकृति कहा और कृष्ण को पुरुष कहा तो इस दार्शनिक तथ्य को Mythology का रूप कैसे मिल गया ?

(३) दुर्जनतोष न्याय से यदि यह स्वीकार भी कर लिया जाय कि राधा और कृष्ण, प्रकृति और पुरुष के वाचक हैं तो पुराणों के शृंगारात्मक वर्णनों की इस दार्शनिक सिद्धान्त से कैसे संगति लगेगी ? ऊपर राधा और कृष्ण के जिस लैंगिक सम्बन्ध का वर्णन आया है, सांख्योक्त प्रकृति और पुरुष का सम्बन्ध उससे क्या समानता रखता है ?

इन आपत्तियों का उत्तर हमारे रूपक प्रेमी बंधु त्रिकाल में भी नहीं दे सकेंगे। अतः यह रूपक कल्पना का भवन ताश के पत्तों का महल ही सिद्ध होता है। इस प्रकार पैबन्द लगा कर मृत पौराणिक धर्म को कब तक जीवित रक्खा जा सकता है ? पुराण वर्णित राधा कृष्ण वासनालोक के प्राणी हैं जिन्हें काम कला प्रवीण

दायक नायिका कहें तो भी अनुचित नहीं होगा। उन पर दार्शनिक सिद्धांतों का आरोपण कैसे हो सकेगा ?

राधा की इस निराधार कल्पना ने देश के चरित्र को कितना गिराया है, इसका कोई लेखा जोखा नहीं है। हमारे देश का सत्व इसी प्रकार के मिथ्या विश्वासों के कारण नष्ट हो गया। गोकुलिये गुसाइयों की लीलाओं और गोविन्द भवन जैसे दुराचार के अड्डों को प्रोत्साहन देने में इन पुराणों की कहानियों का कितना हाथ है, यह किसी से छिपा नहीं है। प्रसिद्ध पुरातत्त्व पण्डित डा० रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकर ने इस विषय में ठीक ही लिखा है—

"The worship of Radha more prominently even than that of Krishna, has given rise to a sect, the members of which assume the garb of women with all their ordinary manners and affect to be subject even to their monthly sickness. Their appearance and acts are so dis gusting that they do not show themselves very much in public. Their goal is the realisation of the position of female companions and attendents of Radha, and hence probably they assume the name of Sakhi Bhavas (Literally, the condition of companions). They deserve notice here only to show that, when the female element is idolised and made the object of special worship, such disgusting corruptions must ensue."—Vaishnavism Shaivism and Minor Reli

gious Systems P 86 अर्थात् कृष्ण की अपेक्षा राधा को प्रमुखता देने वाली उपासना प्रणाली ने एक ऐसे सम्प्रदाय को जन्म दिया है, जिसके सदस्य स्त्रियोचित व्यवहारों को धारण करते हैं और यहाँ तक कि मासिक धर्म का भी अभिनय करते हैं। उनके आचार व्यवहार और कार्य इतने घृणाजनक होते हैं कि वे स्वयं भी जनता के समक्ष नहीं आते। उनका उद्देश्य राधा की सखियाँ या सेविका बनने का होता है और सम्भवत इसीलिये यह 'सखीभाव' की उपासना कहलाती है। यहाँ इसका उल्लेख करने की आवश्यकता इसी लिये पड़ी है कि जब दाम्पत्य भाव को स्थूल रूप प्रदान किया जाता है तो इस प्रकार के घृणोत्पादक भ्रष्टाचार का उत्पन्न होना अवश्यम्भावी ही है।

१३. वृन्दावन की शेष लीलायें

भागवत में कुछ ऐसी घटनायें मिलती हैं, जिनका उल्लेख महाभारत, हरिवंश और विष्णु पुराण आदि में नहीं है ये घटनायें निम्नलिखित हैं—

(१) नन्दजी एक दिन यमुना जल में स्नान कर रहे थे कि वरुण के दूत उन्हें पकड़कर अपने स्वामी के पास ले गये। कृष्ण उन्हें छुड़ा कर ले आये।* सम्भवत कृष्ण ने उन्हें नदी में से डूबते हुये बचाया हो।

(२) एक दिन एक साँप ने नंद को पकड़ लिया। कृष्ण ने साँप को मारकर उन्हें छुड़ाया। भागवत के अनुसार वह सुदर्शन

* भागवत १०।२८

नामक विद्याधर था। कृष्ण के हाथ से मारा जाकर वह अपने स्थान को चला गया*। कथा का तात्पर्य केवल इतना ही है कि कृष्ण ने नंद को सांप से बचाया।

(३) शंखचूड़ नामक एक यक्ष एक दिन गोपियों को पकड़ कर ले गया। कृष्ण और बलराम उसके पीछे दौड़े। उसे मार कर गोपियों को छुड़ा लाये।†

हम पहले ही लिख चुके हैं कि भागवत के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों में न होने के कारण ये घटनायें संदिग्ध हैं।

अरिष्टासुर और केशी नामक असुर, बैल और घोड़े का रूप धारण कर आये और कृष्ण को मारने की सोची, परन्तु दोनों कृष्ण के हाथों मारे गये।‡ शिशुपाल सभापर्व में इन घटनाओं का वर्णन इस प्रकार करता है—'यदि इन्होंने बचपन में एक गिद्ध को मार डाला तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? युद्ध न जानने वाले अश्व और बैल को भी मार डाला हो तो इसमें कोई विचित्रता नहीं।'§ इसी के आधार पर आगे सोलहवें श्लोक में वह कृष्ण को 'गोघ्न' भी कहता है। इन उद्दण्ड पशुओं को मारने में कृष्ण का अभिप्राय यही था कि मनुष्य समाज का अहित करने वाले पशुओं को दण्ड देना भी धर्म है।

इन घटनाओं की चर्चा करते समय बंकिम को अथर्ववेद और ऋग्वेद का स्मरण हो आया, जिनमें उनके कथनानुसार केशी वध का वर्णन है। वे लिखते हैं—☞ "केशीवध का वृत्तान्त अथर्व संहिता

* वही १०।३४

† वही १०।३४

‡ भागवत १०।३६, ३७ विष्णु पुराण ५।१४,१६

§ सभापर्व ४१।७

☞ कृष्ण चरित्र पृ० १९४

में है।'''ऋग्वेद संहिता में एक केशीसूक्त है।* यह केशी कौन है, इसका पता नहीं।" हम पहले ही लिख चुके हैं कृष्ण चरित्र का विवेचन करते समय वेदों की चर्चा अनावश्यक है। वेद तब के हैं जब कृष्ण तो क्या उनके पूर्व पुरुषाओं का जन्म भी नहीं हुआ था। उनमें कृष्ण चरित्र के प्रसंग नहीं ढूंढे जा सकते।

कृष्ण की बाल्यकाल और किशोर अवस्था की जिन घटनाओं का विवेचन ऊपर हुआ है, उसके आधार ग्रन्थ हैं पुराण। ये सब घटनायें अलौकिक और अप्राकृतिक तत्त्वों से पूर्ण हैं और हमारे मान्य ग्रन्थ महाभारत में इनका काई छुट पुट संकेत भले ही मिल जाय, विस्तार तो हरगिज नहीं मिल सकता। यदि इनमें सत्यता है तो इतनी ही है कि अत्याचारी कंस के भय से राम और कृष्ण का पालन पोषण नंद के घर पर हुआ। वहाँ उनका बाल्यकाल बड़े आनन्द से व्यतीत हुआ। कृष्ण अपने रूप और गुणों के कारण जन साधारण में बड़े लोकप्रिय थे। उन्होंने कैशोर वय में ही वृन्दावन के अनेक अनिष्टकारी पशुओं को मारकर अपनी वीरता का परिचय दिया और जिस गोप समाज में रहते थे, उसे निर्भयता प्रदान की। उनके जीवन के प्रारम्भिक भाग की यही झांकी है।

१४. कंसवध

वृन्दावन की लीलायें समाप्त हुईं। इसके अनन्तर कृष्ण मथुरा गये और वहाँ उन्होंने अत्याचारी कंस को मार कर उसके पिता उग्रसेन को राजगद्दी पर अभिषिक्त किया। धर्मराज्य संस्थापन के जिस उद्देश्य को कृष्ण ने अपने भावी जीवन में क्रियान्वित किया,

* ऋग्वेद मं० १० । सू० १३६

कूल है। अश्लीलता में यह सब से बाजी मार ले गया है अतः इसका उल्लेख करना भी शिष्ट जनों की रुचि के विपरीत है।"

कुब्जा पर कृपा करने के अनन्तर कृष्ण धनुपयज्ञशाला में पहुँचे। उन्होंने धनुष को तोड़ा और कंस द्वारा भेजे गये कुवलयापीड़ हाथी तथा चाणूर और मुष्टिक नामक महामल्लों को पछाड़ा। इस पर कंस बहुत बिगड़ा और उसने नंद को कैद करने, वसुदेव को मार डालने और राम तथा कृष्ण को नगर से बाहर निकाल देने की आज्ञा दी। कंस के इस प्रकार कहते ही कृष्ण कूदकर कंस के सिंहासन पर पहुँच गये और उसके केश पकड़ कर उसे भूमि पर गिरा कर मार डाला। कंस को मार कर महाराज उग्रसेन को उसके स्थान पर राज्याभिषिक्त किया।*

महाभारत में यह वर्णन कुछ भिन्न प्रकार से आया है। सभापर्व के अन्तर्गत जरासंधवध की पूर्वपीठिका में कृष्ण ने महाराज युधिष्ठिर को अपनी कथा इस प्रकार सुनाई, "कुछ काल पश्चात् कंस ने यादवों को सताया और बृहद्रथपुत्र जरासंध की कन्याओं से विवाह कर लिया। जरासंध से सम्बन्ध हो जाने पर कंस ने उस बल से ज्ञाति वालों को हरा कर बड़ाई प्राप्त की। उस

दुरात्मा के भोज वंशी वृद्ध राजाओं को सताने पर मैंने बलदेवजी से मिल कर प्रसिद्ध कंस को मारा, सो इससे एक प्रकार का ज्ञाति उद्धार का कार्य हुआ।"†

इसमें कंस द्वारा राम और कृष्ण को मथुरा बुलाने का कुछ भी संकेत नहीं है। इससे यही विदित होता है कि कंस के अत्याचारों के समय कृष्ण और बलराम मथुरा में ही उपस्थित थे। कंस के अत्याचारों से यादव बड़े दुखी थे, परन्तु कोई ऐसा तेजस्वी और बलवान नहीं था जो उसके अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठा कर उसकी स्वेच्छाचारिता को समाप्त करता। वृद्ध पुरुषों ने तो उलटे राम, कृष्ण को ही मथुरा त्याग कर भाग जाने की सम्मति दी। परन्तु उन्होंने कंस को ही मार कर उसके अत्याचारों की इतिश्री कर दी। इस कार्य में उन्हें बलराम की सहायता मिली यह तो स्पष्ट है। अन्य यादवों ने चाहे कंस के भय से प्रत्यक्ष रूप से उनकी सहायता न की हो, परन्तु उनकी सहानुभूति तो कृष्ण की ओर ही थी।

इस प्रकार धर्मराज्य संस्थापन की ओर कृष्ण का यह पहला कदम था। इसमें उन्हें अपूर्व सफलता मिली। यदि वे चाहते तो कंस के बाद स्वयं मथुरा के राजा बन सकते थे, परन्तु उन्होंने ऐसा न कर कंस के पिता को ही, जो राज्य का वास्तविक अधिकारी था, राजा बनाया। यह कार्य उनकी उदारता, न्यायप्रियता और धर्म के प्रति अगाध निष्ठा को सूचित करता है। कृष्ण के लिये धर्म ही प्रधान वस्तु थी यह बंकिम का कथन है और दयानन्द के अनुसार उन्होंने जन्म से मरण पर्यन्त कुछ भी अधर्म का कार्य नहीं किया। धर्म संस्थापन की प्रतिज्ञा उन्होंने इसीलिये की थी और उनकी यह कामना थी कि इसी के लिये वे बार २ जन्म धारण करें।

◆◇

† सभापर्व अ. १४। ३०—३१

यह उसका प्रारम्भ था। भागवत में कंसवध की कथा विस्तार पूर्वक कही गई है। कृष्ण के बल और पराक्रम के समाचार जब कंस को मथुरा में मिले तो वह चिंतित हो उठा। देवर्षि नारद से भी उसको यह समाचार मिल गया था कि राम और कृष्ण वसुदेव के ही पुत्र हैं और उसने देवकी की जिस आठवीं संतान को मारा था वह तो नंद की पुत्री थी। अब कृष्ण को मारने के उपाय सोचे जाने लगे। कंस ने एक धनुपयज्ञ का आयोजन किया और अक्रूर को कृष्ण तथा बलराम को बुलाने के लिये भेजा। अक्रूर के साथ कृष्ण तथा बलराम मथुरा पहुँचे और कंस के दरबार में जाने की तैयारी करने लगे।

जब सभागृह में जाने के लिये रवाने हुये तो भागवत में आता है कि उन्होंने एक उद्दण्ड धोबी की हत्या की और एक माली का सत्कार ग्रहण किया।* यहाँ तक तो गनीमत रही, परन्तु भागवतकार इतने सत्कार से ही संतुष्ट नहीं हुआ, उसने कुब्जा प्रसंग की रचना कर, एक बार पुनः गोपियों की क्रीड़ा की याद को ताजा कर दिया। महाभारत में इस कथा का अस्तित्व ही नहीं है। विष्णुपुराण में यह कथा है अवश्य, पर उसे भागवत के समान अतिरंजित नहीं किया गया है। भागवतकार लिखते हैं कि राजदरबार के मार्ग में कंस की दासी कुब्जा ने राम और कृष्ण को चंदन तथा अंगराग भेंट किया। इस सत्कार के पुरस्कार स्वरूप उन्होंने कुब्जा के वक्रांग को सीधा कर दिया और उस कुरूपा स्त्री को अत्यन्त सुन्दरी नवयुवती बना दिया। कुब्जा के प्रार्थना करने पर कृष्ण ने अपना कार्य पूरा होने के अनन्तर उसके घर पर आना स्वीकार किया। यहाँ भागवत के वचन हमें संदेह में डाल देते हैं—"जब बलरामजी के सामने ही कुब्जा ने इस प्रकार

* भागवत १०।४१ विष्णु पुराण ५।१९

प्रार्थना की तो श्रीकृष्ण ने हंसते हुये उससे कहा, 'सुन्दरी, मैं तुम्हारे घर आऊंगा क्योंकि ससारी लोग तुम्हारे जैसे के घर जाना अपनी मानसिक व्याधि मिटाने का साधन समझते हैं। किंतु पहले मुझे अपना काम तो कर लेने दो। हमारे जैसे बटोहियों को तुम्हारा ही आसरा है।'' रेखांकित भाग हमारे मन में अनेक शंकायें उत्पन्न करता है। क्या कुब्जा प्रच्छन्न वेश में कोई बार वनिता तो नहीं थी? बलरामजी के सामने ही कुब्जा के ऐसी प्रार्थना करने पर कृष्ण पहले तो कुछ संकुचित हुये होंगे, परन्तु फिर निर्लज्जता पूर्वक उसके प्रस्ताव को स्वीकार करने लगे। ससारी लोगों का कुब्जा के घर जाकर मानसिक व्याधि मिटाने का क्या अर्थ है? कृष्ण का यह कथन तो हमारे सदेह को और भी पुष्ट करता है कि हमारे जैसे बटोहियों को तुम्हारा ही आसरा है। वास्तव में कुब्जा का मकान कोई सार्वजनिक मनोरञ्जन गृह था जहाँ पर परदेशी लोग एकत्रित होकर विलास क्रीडा करते होंगे। कृष्ण ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। कंस वध के कार्य को समाप्त कर वे कुब्जा के घर पहुँचे। भागवत में लिखा है कि कुब्जा नवीन मिलन के संकोच से झिझक रही थी। तब श्रीकृष्ण ने उसे अपने पास बुला लिया और उसकी कंकण से सुशोभित कलाई पकड़

१५. शिक्षा और अध्ययन

भागवत में लिखा है कि कंस बध के पश्चात् कृष्ण और बलराम का वसुदेव के पुरोहित गर्गाचार्य द्वारा यज्ञोपवीत हुआ और वे नियमपूर्वक गायत्री द्वारा संध्योपासन में प्रवृत्त हुये। विद्याध्ययन के लिये उन्हें उज्जैन (अवन्तिपुर) निवासी काश्यप गोत्री सान्दीपनि नामक आचार्य के पास भेजा गया। वहाँ उन्होंने विधिपूर्वक शास्त्रों का अध्ययन किया। उनके पाठ्यक्रम में षडंग सहित सम्पूर्ण वेद, धनुर्वेद, मनुस्मृति, मीमांसा, तर्क (न्याय शास्त्र) आदि का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त उन्होंने संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैध और आश्रय—इन ६ भेदों से युक्त राजनीति का भी अध्ययन किया।

अद्भुत तत्व को प्रश्रय देने वाले पुराण लेखकों को इस सीधे सादे वर्णन से संतोष नहीं हुआ तो उन्होंने लिख दिया कि ये सब विद्यायें कृष्ण ने ६४ दिन में ही सीख लीं।† यही बहुत खैर रही कि कृष्ण को अध्ययन के लिये ६४ दिन का समय तो दिया गया, अन्यथा उन्हें ईश्वर मानने वालों के लिये तो शिक्षा की आवश्यकता ही क्या थी ? पुराणों में यह भी लिखा है कि गुरु दक्षिणा के रूप में सान्दीपनि ने अपने मृत पुत्र की याचना की। कृष्ण ने यमलोक से उनके पुत्र को लाकर अपने गुरु के ऋण का परिशोध किया। इस कथा में ऐतिहासिक तत्व कुछ नहीं है। केवल कृष्ण का ईश्वरीय गौरव स्थापित करने के लिये ही ऐसी कथाओं की रचना की गई है।

भागवत के अतिरिक्त महाभारत में भी कृष्ण की विद्वत्ता और योग्यता के प्रमाण मिलते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि वे निखिल

† विष्णुपुराण ५ । २१ । २२

वेद वेदांगों के पारदर्शी विद्वान् थे और उन्होंने अनेक विद्याओं का तलस्पर्शी अध्ययन किया था। सभापर्व में जहाँ भीष्म ने कृष्ण की अग्रपूजा का प्रस्ताव रक्खा है, वहां वे महाराज के अन्य गुणों की चर्चा करने के साथ २ यह भी कहते हैं—

वेद वेदांग विज्ञानं बलं चाप्यधिकं तथा।
नृणां लोके हि को अन्योऽस्ति विशिष्टः केशवादृते॥*

अर्थात् वेद, वेदांग, विज्ञान और बल आदि सभी गुण कृष्ण में विद्यमान हैं, मनुष्यलोक में केशव के अतिरिक्त और कौन अधिक गुणी मिलेगा? कृष्ण की वेदज्ञता के और भी अनेक प्रमाण हैं। छान्दोग्य उपनिषद् के अनुसार उन्होंने घोर आंगिरस ऋषि से ब्रह्मविद्या सीखी थी।† उनकी तपस्या के भी अनेक प्रमाण महाभारत में हैं।

१६. जरासन्ध और कालयवन

मगध का प्रतापी सम्राट जरासंध‡ कंस का ससुर था। कंस के मारे जाने पर उसकी दोनों पत्नियाँ अस्ति और प्राप्ति अपने पिता के पास रोती पीटती गईं। जरासंध को अपनी विधवा पुत्रियों की यह दुर्दशा देख कर कृष्ण पर अत्यन्त क्रोध आया और उसने एक बड़ी सेना लेकर मथुरा पर चढ़ाई कर दी। यद्यपि

* महाभारत सभापर्व अ० ३८

† छान्दोग्य उपनिषद् ३। १६। ६

‡ जरासंध के साम्राज्य विस्तार के लिये सभापर्व का १४ वाँ अध्याय देखना चाहिये।

जरासंध की सेना का कोई पार न था, फिर भी कृष्ण के सेनापतित्व में यादवों ने उसे मार भगाया। भागवत में लिखा है कि जरासंध को बलराम ने पकड़ लिया और फिर कृष्ण की सम्मति से छोड़ दिया। इस प्रकार जरासंध ने सत्रह बार मथुरा पर आक्रमण किया और प्रत्येक बार उसे पराजय ही मिली। अन्तिम बार* जब जरासंध का आक्रमण हुआ तो मथुरा वासियों के समक्ष एक नई विपत्ति आई।

कालयवन नामक एक म्लेच्छ राजा ने अपनी सेना से मथुरा को घेर लिया।† कृष्ण ने इस नई अप्रत्याशित आपत्ति का सामना करने के लिये एक अभिनव उपाय ढूंढ़ निकाला। वे अकेले ही शास्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर नगर के बाहर निकल पड़े। कालयवन ने जब देखा कि उसका शत्रु अकेला ही आ रहा है तो वह उसकी ओर लपका। कृष्ण जी भाग निकले। भागते २ उन्हें एक पर्वतीय गुफा दिखाई दी; वे उसी में प्रविष्ट हो गये और एक ओर छिप गये। उस गुफा में मुचकुन्द नामक एक अत्यन्त वीर पुरुष अनेक युद्ध लड़ने के पश्चात् विश्राम कर रहा था। महाराज ने छिपने से पूर्व अपना कौशेय वस्त्र मुचकुन्द को ओढ़ा दिया था। कालयवन ने गुफा में प्रविष्ट होते ही कौशेय वस्त्र ओढ़े एक पुरुष को सोये हुये देखा, उसने यह समझा कि यह कृष्ण ही हैं जो अपनी जान बचाने के लिये वस्त्र ओढ़ कर सोने का बहाना कर रहा है। उसने एक जोर की लात सोये हुये पुरुष के मारी जिससे वह जग गया। भागवत में लिखा है कि मुचकुन्द की क्रोधाविष्ट दृष्टि से देखते ही कालयवन जल कर भस्म हो गया।‡ इस

* "संग्रामेऽष्टादशावरे" सभा० १४।४०

† विष्णु पुराण अंश ५ अध्याय २३

‡ भागवत दशम स्कन्ध पूर्वार्द्ध अ० ५१

चमत्कार पूर्ण कथांश को हम छोड़ भी दें तो इतना अवश्य सम्भव है कि कालयवन ने अपने से अधिक दुर्धर्ष और दुर्जेय, अप्रत्याशित शत्रु मुचकुन्द का सामना करने में अपने को असमर्थ पाया हो और वह उसके हाथों मारा गया।

कालयवन का इस प्रकार अन्त होने के पश्चात् महाराज पुनः मथुरा में आये। इसी समय जरासंध का अठारहवाँ आक्रमण हुआ। इस बार शत्रु सैन्य को अधिक प्रबल और दुःसह समझ कर उन्होंने एक नया उपाय ढूंढ़ निकाला। उन्होंने मथुरा से पलायन किया और पश्चिम की ओर चल पड़े। मथुरा त्याग की इसी घटना से कृष्ण का नाम "रण छोड़" पड़ा। जरासंध ने भागते हुये कृष्ण का पीछा किया। कृष्ण चलते २ प्रवर्षण नामक पर्वत पर पहुँचे और वहाँ कुछ दिन निवास कर पश्चिमी समुद्र के किनारे द्वारिका नगर में, जो समुद्र से आवेष्टित था, पहुँचे। इसी स्थान को उन्होंने अपनी नवीन राजधानी बनाया। भागवत में कृष्ण का *प्रवर्षण पर्वत से जरासंध की सेना को लांघते हुये कूदने का* उल्लेख है* जो अलौकिक होने के कारण ग्राह्य नहीं है। जरासंध इस बार भी कृष्ण का कुछ भी अनिष्ट नहीं कर सका और निराश होकर लौट गया। जरासंध और कालयवन जैसे शठों को इस प्रकार परास्त करना कृष्ण की कूट नीति के अत्युत्तम उदाहरण हैं।

आवश्यकता पड़ने पर रणक्षेत्र से पलायन कर जाने को भी राजनीति विशारद अनुचित नहीं समझते। महर्षि दयानन्द ने क्षत्रिय धर्म का वर्णन करते हुये लिखा है—"युद्ध में भी दृढ़ निशंक रह के उससे कभी न हटना, न भागना, अर्थात् इस प्रकार से लड़ना कि जिससे निश्चित विजय होवे आप बचे, जो भागने से वा शत्रुओं को धोखा देने से हो तो ऐसा ही करना।"† आगे

* दशम स्कन्ध पृ० अ० ५२ † सत्यार्थप्रकाश चतुर्थ समुल्लास

राजधर्म के प्रकरण में वे फिर लिखते हैं—"कभी २ शत्रु को जीतने के लिये उनके सामने से छिप जाना उचित है क्योंकि जिस प्रकार से शत्रु को जीत सके वैसे काम करे, जैसा सिंह क्रोध से सामने आकर शस्त्राग्नि में शीघ्र ही भस्म हो जाता है वैसे मूर्खता से नष्ट भ्रष्ट न हो जावे।"* ऋषि दयानन्द के इस कथन और कृष्ण के इस आचरण में कितना साम्य है यह किसी से अविदित नहीं रहेगा। वस्तुत: कृष्ण को राजनैतिक कूट निया का विलक्षण ज्ञान था और वे अवसर आने पर उसका उपयोग करने में नहीं चूकते थे।

महाभारत में जरासंध विषयक घटना का उल्लेख कुछ भिन्न प्रकार से है। महाराज युधिष्ठिर के सम्मुख अपने जीवन की अतीत घटनाओं का वर्णन करते हुए कृष्ण ने कहा, "जब जरासंध युद्ध के लिये उपस्थित हुआ तो हमने एकत्र होकर परामर्श किया और यह निश्चय किया कि यदि हम शत्रुनाशक बड़े २ अस्त्रों से तीन सौ वर्ष तक लड़ें तो भी उसका बल क्षय नहीं कर सकेंगे क्योंकि वह महाबली है। हंस और डिम्भक नामक जो दो पुरुष उसके सहायक हैं वे अस्त्र से मारे जाने योग्य नहीं हैं। वे दोनों वीर और जरासंध ये तीनों मिलकर तीनों लोकों को जीत सकते हैं। हंस नामक एक अन्य प्रख्यात राजा था। बलराम ने युद्ध में उसे मार डाला। डिम्भक ने किसी से हंस के मारे जाने का समाचार सुन कर यह निश्चय किया कि उसके बिना जीवन व्यर्थ है, अत वह यमुना में डूब कर मर गया। अपने सहायकों की मृत्यु का हाल सुनकर राजा जरासंध उदास मन से अपने घर की ओर चला। जरासंध के लौट जाने पर हम आनन्दित होकर मथुरा में रहने लगे।"†

---

* सत्यार्थ प्रकाश षष्ठम समुल्लास

† सभापर्व अ० १४ श्लो० ३५ से ४४

"कुछ समय के अनन्तर जब कंस की पत्नी ने पति की मृत्यु का दुख मानकर अपने पिता जरासंध को यह कह कर उभाड़ना चाहा कि मेरे पतिघाती का नाश कीजिये, तब हमने उदास होकर भागना चाहा। उस जरासंध के भय से हम परामर्श कर और अपने ऐश्वर्य को आपस में बांटकर पश्चिम दिशा में भाग गये।"*
महाभारत का यह विवरण भागवत से निश्चय ही अधिक प्रामाणिक है। इसके अनुसार तो इतना ही ज्ञात होता है कि प्रथम बार जब जरासंध ने मथुरा पर आक्रमण किया तो वह हार कर भाग गया। दूसरी बार उसके आक्रमण की पुनः सम्भावना देखकर और अपने आपको उसका सामना करने में असमर्थ पाकर कृष्ण ने मथुरा से उठाकर अपनी राजधानी ऐसे स्थान पर नियत की जो समुद्र से घिरा होने के कारण अधिक सुरक्षित था। यही स्थान द्वारिका के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जरासंध ने अपना मुख इधर कभी नहीं किया।

इस प्रकरण से कृष्ण की युद्धनीति और अद्भुत चातुर्य का तो ज्ञान होता ही है, साथ ही इससे यह भी जाना जाता है कि वे व्यर्थ की मनुष्य हत्या और रक्तपात के विरोधी थे। द्वारिका का दुर्ग यादवों के लिये सब प्रकार से अनुकूल था। सुरक्षा की दृष्टि से तो यह इतना सुदृढ़ था कि यदि केवल स्त्रियां ही उस दुर्ग में रहें तो वे शत्रु का मुकाबिला कर सकती थीं।† प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से भी यह स्थान परम रमणीक और शोभाढ्य था।

---

* वही

† स्त्रियोऽपि यस्यां युध्येयुः किमु वृष्णि महारथाः। सभा० १४।५२

१७. रुक्मिणी परिणय

पुराण लेखकों ने महाराज पर बहु विवाह के जो मिथ्या
[illegible]

के साथ ही करना चाहते थे, परन्तु उनके पुत्र रुक्मी की इसमें सम्मति नहीं थी। वह चेदिराज दमघोष के पुत्र शिशुपाल के साथ रुक्मिणी का विवाह करना चाहता था। अन्त में पुत्र की इच्छा की ही विजय हुई और शिशुपाल के साथ रुक्मिणी का विवाह निश्चित हो गया।

रुक्मिणी स्वयं कृष्ण के अपूर्व रूप गुणों की चर्चा सुन चुकी थी, उसे यह समाचार सुन कर बड़ा खेद हुआ कि उसका विवाह उसकी इच्छा के प्रतिकूल शिशुपाल से होने जा रहा है। उसने एक वृद्ध ब्राह्मण के द्वारा अपना प्रणय निवेदन श्रीकृष्ण के पास द्वारिका भेजा। रुक्मिणी के संदेश का अभिप्राय यह था कि अमुक दिन शिशुपाल मेरा परिणय करने के लिये आयगा, परन्तु मैंने अपने आपको आपके चरणों में अर्पित कर दिया है। मैं नगर से बाहर आपकी प्रतीक्षा करूंगी।

रुक्मिणी का यह संदेश जान कर कृष्ण को बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने अपने सारथी को रथ तैयार करने की आज्ञा दी। नियत समय पर रथ में सवार होकर वे विदर्भ देश की राजधानी कुण्डिनपुर के लिये रवाना हुये। उधर शिशुपाल को भी यह समाचार मिल गया कि कृष्ण रुक्मिणी हरण का यत्न अवश्य करें। इसलिए वह अपने मित्र राजाओं एवं सेना को साथ लेकर आया। नियत समय पर रुक्मिणी नगर से बाहर उद्यान भ्रमणार्थ आई

और कृष्ण ने उसके संकेत को समझ कर उसे अपने रथ पर चढ़ाया और द्वारिका के लिये प्रस्थित हुये। रुक्मिणी को इस प्रकार आसानी से अपने हाथ से निकलता हुआ देख कर शिशुपाल ने कृष्ण पर आक्रमण किया, परन्तु बलराम यादव सेना सहित वहाँ उपस्थित थे, उन्होंने शिशुपाल की सेना को मार भगाया। जब रुक्मिणी के हरण का समाचार रुक्मी को ज्ञात हुआ तो उसने श्रीकृष्ण का पीछा किया। वह कृष्ण के हाथों परास्त हुआ और कृष्ण ने अपने शस्त्र से उसके केशों का मुण्डन कर उसे कुरूप बना दिया। अन्त में रुक्मिणी और बलराम के कहने से उन्होंने अपने साले को छोड़ दिया। सकुशल द्वारिका पहुँचने के अनन्तर रुक्मिणी के साथ श्री कृष्ण का वैदिक विधि से पाणिग्रहण संस्कार हुआ।†

मनु ने जो आठ प्रकार के विवाह बताये हैं, ‡उनमें राक्षस विवाह भी है। इसके अनुसार कन्या का बलात्कार हरण किया जाकर उससे विवाह किया जाता है। धर्म शास्त्र के अनुसार राक्षस विवाह क्षत्रियों के लिये प्रशस्त बतलाया गया है। इस विवाह के अच्छे और बुरे दोनों पहलू हो सकते हैं। यदि कन्या की इच्छा के विरुद्ध उसका अपहरण किया जाकर उससे विवाह किया जाय तो यह स्पष्ट ही अधम विवाह है। परन्तु एक परिस्थिति ऐसी भी हो सकती है कि कन्या वर को पसन्द करती है, और उसके माता पिता की उसमें सम्मति नहीं है, तो ऐसी स्थिति में कन्या हरण के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं रहता। अतः यह कहना कि राक्षस विवाह निश्चित रूप से अन्याय, अत्याचार और बलात्कार का ही प्रतीक है, अनुचित होगा। यहां रुक्मिणी हरण के प्रसङ्ग में भी-

---

† दशम स्कन्ध पू० अ० ५२, ५३, ५४

‡ मनुस्मृति ३। २१

जो कुछ घटनायें घटीं वे रुक्मिणी की इच्छा के अनुकूल ही थीं। कृष्ण के साथ सम्बन्ध होने से रुक्मिणी को प्रसन्नता ही हुई क्योंकि रूप, गुण और योग्यता की दृष्टि से कृष्ण उसके सर्वथा अनुकूल ही थे। आज चाहे राक्षस विवाह का विधान हमारी सामाजिक परिस्थिति के कितना ही प्रतिकूल क्यों न दिखाई दें, परन्तु कृष्ण ने जिस समय जन्म लिया था, उस समय का सामाजिक विधान कुछ दूसरे ही प्रकार का था। वहां इस प्रकार की घटनाओं में कोई अनौचित्य नहीं देखा जाता था, अत तत्कालीन आचार शास्त्र के मापदण्डों से ही हमें रुक्मिणी हरण की घटना की आलोचना करनी चाहिये। और इस दृष्टि से देखने पर हम उसमें कुछ भी अनौचित्य नहीं पाते।

शिशुपालवध प्रकरण में भी इस घटना की चर्चा हुई है। श्रीकृष्ण कहते हैं—

रुक्मिण्यामस्य मूढ़स्य प्रार्थनासीन्मुमूर्षतः।
न च तां प्राप्तवान् मूढः शूद्रो वेद श्रुति मिव ॥*

अर्थात् इस मूढ ने मूर्खतावश मृत्यु का अभिलाषी बनकर रुक्मिणी की प्रार्थना की थी परन्तु शूद्र के वेद सुनने की भांति उसे प्राप्त नहीं कर सका। शिशुपाल ने इस आक्षेप का उत्तर निम्न श्लोकों में दिया—

मत्पूर्वां रुक्मिणीं कृष्ण संसत्सु परिकीर्तयन्।
विशेषतः पार्थिवेषु व्रीडां न कुरुषे कथम् ॥
मन्यमानो हि कः सत्सु पुरुषः परिकीर्तयेत्।
अन्यपूर्वां स्त्रियं जातु त्वदन्यो मधुसूदन ॥×

* सभा पर्व ४५। १५
× सभा पर्व ४५। १८, १९

अजी कृष्ण, पहिले मेरे लिये निर्दिष्ट रुक्मिणी की बात इस सभा में विशेष राजाओं के सामने कहते तुम्हें लज्जा नहीं आती ? अजी मधुसूदन, तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा कौन अपने को पुरुष कह कर अपनी स्त्री को अन्यपूर्वा कह सकता है ?"

महाभारत के इस प्रसंग को उद्धृत करने के अनन्तर बंकिम ने तो यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि रुक्मिणी हरण हुआ ही नहीं। केवल शिशुपाल ने ही रुक्मिणी से ब्याह की इच्छा प्रकट की थी, परन्तु भीष्मक ने कृष्ण से उसका विवाह कर दिया। इसके लिये बंकिम ने यह प्रमाण दिया है कि कृष्ण को गाली देते समय शिशुपाल ने भी उस पर रुक्मिणी हरण का आरोप नहीं लगाया यद्यपि भीष्म के प्रसंग में वह काशिराज की कन्याओं के हरण की चर्चा कर चुका था। हम इस विवाद में नहीं पड़ना चाहते कि रुक्मिणी का हरण हुआ या नहीं, परन्तु यह अवश्य कहेंगे कि रुक्मिणी ही कृष्ण की एक मात्र पत्नी थी, उसके अतिरिक्त अन्य पत्नियों से विवाह का आरोप सर्वथा मिथ्या है, जिसका विवेचन आगे किया जायगा।

सन्तान

रुक्मिणी से कृष्णजी के प्रद्युम्न जैसा पुत्र उत्पन्न हुआ, जो सौन्दर्य, शील और गुणों में अपने पिता का ही प्रतिरूप था। ऐसी उत्तम संतान प्राप्त करने के लिये महाराज ने अपनी पत्नी सहित १२ वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया और हिमालय पर्वत में रह कर घोर तपस्या की थी।* जो लोग कृष्ण को लम्पट

* ब्रह्मचर्यं महद्घोरं चीर्त्वा द्वादश वार्षिकम्।
हिमवत् पार्श्वमभ्येत्य यो मया तपसार्जितः॥

और दुराचारी कहते हैं वे इस तथ्य को आंखें खोलकर पढ़ें। कृष्ण के जैसे संयमी और तपस्वी का उदाहरण उन्हें संसार के इतिहास में अन्यत्र नहीं मिलेगा।

१८. बहुविवाह का आरोप और उसकी असत्यता

पुराण लेखकों को कृष्ण के एक पत्नीव्रत से संतोष नहीं हुआ। उन्होंने कृष्ण की आठ पटरानियों की कहानी गढ़ी और जब आठ से भी संतोष नहीं हुआ तो एक कदम आगे बढ़कर कहने लगे कि कृष्ण के १६०००ः रानियें और थीं।* भागवत में रुक्मिणी के अतिरिक्त कृष्ण की निम्न पत्नियों के नाम आये हैं—(१) सत्य भामा (२) जाम्बवन्ती (विष्णुपुराण में रोहिणी)। (३) कालिन्दी (४) सत्या (५) लक्ष्मणा (६) मित्रवृन्दा (७) भद्रा।

इन रानियों से कृष्ण के विवाहों की कथायें भी पुराण लेखकों ने भिन्न २ बनाई हैं उनमें से कुछ पर यहाँ विचार किया जाता है। रुक्मिणी प्रधान पटरानी है, उसके अनन्तर सत्यभामा का नाम आता है। इसके कृष्ण से विवाहित होने की पृष्ठभूमि में भागवतकार ने एक कथा कल्पित की है। सत्राजित नामक एक

* बहवस्ते भविष्यन्ति पुत्रा. शत्रुसूदन ।
स्त्रीणां षोडश साहस्रं भविष्यन्ति शताधिकम् ॥
देवी भागवत स्कन्ध ४ अ० २५ श्लो० ५७

ददर्श कन्यास्तत्रस्था सहस्राणां च षोडशः ।
समे क्षणे च तासां च पाणिं जग्राह माधव· ।
ताभिः सार्धं स रेमे च क्रमेण च शुभे क्षणे ॥
ब्रह्मवैवर्त पुराण खं० ४ अ० ११२

द्वारिकावासी यादव को सूर्य से स्यमन्तक मणि प्राप्त हुई। कृष्ण ने उसे यह परामर्श दिया कि वह इस मणि को यादवपति महाराज उग्रसेन को भेंट करदे। सत्राजित ने कृष्ण का यह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। एकदिन सत्राजित का भाई प्रसेन उक्त मणि को धारण कर जंगल में शिकार खेलने गया। वहाँ एक सिंह ने उसे मार डाला और उससे मणि छीन ली। सिंह से एक त्रेताकालीन रीछ * की मुठभेड़ हो गई और उसने सिंह को मार कर मणि अपने पास रख ली। इधर प्रसेन के मारे जाने और मणि के न मिलने पर लोगों ने कृष्ण पर संदेह किया कि उन्होंने प्रसेन से मणि छीन ली है। कृष्ण ने इस चोरी या साहस के कलंक का परिमार्जन करने के लिये जंगल में जाकर खोज की तो उन्हें सिंह के पावों के चिन्ह मिले, जिनके आधार पर वे रीछ की गुफा तक पहुँच गये। वहाँ उन्हें जाम्बवान् रीछ की पुत्री के पास उक्त मणि दिखाई दी। कृष्ण और जाम्बवान् का मणि के लिये घोर युद्ध हुआ, अन्त में जाम्बवान् परास्त हो गया और उसने मणि सहित अपनी कन्या जाम्बवन्ती भी कृष्ण के अर्पित कर दी। कृष्ण इस नई पत्नी के साथ नगर में लौट आये और वह मणि सत्राजित को लौटा दी। सत्राजित को भय और खेद दोनों हुये, उसने कृष्ण को प्रसन्न करने के लिये अपनी पुत्री सत्यभामा का विवाह कृष्ण के साथ कर दिया और वह मणि भी यौतुक के रूप में कृष्ण के अर्पण कर दी।†

इस मणि को लेकर आगे क्या २ काण्ड हुए उन्हें न लिखकर हम इतना कह देना ही पर्याप्त समझते हैं कि ये सब घटनायें

* जाम्बवान्, जो राम की सेना में था। पुराणों में काल-विपर्यय का दोष अनेक स्थानों पर मिलता है। ले०

† दशम स्कन्ध अ० ५६

भागवतकार की स्वकल्पित हैं। महाभारत में इन मिथ्या कथाओं का कोई संकेत नहीं है। बंकिम ने इस पर टिप्पणी करते हुये लिखा है—"इस स्यमन्तक मणि की कथा में भी कृष्ण की न्यायपरता, स्वार्थशून्यता, सत्यप्रतिज्ञता और कार्यदक्षता ही अच्छी तरह से प्रकट होती है। पर यह सत्यमूलक नहीं जान पड़ती।"* राम का समकालीन जाम्बवान् कृष्ण के युग में भी विद्यमान था, इसे कोई बुद्धिमान मानने के लिये तैयार नहीं होगा। यदि दुर्जनतोष न्याय से जाम्बवान नामक रीछ का अस्तित्व भी स्वीकार किया जाय तो उसकी कन्या निश्चितरूप से रीछनी होगी, मानवी नहीं। रीछनी के साथ कृष्ण का विवाह कैसे हुआ होगा? यह जाम्बवन्ती के विवाह की कथा जो आगे चलकर सत्यभामा के विवाह का भी कारण बनी, मिथ्या ही है।

अन्य विवाहों के वर्णन के लिये भागवतकार ने एक पृथक् अध्याय ही लिखा है।† इन कथाओं की विस्तृत आलोचना की आवश्यकता नहीं क्योंकि वे भी सत्यभामा, जाम्बवन्ती जैसी हैं। स्थाली-पुलाक न्याय से उनकी असत्यता की भी कल्पना की जा सकती है।

कृष्ण ने प्राग्ज्योतिष (आसाम) के राजा नरकासुर (भौमासुर) को मार कर जिन १६००० राजकुमारियों से विवाह किया, उसका वर्णन भागवत के एक अध्याय में है। नरकासुर के अत्याचारों की शिकायत लेकर इन्द्र द्वारिका में उपस्थित हुआ। कृष्ण ने उसे वचन दिया कि वे स्वयं प्राग्ज्योतिषपुर आवेंगे और नरक का वध

* कृष्ण चरित्र पृ० २२९

† भागवत दशमस्कन्ध पू० अ० ५८
विष्णु पुराण ५।२९

करेंगे। इस प्रतिज्ञा के अनुसार कृष्ण सत्यभामा के सहित वहाँ पहुंचे। सर्व प्रथम उनका युद्ध मुर नामक सेनापति से हुआ, जिसे मार कर कृष्ण 'मुरारि' नाम से विख्यात हुये। तत्पश्चात् नरकासुर को मार कर उन्होंने उसके अंत:पुर में वंदी १६००० राजकुमारियों को मुक्त कर उनका पत्नी रूप में वरण किया। *

बंकिम के अनुसार यह सब घटना अलौकिक और मिथ्या है। उनकी युक्ति यह है कि कृष्ण का समकालीन प्राग्ज्योतिषपुर का राजा नरकासुर नहीं भगदत्त था जो कुरुक्षेत्र के युद्ध में अर्जुन के हाथों मारा गया। महाभारत से इसकी पुष्टि भी होती है। कृष्ण के १६००० रानियें होना आदि बातें अलौकिक और असत्य हैं।†

पुराणों के नवीन व्याख्याकार पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ने इस घटना का एक अद्भुत समाधान प्रस्तुत किया है।‡ उनके मतानुसार नरकासुर ने इन १६००० राजकन्याओं का विभिन्न राजकुलों से अपहरण किया था और अपनी वासना पूर्ति के लिये उन्हें अपने अन्त:पुर में ला रक्खा था। कृष्ण ने नरकासुर को मार कर और असुर के घर में रही इन नारियों को अपने अन्त:पुर में स्थान देकर एक आदर्श उपस्थित किया है। आप सातवलेकरजी से पूछेंगे कि वह क्या आदर्श है जिसे कृष्ण ने इन १६००० राजकन्याओं को पत्नी रूप में स्वीकार कर उपस्थित किया? आपका कथन है कि कृष्ण ने अपने इस कृत्य द्वारा अपहृत स्त्रियों

* विष्णु पुराण ५।२९ नरकासुर विष्णु का पृथ्वी में उत्पन्न किया पुत्र था। उसकी १६००० स्त्रियों से विष्णु के अवतार कृष्ण का विवाह करना पुत्र वधुओं से विवाह करने के तुल्य है। ले०

† कृष्ण चरित्र पृ० २२१

‡ आर्य मित्र २६ जून १९५२ "कृष्ण का चरित्र"

का समाज में क्या स्थान हो, इस प्रश्न का उत्तर ढूंढ निकाला है। आज पाकिस्तान से लाई जाने वाली हिन्दू महिलाओं का भविष्य अंधकारमय प्रतीत हो रहा है। उन्हें पुनः हिन्दू समाज में स्थान मिलना कठिन हो रहा है। सातवलेकरजी श्रीकृष्ण का दृष्टान्त देकर कहते हैं कि कोई ऐसा वीर सामने आये जो इन पाकिस्तान से आई समस्त देवियों (चाहे वे १६००० हों या ३२०००) को अपनी पत्नी बना कर कलियुगी कृष्ण का आदर्श उपस्थित करे और साथ ही अपहृताओं की समस्या को समाप्त करे। क्या ही अद्भुत तर्क है! क्या ही विचित्र समाधान है!

थोड़ी देर के लिये यह मान भी लिया जाय कि इन दुखिया राजकुमारियों को पुनः ग्रहण करने वाला कोई नहीं था, परन्तु कृष्ण के लिये क्या यही उपाय शेष रह गया था कि वे उन १६००० नारियों को अपने घर में डाल लें। क्या ऐसा करके उन्होंने बहु-विवाह का एक बीभत्स उदाहरण प्रस्तुत नहीं किया है? क्या उन स्त्रियों के लिये कोई पृथक आश्रम आदि नहीं बनाया जा सकता था? उस समय तो पुनर्विवाह का प्रचार था। वे यदि चाहतीं तो अन्य पुरुषों के साथ विवाह कर सकती थीं। परन्तु सातवलेकरजी को यही अच्छा लगा कि कृष्ण के अन्तःपुर को लखनऊ के नवाबों के हरमों के तुल्य बना दें। वे तो कहते हैं कि कृष्ण ने ऐसा कर समाज के सम्मुख एक आदर्श उपस्थित किया है, समाज का मार्गदर्शन किया है। क्या आज भी कोई सातवलेकरजी की सलाह

इसी कथा से सम्बद्ध पारिजात हरण की कथा है, जिसका उल्लेख भागवत और विष्णु पुराण में है।* नरकासुर को मार कर जब कृष्ण सत्यभामा के साथ द्वारिका लौट रहे थे तो स्वर्ग के नन्दन कानन में पारिजात वृक्ष को देख कर सत्यभामा का मन उसे पाने के लिये लालायित हो उठा। कृष्ण ने अपनी प्रियतमा की इच्छा पूरी करने के लिये उसे उखाड लिया। कृष्ण की इस गुस्ताखी से इन्द्र को बडा क्रोध आया और वह देवताओं के स्वत्वों की रक्षा के निमित्त कृष्ण से भिड गया। खैर, युद्ध का जो अन्त होना था, वही हुआ। इन्द्र परास्त हुये और उन्होंने विवश होकर पारिजात कृष्ण को सौंप दिया। अब वह द्वारिका की शोभा बढ़ायेगा, इस उद्देश्य से कृष्ण उसे द्वारिका ले आये। इस कथा को अलौकिक समझ कर बिना टिप्पणी किये ही छोड देते हैं।

कृष्ण पर लगाये जाने वाले बहु विवाहों के आरोप की समालोचना बंकिम बाबू ने एक पृथक अध्याय में अत्यन्त प्रामाणिक और युक्तिसंगत रूप में की है।† विष्णु पुराण, हरिवंश, महाभारत आदि ग्रन्थों में इस विषय के जो २ उल्लेख मिलते हैं उन सबको एकत्र किया है और बताया है कि ये वर्णन परस्पर विरुद्ध होने के कारण अनैतिहासिक हैं। जिन रानियों के नाम गिनाये गये हैं उनमें भी कोई संगति और समानता नहीं है। कहीं कोई नाम बढ गया है, कहीं कोई नाम घट गया है। नरकासुर के अन्तःपुर से छुड़ाई हुई १६००० रानियों को भी बंकिम मन गढन्त मानते हैं।‡ विष्णु पुराण (अंश ४ अध्याय १५ श्लो० ३६) के अनुसार कृष्ण की

---

* भागवत, विष्णुपुराण ५।३०

† कृष्ण चरित्र पृ० २३० से २४५

‡ „ पृ० २३०

सब स्त्रियों से १८०००० पुत्र हुये।* कृष्ण की आयु इसी पुराण में १२५ वर्ष बताई गई है। बंकिम ने हिसाब लगा कर बताया है कि इस हिसाब से कृष्ण के साल भर में १४४० और एक दिन में ४ लड़के होते थे। यहाँ यही समझना होगा कि कृष्ण की इच्छा से ही कृष्ण की स्त्रियां पुत्र प्रसव करती थीं।†

जाम्बवन्ती, सत्यभामा, लक्ष्मणा आदि की कथाओं को मिथ्या सिद्ध करने के लिये बंकिम बाबू ने अत्यन्त परिश्रम पूर्वक नवीन तर्कों का उद्भावन किया है। विस्तृत विवेचन के अनन्तर बंकिम ने जो निष्कर्ष निकाला है वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है—"महाभारत के मौलिक अंश से तो यही प्रमाणित होता है कि रुक्मिणी के सिवा श्रीकृष्ण के और कोई स्त्री नहीं थी। रुक्मिणी की ही संतान राजगद्दी पर बैठी और किसी के वंश का पता नहीं। इन कारणों से कृष्ण के एक से अधिक स्त्री होने में पूरा संदेह है।"‡

इस प्रकार श्रीकृष्ण के बहुविवाह का प्रमाणपुरस्सर खण्डन करने पर भी बंकिम की स्थिति संदेहास्पद है, कारण कि वे एक पत्नीव्रत के आदर्श को ईसाई आदर्श मानते हैं, परन्तु बहु विवाह के समर्थन में कोई महत्वपूर्ण दलील न देना इस बात को प्रमाणित करता है कि व अपने कथन से पूर्ण रूपेण संतुष्ट हैं। हाँ इस विषयक उनके निर्णय बड़े महत्व पूर्ण हैं, जिन्हें उद्धृत कर हम इस विवेचन को समाप्त करेंगे।—"कृष्ण ने एक से अधिक विवाह किये इसका कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिला। यदि किये ही हों तो क्यों किये, इसका भी विश्वासयोग्य वृत्तान्त कहीं नहीं मिला।

* ब्रह्म पुराण के अनुसार कृष्ण के इन पुत्रों की संख्या ८८८०० थी। पुराणों के परस्पर विरोध का यह एक उदाहरण है। ले०

† कृष्ण चरित्र पृ० २२१

‡ कृष्ण चरित्र पृ० २४३

स्यमन्तकमणि के साथ जैसी स्त्रियां उन्हें मिलीं वह नानी की कहानी के उपयुक्त है। और नरकासुर की सोलह हजार रानियाँ तो नानी की कहानियों की भी नानी हैं। यह कहानियाँ सुन कर हम प्रसन्न हो सकते हैं, पर विश्वास नहीं कर सकते।"*

यहाँ आते २ भागवत और अन्य पुराणों की कथाओं की आलोचना समाप्त होती है। कुछ कथायें और बच जाती हैं यथा उषा अनिरुद्ध का विवाह, पौण्ड्रक वासुदेव का दमन और काशीदाह आदि। इन कथाओं में ऐतिहासिक तत्व शून्य के बराबर है। पौण्ड्रक वासुदेव की कथा को बंकिम ऐतिहासिक मानते हैं, परन्तु भागवत में उसका जैसा वर्णन किया गया है, उसे देखते यह सर्वथा अविश्वसनीय प्रतीत होती है। जब कृष्ण का ही ईश्वरत्व सिद्ध नहीं होता तो कोई अन्य व्यक्ति भी ईश्वरत्व का दावा करे तो उसका कोई मूल्य नहीं। यह हो सकता है कि वह कोई अत्याचारी राजा रहा हो, जिसे मार कर कृष्ण ने धर्म राज्य स्थापित करने की ओर अपना निर्णायक कदम बढ़ाया हो।

१६. द्रौपदी स्वयंवर के अवसर पर कृष्ण पाण्डव समागम।

महाभारत में कृष्ण का उल्लेख सर्व प्रथम द्रौपदी स्वयंवर के प्रसंग में किया गया है। राजा द्रुपद की पुत्री पाञ्चाली द्रौपदी के स्वयंवर में आमंत्रित होकर देश विदेश के अनेक राजा एकत्र हुये थे। पाण्डव लोग भी ब्राह्मण वेश में वहाँ उपस्थित थे।

* कृष्ण चरित २४५

गम्भीरता, सौजन्यता, धार्मिकता और महनीयता के दर्शन हुये हैं वह महाभारत के आगे के प्रकरणों में हमें सर्वत्र मिलेंगे।

कृष्ण युधिष्ठिर संवाद—

स्वयंवर समाप्ति के अनन्तर पाण्डव लोग द्रौपदी को लेकर अपने निवास स्थान पहुंचे। कुछ ही समय के अनन्तर कृष्ण और बलदेव भी उनसे भेंट करने के लिये आये। महाभारत में लिखा है—"वासुदेव कृष्ण अजमीढ वंशी, धार्मिक वर, कुन्ती कुमार युधिष्ठिर के सामने जाकर उनके पांव छूकर बोले, मैं कृष्ण हूँ। इसी प्रकार बलदेव जी ने भी किया। पाण्डवगण राम और कृष्ण को देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुये। तदन्तर यदुवीर राम और कृष्ण फूफी पृथा (कुन्ती) के पांव लगे। अजातशत्रु युधिष्ठिर ने कृष्ण को देख कर और कुशल क्षेम पूछ कर कहा, हे वासुदेव, तुमने यह कैसे जाना कि हम यहाँ बसे हुये हैं? कृष्ण ने हंस कर कहा, अग्नि छिप रहने से भी कभी अज्ञात नहीं रहती। इसी प्रकार इस भूमण्डल के मानवों में पाण्डवों के बिना और कौन ऐसा पराक्रम

इससे कृष्ण का अपने सम्बन्धियों के प्रति प्रेम और सौजन्य के भाव का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। दुख में पड़े हुये पाण्डवों की सेवा करना उनका धर्म था। यद्यपि उनका पाण्डवों से अब तक साक्षात्रूपेण परिचय नहीं हुआ था, परन्तु फिर भी अपने दुर्दशा-ग्रस्त सम्बन्धियों की खोज कर उनकी सहायता करना कृष्ण जैसे आदर्श व्यक्ति के लिये ही सम्भव था। कृष्ण तो सुजनता और शिष्टाचार के मूर्तिमान आदर्श ही थे, उनके लिये ऐसा करना सर्वथा स्वाभाविक था।

२०. सुभद्रा हरण

महाभारत में द्रौपदी स्वयंवर के अनन्तर कृष्ण का उल्लेख सुभद्राहरण के प्रसंग में मिलता है, अतः यहाँ इसका विवेचन करना चाहिये।

एक बार अर्जुन भ्रमण करते २ द्वारिका पहुंच गया। कृष्ण आदि यादवों ने उसका बड़ा सत्कार किया। उन दिनों रैवतक पर्वत पर एक बड़ा भारी मेला लग रहा था, जिसमें समस्त यादव अपने २ परिवारों सहित सम्मिलित हुये थे। इसी अवसर पर अर्जुन ने कृष्ण की भगिनी सुभद्रा को सर्व प्रथम देखा। उसके अपूर्व सौन्दर्य से चमत्कृत होकर उसने कृष्ण से उससे विवाह करने की इच्छा प्रकट की। इस पर श्री कृष्ण ने कहा, "क्षत्रियों का नियम स्वयंवर विवाह का है, पर उसके सिद्ध होने में शंका हो सकती है क्योंकि नारियों का स्वभाव और हृदय शूरता, पाण्डित्य आदि गुणों पर नहीं चलता। वे पहले देखने पर सुन्दर जन पर मोहित होती हैं। अतएव शूर क्षत्रियों के लिये बल से कन्या का

गम्भीरता, सौजन्यता, धार्मिकता और महनीयता के दर्शन हुये हैं वह महाभारत के आगे के प्रकरणों में हमें सर्वत्र मिलेंगे।

कृष्ण युधिष्ठिर संवाद—

स्वयंवर समाप्ति के अनन्तर पाण्डव लोग द्रौपदी को लेकर अपने निवास स्थान पहुचे। कुछ ही समय के अनन्तर कृष्ण और बलदेव भी उनसे भेंट करने के लिये आये। महाभारत में लिखा है—"वासुदेव कृष्ण अजमीढ वंशी, धार्मिक वर, कुन्ती कुमार युधिष्ठिर क सामने जाकर उनके पाव छूकर बोले, मैं कृष्ण हूँ। इसी प्रकार बलदेव जी ने भी किया। पाण्डवगण राम और कृष्ण को देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुये। तदन्तर यदुवीर राम और कृष्ण फूफी पृथा (कुन्ती) के पाव लगे। अजातशत्रु युधिष्ठिर ने कृष्ण को देख कर और कुशल क्षेम पूछ कर कहा, हे वासुदेव, तुमने यह कैसे जाना कि हम यहाँ बसे हुये हैं? कृष्ण ने हस कर कहा, अग्नि छिप रहने से भी कभी अज्ञात नहीं रहती। इसी प्रकार इस भूमण्डल के मानवों मे पाण्डवों के बिना और कौन ऐसा पराक्रम दिखा सकता है?"* इस प्रकार मधुर वचनों का आदान प्रदान करने के अनन्तर कृष्ण ने पाण्डवों से विदाई ली। इसके पूर्व यद्यपि कृष्ण और पाण्डवों का साक्षात् परिचय नहीं था, परन्तु कृष्ण ने अपना यह कर्तव्य समझा कि वे स्वयं जाकर आपत्ति-ग्रस्त पाण्डवों से मिलें और उनकी सहायता करें। इसीलिये वे द्रौपदी के विवाह हो जाने तक वहाँ रहे और उन्होंने पाण्डवों को नाना प्रकार के वस्त्राभूषण तथा गृहस्थ की अन्य आवश्यक वस्तुयें आदि भेजी, जिनकी पाण्डवों को ऐसे समय में बड़ी आवश्यकता थी।

* आदि पर्व अ० १९२

इससे कृष्ण का अपने सम्बन्धियों के प्रति प्रेम और सौजन्य के भाव का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। दुख में पडे हुये पाण्डवों की सेवा करना उनका धर्म था। यद्यपि उनका पाण्डवों से अब तक साक्षात्‌रूपेण परिचय नहीं हुआ था, परन्तु फिर भी अपने दुर्दशा-ग्रस्त सम्बन्धियों की खोज कर उनकी सहायता करना कृष्ण जैसे आदर्श व्यक्ति के लिये ही सम्भव था। कृष्ण तो सुजनता और शिष्टाचार के मूर्तिमान आदर्श ही थे, उनके लिये ऐसा करना सर्वथा स्वाभाविक था।

२०. सुभद्रा हरण

महाभारत मे द्रौपदी स्वयवर के अनन्तर कृष्ण का उल्लेख सुभद्राहरण के प्रसग में मिलता है, अत यहाँ इसका विवेचन करना चाहिये।

एक बार अर्जुन भ्रमण करते २ द्वारिका पहुच गया। कृष्ण आदि यादवों ने उसका बडा सत्कार किया। उन दिनों रैवतक पर्वत पर एक बडा भारी मेला लग रहा था, जिसमें समस्त यादव अपने २ परिवारों सहित सम्मिलित हुये थे। इसी अवसर पर अर्जुन ने कृष्ण की भगिनी सुभद्रा को सर्व प्रथम देखा। उसके अपूर्व सौन्दर्य से चमत्कृत होकर उसने कृष्ण से उससे विवाह करने की इच्छा प्रकट की। इस पर श्री कृष्ण ने कहा, "क्षत्रियों का नियम स्वयवर विवाह का है, पर उसके सिद्ध होने में शंका हो सकती है क्योंकि नारियों का स्वभाव और हृदय शूरता, पाण्डित्य आदि गुणों पर नहीं चलता। वे पहले देखने पर सुन्दर जन पर मोहित होती हैं। अतएव शूर क्षत्रियों के लिये बल से कन्या का

हरण कर विवाह करने के जिस नियम की धर्मज्ञगण प्रशंसा करते हैं, तुम उसी विधान के अनुसार बलपूर्वक मेरी इस शुभ लक्षणान्वित बहिन का हरण करो, क्योंकि कौन जानता है, सुभद्रा का क्या अभिप्राय है ?''*

कृष्ण की इस सम्मति से अर्जुन का कार्य और भी सरल हो गया और वह सुभद्रा को अपने रथ पर बिठा कर हस्तिनापुर की ओर चला। अर्जुन के इस कार्य का समाचार जब यादवों ने सुना तो उनके क्रोध का पारावार न रहा। वे अर्जुन से बदला लेने और उसकी इस उद्दण्डता का मजा चखाने के लिये युद्ध की तैयारियाँ करने लगे। ऐसे समय में जब कि यादवों का समस्त समाज अर्जुन द्वारा किये गये जातीय अपमान से अत्यन्त क्षुब्ध हो रहा था, श्रीकृष्ण के मुख मण्डल पर अशान्ति और उद्विग्नता की एक रेखा भी नहीं थी। उनका चेहरा पूर्ण प्रशान्त और गम्भीर था। कृष्ण की स्थितप्रज्ञता को देख कर बलराम के मन में शंका उत्पन्न हुई कि हो न हो, कुछ न कुछ रहस्य अवश्य है। उन्होंने यादवों की अनावश्यक उत्तेजना को शान्त किया और कृष्ण से उनका मत पूछा। कृष्ण ने सुभद्राहरण का औचित्य जिस प्रकार सिद्ध किया, उससे सबको संतोष हो गया और एक भयकर युद्ध से आसानी से छुटकारा मिल गया। कृष्ण ने कहा, "अर्जुन ने जो कार्य किया है उससे हमारे कुल का अपमान नहीं हुआ है, वास्तव में उन्होंने हमारा सम्मान ही बढ़ाया है। वे जानते हैं कि हम धन लोभी नहीं हैं इसलिये उन्होंने धन देकर 'आसुर-विवाह' करने की चेष्टा नहीं की। स्वयंवर में शंका है, सो उन्होंने उसका भी प्रयत्न नहीं किया। पशु की भांति कन्यादान किसी क्षत्रिय को प्रिय नहीं और कन्या-

* आदि पर्व अध्याय २२०

विक्रय भी कदापि उचित नहीं। इसलिये मुझे ऐसा जान पड़ता है कि इन सब दोषों की भली भांति आलोचना करके ही अर्जुन ने एकाएक कन्या हर ली है। सुभद्रा जैसी यशस्विनी है, पार्थ भी वैसे ही गुणवान् हैं। फिर ऐसा कौन है जो उस यशस्वी अर्जुन को अपना मित्र बनाना न चाहे। त्रिलोकी में ऐसा कोई नहीं जो उन्हें परास्त कर सके, अतः मेरा विचार है कि हम लोग उन्हे तुरन्त प्रसन्न करें।"*

यादवों ने कृष्ण के इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया और उन्होंने आदरपूर्वक अर्जुन के साथ सुभद्रा का विवाह कर दिया। यह है संक्षेप में सुभद्रा-हरण की कथा।

सुभद्रा हरण का औचित्य—

तत्कालीन समाज व्यवस्था और परिस्थितियों पर ध्यान रखते हुये यदि इस घटना पर विचार किया जाय तो कोई विशेष आपत्ति की बात दिखाई नहीं देती। आपत्ति तब होती जब या तो हरण की हुई लड़की पर अत्याचार होता या उसके माता पिता की इच्छाओं पर बलात्कार होता, अथवा किसी सामाजिक नियम की अवहेलना होती। यहाँ इन तीनों में से एक भी बात नहीं हुई। सुभद्रा जैसी सुयोग्य रमणी के लिये अर्जुन जैसा सर्वगुण सम्पन्न पति पाना प्रारब्ध की ही बात थी। कृष्ण का भी यह कर्तव्य था कि वे अपनी बहिन को किसी सत्पात्र को सौंपते और अर्जुन से अधिक सत्पात्र पाना कठिन था। सुभद्रा की भी इसमें मौन सम्मति ही दिखाई पड़ती है, क्योंकि यदि उसे इसमें कोई आपत्ति दिखाई पड़ती तो वह इसे कदापि स्वीकार नहीं करती। वह स्वयं अर्जुन पर मुग्ध थी। कन्या के माता पिता पर भी कोई

* आदि पर्व अ० २२२

अत्याचार नहीं हुआ क्योंकि न तो कन्या किसी अनिच्छित पात्र के हाथ में ही गई और न अर्जुन जैसा जामाता पाने से उनका अपमान ही हुआ।

अब रहती है बात सामाजिक नियमों की अवहेलना। यहाँ मामला साफ है क्योंकि उस समय क्षत्रियों में राक्षस विवाह ही अधिक प्रशस्त समझा जाता था। मनु ने क्षत्रियों के लिये राक्षस और गांधर्व ये दो विवाह बताये हैं—

पृथक् पृथग्वा मिश्रौ वा विवाहौ पूर्व चोदितौ।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव धर्म्यौ क्षत्रस्य तौ स्मृतौ॥*

सुभद्रा और अर्जुन के गांधर्व विवाह के लिये रैवतक पर्वत पर कोई अनुकूल परिस्थिति नहीं थी, अतः उसके अभाव में राक्षस विवाह ही एक मात्र साधन था जिसे अर्जुन प्रयोग में ला सकते थे। कृष्ण ने अपने कथन में इस बात को स्पष्ट भी कर दिया था कि धन लेकर आसुर विवाह करना हमारी मर्यादा के प्रतिकूल है और स्वयंवर की कोई सम्भावना नहीं है। कन्या के माता पिता से कन्या को दान के समान ग्रहण करना उस समय के क्षत्रिय अपने लिये अपमान जनक समझते थे। इसलिये राक्षस विवाह ही निहित प्रणाली थी। राक्षस विवाह निन्दित अवश्य है और स्मृतिकारों ने भी इसे अधम माना है, परन्तु तत्कालीन क्षत्रिय समाज में यह अच्छा समझा जाता था। इस प्रकार प्रत्येक दृष्टिकोण से देखने पर सुभद्रा-हरण में हमें कृष्ण की कोई अधार्मिक प्रवृत्ति नहीं दिखाई देती। बंकिम ने भी इस प्रसंग की मीमांसा अत्यन्त विस्तार पूर्वक की है जिससे कृष्ण की दूरदर्शिता और कार्यदक्षता आदि गुण प्रकट होते हैं।

◆◆

* मनुस्मृति ३।२६

२१. खाण्डवदाह

खाण्डवदाह की कथा महाभारत के आदि पर्व के अन्तिम १२ अध्यायों में विस्तार पूर्वक लिखी गई है। प्राचीन काल में किसी श्वेत नामक राजा ने अनेक यज्ञ किये। लगातार अनेक वर्षों तक घी खाते २ अग्निदेव को मंदाग्नि का रोग हो गया। उनकी पाचन शक्ति शिथिल हो गई। रोग से दुखी होकर वे ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा ने उपाय बताया कि यदि तुम खाण्डव बन को खा डालो तो नीरोग हो जाओगे। यह सुन कर अग्निदेव खाण्डव बन पहुँच कर उसे जलाने लगे। अग्निदाह से व्याकुल होकर वन के जीव जन्तुओं ने पानी ला ला कर अग्नि को शान्त कर दिया। इस प्रकार बहुत प्रयत्न करने पर भी अग्निदेव अपने कार्य में कृतकृत्य नहीं हो सके और वन नहीं जल सका। तब उन्होंने ब्राह्मण का वेश धारण किया और कृष्ण तथा अर्जुन के निकट जाकर अपनी विपत्ति का वर्णन किया। कृष्ण और अर्जुन ने उन्हें आश्वासन दिया और वे दोनों खाण्डव बन को जलाने के लिये उपस्थित हो गये। अर्जुन और कृष्ण के इस कार्य में जब इन्द्र ने बाधा डाली तो अर्जुन ने अपने बाणों से जल वृष्टि को बंद कर दिया। इन्द्र को अपनी इस अवमानना से बड़ा क्रोध आया और वह अर्जुन से युद्ध करने के लिये सन्नद्ध हो गया। अर्जुन ने भी सब देवताओं के साथ इन्द्र को परास्त कर दिया। अन्त में आकाशवाणी से इन्द्र को यह ज्ञात हुआ कि कृष्ण और अर्जुन नर तथा नारायण के अवतार हैं। यह जान कर देवता लोग चले गये। खाण्डव बन पूर्णतया जल गया और मृत पशु-पक्षियों के मांस मज्जा आदि को खाकर अग्निदेव की मंदाग्नि दूर हो गई।

यह कथा का संक्षिप्त कंकाल मात्र है। महाभारत में इसे अत्यन्त अतिशयोक्ति पूर्ण ढंग से वर्णित किया गया है। बुद्धि पूर्वक विचार करने से पता चलता है कि इस कथा में तथ्य कुछ भी नहीं है। सारी कथा अलौकिक और अप्राकृतिक तत्वों से पूर्ण है, अतः यह अप्रामाणिक और अविश्वसनीय प्रतीत होती है। यदि इसमें कोई सत्यांश हो सकता है तो यह इतना ही कि कृष्ण और अर्जुन ने राजधानी के निकट के एक जंगल को साफ किया। उसमें जो भयंकर हिंसक जानवर रहते थे, उन्हें मार कर उसे निवास योग्य बना दिया। यही खाण्डवदाह का रहस्य है।

खाण्डवदाह की घटना में ही सभापर्व की कथा का बीज छिपा हुआ है। इसी वन में मय नामक एक चतुर शिल्पी निवास करता था। वह अनार्य वंश का दानव था। अर्जुन ने आग में जलने से उसको बचाया, इसलिये वह उसका कृतज्ञ बन गया। उसने अर्जुन से कहा कि आपने मुझे जीवनदान दिया है, इसलिये मैं आपका प्रत्युपकार कर आपके ऋण से उऋण होना चाहता हूँ। बतलाइये मैं आपकी क्या सेवा करूं? अर्जुन ने कहा कि तुम्हारा यह कृतज्ञता प्रकाशन ही पर्याप्त है, मुझे कुछ नहीं चाहिये। भविष्य में भी हमारा सम्बन्ध ऐसा ही प्रेम पूर्ण बना रहे, यही कामना है। मय को इससे संतोष नहीं हुआ और अर्जुन से इस बात का आग्रह करने लगा कि वह उससे कोई न कोई सेवा कार्य अवश्य ले। इस पर अर्जुन ने कहा कि यदि तुम्हें इससे ही कुछ संतोष हो तो कृष्ण जी का कोई कार्य कर दो, मुझे इसी से संतोष हो जायगा। अब मय ने कृष्ण से कोई कार्य कराने का आग्रह किया। कृष्ण ने उसे महाराज युधिष्ठिर के लिये एक सभा भवन बनाने को कहा। मय ने उनकी आज्ञानुसार ही एक ऐसा विचित्र

सभा भवन बनाया† जिससे आगे चल कर दुर्योधन को जल में स्थल का और स्थल में जल का भ्रम हुआ। भीम ने दुर्योधन की इस मूढ़ता को देख कर कहा कि अंधे के अंधे ही पैदा होते हैं। यही कटाक्ष बाण कौरव और पाण्डवों के पारस्परिक विरोध को और अधिक बढ़ाने का कारण बना, जिसके परिणाम स्वरूप महा भारत का युद्ध हुआ।

इस कथा से अर्जुन और कृष्ण की उदारता प्रदर्शित होती है। अर्जुन को इस बात का संतोष है कि यदि मय कृष्ण का कुछ उपकार कर देगा तो उसकी आत्मा संतुष्ट हो जायगी। वह स्वयं अपने लिए कुछ नहीं चाहता। इसी प्रकार कृष्ण ने भी अपने लिये कुछ न करवा कर युधिष्ठिर के लिये ही सभा भवन बनवाया। यह कृष्ण की निस्वार्थता और बंधुत्वभाव का ज्वलन्त प्रमाण है।

२२. द्वारिका गमन

पाण्डवो के संसर्ग में कुछ दिन व्यतीत कर श्रीकृष्ण ने अपने पिता के समीप द्वारिका जाने की इच्छा प्रकट की। महर्षि व्यास ने उनके द्वारिका प्रयाण के प्रसंग का वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक और हृदयग्राही ढंग से किया है। उससे ज्ञात होता है कि कृष्ण में आदर्श मानव की श्रेष्ठतम प्रवृत्तियों का विकास हो चुका था। उनका सौम्य और प्रेमपूर्ण व्यवहार, परिवार और सुहृद्जनों के प्रति उनकी शिष्टता और सौजन्य, स्वधर्म और स्वकर्तव्य के प्रति उनकी निष्ठा आदि गुणों के कारण वे सबके पूज्य और प्रिय बन गये थे।

† सभापर्व अध्याय १

सभापर्व के द्वितीय अध्याय में वर्णित कृष्ण के इन मानवी गुणों का वर्णन व्यास महाराज ने इतनी सुन्दरता और चित्ताकर्षक ढंग से किया है कि कृष्ण को ईश्वर समझने वाले बंकिम को भी यह कहने के लिये विवश होना पड़ा, "श्रीकृष्ण ने अपने को ईश्वर कहीं नहीं कहा है और न यही कहा है कि मुझ में अमानुषी शक्ति है। किसी के ईश्वर कहने पर उन्होंने उसका अनुमोदन नहीं किया और न ऐसा आचरण ही किया जिससे उनके ईश्वर होने का विश्वास दृढ़ हो जाय। एक जगह तो इन्होंने साफ कह दिया है, मैं यथासाध्य पुरुषाकार प्रकाश कर सकता हूँ। पर दैव के कामों में मेरा कुछ वश नहीं है"।*

जब कृष्ण द्वारिका के लिये प्रयाण करने लगे तो उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिर का सम्मान किया और अपनी बुआ कुन्ती के चरणों का स्पर्श किया। पृथा ने उनका सिर सूंघ कर उन्हें गले लगाया। तदन्तर वे अपनी बहिन सुभद्रा के पास गये और उससे प्रिय, मधुर सम्भाषण किया। सुभद्रा को भी स्वजनों के लिये जो कुछ संदेश भेजना था, वह कृष्ण से निवेदन किया। इस प्रकार बहिन का उचित आदर कर कृष्ण ने द्रौपदी और पुरोहित धौम्य से भेंट की। इस कार्य को पूरा कर वे अर्जुन के साथ युधिष्ठिर आदि चारों भाइयों के निकट गये। जिस प्रकार इन्द्र अमरों से घिर कर शोभा पाता है उसी प्रकार पाण्डवों से घिरे हुए यदुकुल श्रेष्ठ कृष्ण शोभायमान होने लगे। स्नानादि से निवृत्त होकर उन्होंने अलंकार धारण किये और यात्रा की तैयारी करने से पूर्व देवयज्ञ किया तथा माला, मंत्र और नमस्कार आदि एवं सुगंधित द्रव्यों से द्विजों और विद्वानों की पूजा की। इन सब कार्यों से निवृत्त होकर

* ण चरित्र पृ० २८७

वे बाहर के कक्ष में आये जहाँ स्वस्तिवाचन करने वाले ब्राह्मण दधिपात्र, पुष्प और अक्षत आदि लिये खड़े थे। कृष्ण ने उन पूजनीय द्विजों की प्रदक्षिणा कर उनका यथा-योग्य सत्कार किया और उनको दान दक्षिणा से सत्कृत किया।

इन सब कार्यों से निवृत्त होकर उन्होंने गदा, असि, धनुष और चक्र आदि आयुध धारण किये, शैव्य, सुग्रीव आदि घोड़ों वाले रथ पर चढ़ कर द्वारिका के लिये प्रस्थान किया। इनके प्रेम से वशीभूत होकर कुरुनाथ युधिष्ठिर भी रथ पर चढ़ गये और सारथी दारुक को अलग बिठा कर आप स्वयं रथ हांकने लगे। दीर्घबाहु अर्जुन भी रथ पर चढ़ कर चंवर डुलाने लगा। प्रिय शिष्यों के पीछे जाने से जिस प्रकार गुरु सुशोभित होता है उसी प्रकार शत्रु-सूदन वासुदेव सुशोभित होने लगे। इसके अनन्तर कृष्ण ने अर्जुन को बड़े प्रेम से गले लगाया, युधिष्ठिर और भीमसेन को प्रणाम किया और माद्री-पुत्रों को भी गले लगाया। युधिष्ठिर आदि ने भी उनका आलिंगन किया और नकुल, सहदेव ने उन्हें प्रणाम किया। इस प्रकार आधा योजन जाने पर कृष्ण ने युधिष्ठिर को लौट जाने की प्रार्थना की और उनके चरणों को पुनः स्पर्श किया। धर्मराज ने सिर सूंघ कर यादवश्रेष्ठ केशव को द्वारिका जाने की आज्ञा दी। कृष्ण ने भी "फिर आऊंगा" कह कर पाण्डवों को सान्त्वना दी और द्वारिका के प्रति उसी प्रकार गमन किया, जिस प्रकार देवराज इन्द्र अमरावती की ओर जाते हैं। जब तक रथ दृष्टि से ओझल नहीं हो गया तब तक पाण्डव टकटकी लगा कर उसकी ओर देखते रहे और रथ के अगोचर होने पर निराश होकर घर लौटे।

उधर देवकीनन्दन कृष्ण भी अपने अनुगामी सात्यकि और सारथी दारुक के साथ तीव्रगामी रथ पर चढ़ कर द्वारिका में

प्रविष्ट हुये। नगर में प्रविष्ट होने के उपरान्त उन्होंने यदुश्रेष्ठ उग्रसेन, पिता वसुदेव, माता देवकी और भ्राता बलराम को प्रणाम किया। पुत्र पौत्रों से गले मिल और वृद्धों की आज्ञा ले वे रुक्मिणी के भवन में गये।* महाभारत में सर्वत्र इसी प्रकार कृष्ण के मानवीय चरित्र का कीर्तन किया गया है।

२३. जरासंध वध का परामर्श

धर्मराज युधिष्ठिर के मन में जब राजसूय यज्ञ करने की इच्छा उत्पन्न हुई तो उन्होंने अपने शुभचिन्तकों तथा मित्रों से इस विषय में परामर्श किया। सबने एकमत होकर अपनी सहमति प्रकट की और युधिष्ठिर को राजसूय का उपयुक्त अधिकारी घोषित किया, परन्तु युधिष्ठिर को तब तक सन्तोष नहीं हुआ, जब तब उन्होंने कृष्ण से इस विषय पर परामर्श नहीं कर लिया। युधिष्ठिर का आदेश पाकर कृष्ण द्वारिका से चल पड़े और इन्द्रप्रस्थ आकर उन्होंने युधिष्ठिर से भेंट की।

युधिष्ठिर बोला, "मैंने राजसूय यज्ञ करने की इच्छा प्रकट की है, परन्तु केवल इच्छा करने से ही यह कार्य पूरा नहीं हो सकता, यह तुम जानते हो। मेरे मित्रवर्ग ने भी एकमत होकर राजसूय के विषय में अपनी सम्मति दी है, परन्तु हे कृष्ण, उसकी कर्तव्यता के विषय में तुम्हारी बात ही प्रमाण है, क्योंकि कोई २ जन मित्रतावश किसी कार्य का दोष कह नहीं सकते, कोई २ स्वार्थवश केवल प्रभु का प्रिय विषय कहते हैं और कोई २ अपने लिये जो प्रिय होता है, उसी को कर्तव्य मान लेते हैं। परन्तु तुम काम,

* सभापर्व अध्याय २

क्रोध के वश में नहीं हो, अतः लोक में जो हितकारी है, वही सत्य २ कहो।"*

युधिष्ठिर के इस कथन से यह जाना जाता है कि वह कृष्ण को आप्त पुरुष मानते थे, और उनकी बात को यथार्थ रूप से हितकर और प्रामाणिक समझते थे। इससे पूर्व उसने अपने मंत्रि परिषद, भ्रातृवर्ग और धौम्य, द्वैपायन आदि महर्षियों से राजसूय विषयक परामर्श कर लिया था, परन्तु उसने अन्तिम रूप में कृष्ण की सम्मति को ही महत्व देना उचित समझा। युधिष्ठिर के इस कथन से कृष्ण के चरित्र की महानता पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। वह उन्हें काम, क्रोध और स्वार्थ से रहित पुरुषोत्तम समझता है। बंकिम ने इस प्रसंग में ठीक ही लिखा है—"नित्य का चाल चलन देखने वाले कृष्ण के फुफेरे भाई कृष्ण को क्या समझते थे और हम उन्हें क्या समझते हैं? वह लोग कृष्ण को काम, क्रोध से विवर्जित, सबसे सत्यवादी, सब दोषों से रहित, सर्व लोकोत्तम, सर्वज्ञ और सर्वकृत समझते थे, और हम उन्हें लम्पट, माखनचोर, कुचक्री, मिथ्यावादी, कापुरुष और सब दोषों की खान समझते हैं। प्राचीन ग्रन्थों में जिसे धर्म का आदर्श माना है उसे जिस जाति ने इतना नीचे गिरा दिया, उस जाति का धर्म लोप हो जाय तो आश्चर्य ही क्या है?"†

विदुर नीति में एक श्लोक आता है—

पुरुषा बहवो राजन् सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥‡

---

* सभापर्व अ० १३

† कृष्ण चरित्र पृ० २९३

‡ विदुरनीति ५।१५

युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ करने के लिये सम्मति देने वाले तो बहुत से मिल गये, परन्तु किसी ने यह अप्रिय सत्य कहने का साहस नहीं किया कि जब तक मगधराज जरासंध जैसा प्रभावशाली सम्राट् विद्यमान है, तो उसकी विद्यमानता में युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ में क्या सफलता मिलेगी। कृष्ण ही वह व्यक्ति थे जिन्होंने युधिष्ठिर को स्पष्ट कह दिया, "महान पराक्रमी जरासंध के जीते रहते आप कदापि राजसूय यज्ञ पूरा नहीं कर सकते। उसके पराभव करने के पश्चात् ही यह महान कार्य सफल हो सकेगा।"*

यहाँ जरासंध के अत्याचारों का थोड़ा सा दिग्दर्शन करा देना अनुचित न होगा। कृष्णजी की यह दृढ़ धारणा हो गई थी कि भारतवर्ष के सम्पूर्ण रोगों की एक मात्र औषधि है एक केन्द्रीय सुदृढ़ साम्राज्य की स्थापना। यह साम्राज्य धर्म के ऊपर आधारित होना चाहिये क्योंकि धर्म से ही मनुष्यों की ऐहलौकिक और पारलौकिक उन्नति होना सम्भव है। कृष्ण के समय में प्रतापी राजाओं का अभाव नहीं था, परन्तु धर्म का सहायक, निर्बलों का पोषक और विश्व कल्याण का शङ्खनाद करने वाले एक ऐसे सम्राट् का अभाव सबको खटक रहा था, जिसके ध्वज के नीचे आकर लोग अपने आपको अत्याचारों से मुक्त समझें और उन्नति की ओर अग्रसर हो सकें। जरासंध यद्यपि बल और प्रताप का भण्डार था, परन्तु उसकी शक्तियाँ भी कुमार्गगामिनी हो गई थीं। उसने अधर्मी और अत्याचारी राजाओं का पक्ष लिया। कंस, शिशुपाल जैसे नराधम उससे सहायता प्राप्त करते थे और जैसा कि आगे प्रसंग आने पर बताया जायगा, उसने अनेक राजाओं

* सभापर्व अ० १४

ो कैद कर लिया था और रुद्र के आगे उनकी बलि देने जैसे
ाशाची कृत्य करने का उसका शत प्रतिशत विचार था। अत्या-
ार और अन्याय के मूलकेन्द्र जरासंध का वध जब तक नहीं
ो जाय तब तक युधिष्ठिर का महद् अनुष्ठान कैसे सफल होगा,
ही चिंता कृष्ण को बराबर सता रही थी! इसलिये धर्मराज के
म्मति मांगने पर उन्होंने सर्वप्रथम जरासंध का अंत करने का
विचार उसके सम्मुख प्रस्तुत किया।

कृष्ण महाराज के ऐसे स्पष्ट और हितयुक्त कथन को सुन कर युधिष्ठिर अत्यन्त प्रसन्न हुये और उन्होंने कहा कि मेरे सब कामों में तुम्हीं प्रमाण हो। तुम जो कहोगे, मैं उसके विरुद्ध कभी नहीं जा सकूंगा।* भीम ने भी कृष्ण की बात का समर्थन किया और जरासंध को मारने के लिये अपने आपको कृतसंकल्प बताते हुये कहा कि कृष्ण नीति में निपुण हैं, मेरा बल विलक्षण है और धनञ्जय भी सबको जय कर सकते हैं, अत: जैसे तीन प्रकार की अग्नियों से यज्ञ पूरा होता है उसी प्रकार हम भी जरासंध का वध अवश्य करेंगे।"†

यहाँ यह शंका हो सकती है कि कृष्ण और जरासंध में वैयक्तिक शत्रुता थी, अतः उन्होंने युधिष्ठिर को उसके वध का परामर्श देकर अपनी प्रतिहिंसा की भावना को पूरा करने का प्रयत्न किया, परन्तु यह कथन निर्दोष नहीं है। कृष्ण जरासंध अमानुषिक अत्याचारों से भली भांति परिचित थे। वे जानते कि जरासंध ने ८६ राजाओं को अपने कारागार में डाल रक्खा है और उसकी यह इच्छा है कि इनकी संख्या १०० हो जाने पर

* सभापर्व अ० १५
† सभापर्व अ० १६

इनकी बलि चढ़ा दूंगा। ऐसी भयंकर नरबलि को तभी रोका जा सकता था जब युधिष्ठिर जरासंध वध के लिये तैयार होता। ऐसे अत्याचारी और दानवी प्रवृत्तियों वाले नरपशु के वधार्थ कृष्ण का सत् परामर्श उनके लोक हितकारी चरित्र का ज्वाज्वल्यमान उदाहरण हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है। ऐसी दशा में वैयक्तिक शत्रुता का बदला लेने का आक्षेप कृष्ण पर लगाना समीचीन जान नहीं पड़ता। स्पष्टतया लोकहित के लिये ही कृष्ण का यह प्रस्ताव था, परन्तु फिर भी यदि उन पर स्वार्थ का दोष ही लगाया जाता, तो इस मिथ्या दोषारोपण से भयभीत होने वाले भी वे नहीं थे। लोकनिंदा के भय से कर्तव्यच्युत होना उन्होंने नहीं सीखा था। लोक कल्याण के कार्य को इसीलिये छोड़ देना कि इससे लोग *उनकी निंदा करेंगे और यह समझेंगे कि वे जरासंध से अपनी* पुरानी शत्रुता का बदला ले रहे हैं, कृष्ण को कदापि स्वीकार नहीं था। वास्तव में तो ऐसा सोचने वाले लोग ही घोर स्वार्थी हैं क्योंकि वे लोक मंगल की अपेक्षा अपनी व्यक्तिगत मान मर्यादा का ही अधिक विचार करते हैं।* अस्तु।

जरासंध के बल पौरुष का विचार कर युधिष्ठिर को घोर निराशा हुई, परन्तु अंत में कृष्ण और अर्जुन के उत्साह प्रदर्शित करने और धैर्य बंधाने पर वह इसके लिये तैयार हुआ। महाभारत में युधिष्ठिर द्वारा जरासंध का परिचय पूछा जाने पर कृष्ण ने जरासंध के जन्म की जिस अलौकिक कथा का वर्णन किया† वह स्पष्ट ही प्रक्षिप्त है। परामर्श के अनन्तर निश्चय हुआ कि भीम, अर्जुन और कृष्ण जरासंध को मारने के लिये मगध जायें। यह भी तय हो

* कृष्ण चरित्र पृ० २६५

† सभापर्व अ० १७, १८

गया कि अकेले जरासंध को ही बाहुयुद्ध द्वारा परास्त किया जाय। कृष्ण व्यर्थ की मारकाट और रक्तपात के विरुद्ध थे। उनकी दृष्टि में जरासंध अपराधी था, न कि उसके सैनिक। अतः जरासंध से ही द्वन्द्वयुद्ध कर उसे समाप्त करा देने का उनका विचार था।

मगध पहुँचने पर गिरिशृङ्ग तोड कर नगर में प्रवेश करने का उल्लेख महाभारत में है। यहाँ उन्होंने स्नातक ब्राह्मणों का वेश धारण किया और जरासंध से मिले। जरासंध का साम्मुख्य होने पर भीम और अर्जुन ने मौन व्रत धारण कर लिया। अतः कृष्ण ने ही आगे होकर कहा कि इनका मौन व्रत है, अत अर्द्धरात्रि व्यतीत होने पर ये बोलेंगे। इस पर जरासंध ने उन्हे यज्ञशाला में टिका दिया और अर्द्धरात्रि का मिलने का वादा कर विदा ली।

२४. जरासंध वध

अर्द्ध रात्रि व्यतीत होने पर जरासंध ने स्नातक वेशधारी पाण्डवों और कृष्ण का आदर सत्कार किया। चतुर जरासंध ताड गया कि विप्र वेश धारण करने वाले ये आगन्तुक ब्राह्मण नहीं हैं। हथेलियों पर धनुष की ज्या चढ़ाने के कारण पड़े हुये चिन्हों को देखकर तो उसका सदेह और भी पक्का हो गया कि ये अवश्य ही क्षत्रिय हैं। उसने अपनी शका प्रकट करते हुये उनका वास्तविक परिचय और आगमन का प्रयोजन जानना चाहा।

श्रीकृष्ण ने कोमल गम्भीर स्वर में उत्तर दिया, "महाराज, आप हमें स्नातक ब्राह्मण ही जानें। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तीनों वर्ण स्नातक के नियम से रह सकते हैं।"* अन्त में उन्हें यह

* सभापर्व अ० २१

स्वीकार करना पड़ा कि वे क्षत्रिय हैं और यदि वह उनका बल देखना चाहता है, तो उसका समय शीघ्र ही निकट लाया जा सकता है। उन्होंने यह भी कहा कि बुद्धिमान जन शत्रु के घर में कुद्वार से और बंधु के घर में अच्छे द्वार से जा घुसते हैं। और भी जानलो कि कार्य सिद्धि की चाह में शत्रु के घर में घुस कर हम उसकी दी हुई पूजा नहीं लेते, यह हमारा नियम है।"*

जरासन्ध ने उत्तर दिया, "ब्राह्मण श्रेष्ट, मुझे स्मरण नहीं होता कि मैंने तुमसे कब शत्रुता की? बिना दोष तुम मुझे क्यों शत्रु समझते हो?"† इस पर कृष्ण ने अपने असली मतव्य को प्रकट किया। उन्होंने कहा, "महाराज, तुम जनसमाज के सब क्षत्रियों को बलपूर्वक पकड़ लाये हो, ऐसा अति कुटिल दोष करके क्यों अपने को निर्दोषी समझते हो? हे नृपश्रेष्ठ, राजा कहला कर क्यों अन्य साधु राजाओं की हिंसा करते हो और रुद्रदेव के नाम से बलि चढ़ाना चाहते हो? हे जरासंध, तुम्हारा किया वह पाप हमको भी स्पर्श करता है क्यों कि हम धर्माचरण करने वाले हैं और धर्म की रक्षा में भी समर्थ हैं। बलि चढ़ाने के लिये नरहत्या कभी नहीं देखी गई, फिर तुम क्यों नर बलि के द्वारा यह यज्ञ करना चाहते हो?"‡

इस प्रकार जरासंध के समक्ष कृष्ण ने अपने उद्देश्य को स्पष्टरूप से प्रकट कर दिया और अपना परिचय तथा आगमन का उद्देश्य बताते हुये कहा "मैं कृष्ण हूँ और यह दोनों पाण्डुपुत्र हैं।

---

* सभापर्व अ० २१
† सभापर्व अ० २२
‡ वही

हे मगधनाथ, हम तुम्हें ललकारते हैं, स्थिर होकर लड़ो, अथवा सब राजाओं को छोड़ दो, नहीं तो यम के घर जाओ।"*

कृष्ण के कथन से उनका मन्तव्य भली भाँति विदित हो जाता है। कृष्ण ने जरासंध से अपने किसी व्यक्तिगत झगड़े की चर्चा नहीं की क्यों कि वास्तव में उनका तो जीवन ही समष्टि के अर्पण था। जो मानवमात्र का शत्रु है वही कृष्ण का शत्रु है। वे धर्म के मित्र और अधर्म के शत्रु थे। उन्होंने जरासंध के आगे यह भी प्रकट कर दिया कि यदि वे उसके अत्याचारों और पापाचारों को सहन करेंगे तो उन्हें भी पाप का भागी होना पड़ेगा। कृष्ण का यह कथन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वे स्वयं धर्माचरण के लिये कटिबद्ध हैं और अधर्म का आचरण करने वालों को दण्ड देने की सामर्थ्य रखते हैं। कृष्ण का सारा जीवन इसी आदर्श को सिद्ध करता है। कंस, शिशुपाल, जरासंध, कौरव आदि अत्याचारियों को मिटाने का उन्होंने आजीवन प्रयत्न किया और इसमें उन्हें सफलता भी मिली।

यहाँ बंकिम ने एक शंका उठाई है।† पापियों को मार कर ही भूभार उतारा जा सकता है, अथवा उन्हें सन्मार्ग पर लाने का और भी कोई शान्तिपूर्ण उपाय है? क्या उपदेश और हृदय परिवर्तन से उनका सन्मार्ग पर आजाना सम्भव नहीं है? बंकिम इस बात को अस्वीकार नहीं करते, परन्तु गांधी जी की तरह अविरादी बन कर, वे इसे एक मात्र साधन भी स्वीकार नहीं करते। जरासंध के समक्ष महाराज ने समझौते की शर्त रक्खी कि यदि वह बंदी राजाओं को मुक्त कर दे तो ठीक ही है अन्यथा,

* वही

† कृष्ण चरित्र पृ० ३०८

उसे मृत्यु का सामना करने के लिये तैयार रहना चाहिये। भा
युद्ध को रोकने के लिये उन्होंने जो महान् प्रयत्न किया, उ
वर्णन तो आगे होगा, जहाँ वे शान्ति का सन्देश लेकर कौरव
में जाते हैं।

कृष्ण ने युद्ध को सदा ही गौण स्थान दिया था। परन्तु उ
सिद्धान्त बुद्ध, ईसा या गांधी की तरह युद्ध का आपातत विरोधी
था। उनके चरित्र में हमें वह तेजस्विता और पराक्रम की अतिश
मिलती है जो आर्य आदर्श की विशेषता है। बुद्ध और गाँधी
शिक्षायें निवृत्तिमार्गी श्रमण धर्म के अनुकूल हैं। परन्तु आर्य
निवृत्ति और प्रवृत्ति, श्रेय और प्रेय, इहलोक और परल
अभ्युदय और निश्रेयस का समन्वय प्रस्तुत करता है। कृष्ण
इसी आदर्श को मानते थे और तदनुकूल ही आचरण करत
भूतकालीन आर्यों ने भी सदा इसी आदर्श का अनुकरण किया
वे न युद्ध लिप्सु थे और न युद्ध से भयभीत होने वाले। य
अनार्य रावण राम के समझाने पर भी अपने अनैतिक अ
दुराग्रह पूर्ण हठ को नहीं छोड़ता है तो राम के पास भी उसके
भजन का उपाय है। यदि दुर्योधन गर्वोन्मत्त होकर कृष्ण
शान्ति-प्रस्ताव का उपहास करने का अहंकार रखता है तो उस
समक्ष अपने गौरवपूर्ण व्यक्तित्व का प्रदर्शन कर उसके अहंक
को चूर्ण करने की शक्ति भी कृष्ण में है। विश्व विजय का स
देखने वाले महावीर सिकन्दर की भारत विजय की आकांक्षा
ध्वस्त कर देने वाले चन्द्रगुप्त जैसे क्षमतावान् पुरुष भी इसी आ
संस्कृति ने उत्पन्न किये हैं। परन्तु यह शिक्षा व्यास और वसि
चाणक्य और दयानन्द की है, बुद्ध और ईसा की नहीं। श्रम
आदर्श इन आर्य आदर्श के सामने तुच्छ है, नगण्य है। इ
आदर्श को प्राप्त करने के लिये मनुष्य को अपनी सम्पूर्ण शक्ति

में सामञ्जस्य स्थापित करना पड़ता है। श्रमण आदर्श एकांगी होने से अपूर्ण है, ब्राह्मण आदर्श सर्वांगीण होने से सम्पूर्ण है। इसी लिये बंकिम ने लिखा है-"कृष्ण का झुकाव लड़ाई की ओर नहीं था, पर धर्मार्थ युद्ध के लिये वे सदा तैयार रहते थे। युद्ध में वे सदा जयी होते थे। ईसा अशिक्षित पर कृष्ण सब शास्त्रों के ज्ञाता थे। इसीलिये कृष्ण ही वास्तविक आदर्श मनुष्य थे। ईसाई आदर्श से हिन्दू आदर्श श्रेष्ठ है।"* "परन्तु दुख है कि हिन्दू इस आदर्श को भूल गये। जयदेव के कृष्ण की नकल करने में सब लग गये, महाभारत के कृष्ण को कोई याद भी नहीं करता।"† अस्तु।

इस प्रसंगान्तर को यहीं समाप्त कर हम प्रकृत विषय पर आते हैं। कृष्ण ने जरासंध से पूछा कि वह तीनों में से किससे द्वन्द्व युद्ध करने की इच्छा रखता है। जरासंध ने उत्तर में भीम से लड़ने की इच्छा प्रकट की। उसने ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराया और क्षत्रिय धर्म के अनुसार अपने कवच किरीट आदि उतार कर भीम से भिड़ गया।‡ दोनों वीरों का यह द्वन्द्वयुद्ध १४ दिन तक चला। चौदहवें दिन जरासंध को थका हुआ जानकर वासुदेव ने भीम से कहा कि युद्ध में थके हुये शत्रु को पीड़ा पहुँचाना उचित नहीं। पूर्ण रूप से पीड़ित होने से वह अपना जीवन छोड़ सकता है, इसीलिये तुम तुल्य भाव से लड़ो।"ꕥ कृष्ण की धार्मिक प्रवृत्ति

* कृष्ण चरित्र पृ० ३१४

† कृष्ण चरित्र पृ० ३१५

‡ सभापर्व अ० २३

ꕥ वही

की यह पराकाष्ठा है। वे थके हुये शत्रु को भी अधिक त्रास देना नहीं चाहते थे।

अंत में, जरासंध, भीमसेन के हाथों मारा गया। कृष्ण और अर्जुन ने बंदी राजाओं को मुक्त किया। जरासंध वध में श्रीकृष्ण का उद्देश्य भी यही था। राजाओं ने अपने मुक्तिदाता श्रीकृष्ण की अत्यन्त विनयपूर्वक स्तुति की और स्वस्थान को चले गये। कृष्ण ने जरासंध के पुत्र सहदेव को राजसिंहासन पर बिठाया और उसे सान्त्वना प्रदान की। कृष्ण का उद्देश्य पूर्ण हुआ, वे अत्याचारी राजाओं के भार से धरित्री को मुक्त करना चहते थे। उन्हें स्वयं तो राज्य, ऐश्वर्य या धन सम्पत्ति की आकांक्षा तिल मात्र भी नहीं थी, इसीलिये उन्होंने जरासंध का स्थानापन्न उसके पुत्र को ही बनाया तो इसमें आश्चर्य ही क्या? मुक्त हुये राजाओं से भी उन्होंने युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में सहायता करने को कहा। युधिष्ठिर की प्रधानता में धर्म राज्य संस्थापन ही कृष्ण के जीवन का प्रधान स्वप्न था।

२५. राजसूय यज्ञ और शिशुपाल वध

जरासंध का पराभव हो जाने के पश्चात् समस्त देशों के नरेशों ने युधिष्ठिर को चक्रवर्ती सम्राट् स्वीकार कर लिया। अब राजसूय यज्ञ की तैयारी होने लगी। सब व्यक्तियों को पृथक् २ कार्य बांट दिये गये। महाभारत में आता है कि भोजन व्यवस्था का भार दुःशासन को दिया गया, राजाओं के सत्कार का कार्य संजय ने लिया, देख रेख के लिये भीष्म और द्रोणाचार्य

नियुक्त हुये। स्वर्ण रत्नों आदि की रक्षा और दक्षिणा देने का कार्य कृपाचार्य को दिया गया। व्यय का भार विदुर को सौंपा गया।* परन्तु कृष्ण ने ब्राह्मणों के पांव धोने का कार्य अपने हाथ में लिया। आर्यावर्त के श्रेष्ठतम पुरुष के लिये यह कार्य उसकी महान नम्रता और विनय भावना का सूचक है। कृष्ण के हृदय में ज्ञान और तप के भण्डार विप्रवरों के प्रति कितना आदर था, यह इस बात से भली भांति प्रकट है।

शिशुपाल वध—

कृष्ण के जीवन चरित्र की आलोचना के प्रसंग में शिशुपाल वध का प्रकरण बड़ा ही महत्वपूर्ण है। श्रीकृष्ण की अग्रपूजा का विरोध करते समय शिशुपाल ने कृष्ण के शैशव एवं बाल्यकाल की अनेक घटनाओं का वर्णन किया है, जिनका ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा मूल्य है। इसी प्रसंग में भीष्म के मुंह से उन पर ईश्वरत्व का आरोप भी किया गया है, अतः इस प्रसंग पर अत्यन्त सावधानी और गम्भीरता पूर्वक विचार करना आवश्यक है।

बंकिम बाबू ने शिशुपाल वध पर्वाध्याय को मौलिक महाभारत का अंश माना है,† परन्तु उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि इसमें दो तरह की लिखावट है। इसका स्थूल भाग मौलिक है, पर दूसरी तरह के कवियों ने इसमें नवीन भाग भी पर्याप्त मात्रा में मिला दिया है। कृष्ण पर ईश्वरत्व का आरोप इन्हीं कवियों का कर्म है।

शिशुपालवध की कथा संक्षेप में इस प्रकार है। राजसूय यज्ञ प्रारम्भ होने पर भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा कि उपस्थित राजाओं में

* सभापर्व अ० २५

† कृष्ण चरित पृ० ३२६

जो सबसे श्रेष्ठ है, उसे ही पहले अर्घ्य देना चाहिये। युधिष्टिर ने बदले में पितामह से ही यह पूछा कि ऐसा व्यक्ति कौन है जो पहले अर्घ्य पाने का पात्र है ? इस पर भीष्म ने कहा, "जैसे सब ज्योतिमालाओं में आदित्य सबसे प्रकाशमान है वैसे ही इन राजाओं में श्रीकृष्ण तेज, बल, पराक्रम से अति प्रकाशित दीख पड़ते हैं। अतः वे ही अर्घ्य के उपयुक्त पात्र हैं।" भीष्म की सम्मति के अनुसार ही आज्ञा पाकर सहदेव ने कृष्ण को अर्घ्य प्रदान किया।

कृष्ण का यह सम्मान चेदिराज शिशुपाल से नहीं देखा गया। वह प्रारम्भ से ही कृष्ण का विरोधी था, कृष्ण का धर्म संस्थापन का महत्वपूर्ण कार्य उसे फूटी आंख भी नहीं सुहाता था। रुक्मिणी हरण की घटना से तो वह और भी खिन्न था और किसी न किसी तरह कृष्ण से बदला लेने की बात सोच रहा था। उसने पाण्डवों, भीष्म पितामह और कृष्ण को बहुत बुरा भला कहा और विशेष-रूप से कृष्ण की निंदा करते हुये उसे अग्रपूजा का अनधिकारी ठहराया।

शिशुपाल ने कहा, "कृष्ण पूजा का पात्र कदापि नहीं है। कृष्ण को यदि वृद्ध जान कर उसकी पूजा की हो तो उसके पिता वसुदेव के विद्यमान रहते उसका पुत्र क्यों कर पूजनीय हुआ ?* यदि उसे अपना प्रिय और शुभेच्छु समझ कर पूजा तो द्रुपद के रहते माधव की पूजा क्यों की गई ? यदि कृष्ण को आचार्य† समझ कर पूजा है तो द्रोणाचार्य के रहते उसको पूजना उचित नहीं। अथवा उसे ऋत्विक्‡ मान कर पूजा हो तो कृष्ण द्वैपायन के रहते तुमने उसकी

* सभापर्व अ० ३६

† इससे ज्ञात होता है कि कृष्ण उच्च कोटि के शस्त्राचार्य थे।

‡ यह उनकी वेदज्ञता का परिचायक है।

पूजा क्यों की ?* इसी प्रकार शिशुपाल ने भीष्म, अश्वत्थामा, दुर्योधन, कृपाचार्य, कर्ण आदि उपस्थित पुरुषों को कृष्ण से कहीं अधिक श्रेष्ठ बताया और उनकी विद्यमानता में कृष्ण को पूजना— जो उसकी दृष्टि में न ऋत्विक् है, न आचार्य है और न राजा, अनुचित बताया। उसके कथनानुसार युधिष्ठिर ने कृष्ण को अर्घ्य देकर तमाम उपस्थित राजाओं का अपमान किया है।

शिशुपाल ने युधिष्ठिर से यह भी कहा कि हमने भय, लोभ, व्यादस के लिये तुम्हें कर दिया हो ऐसा नहीं, परन्तु तुम धर्म में प्रवृत्त होकर साम्राज्य की कामना कर रहे हो, इसीलिये हमने तुम्हें कर दिया है और अपना सम्राट् स्वीकार किया है। परन्तु तुमने हमारा अपमान किया है। कृष्ण से उसने कहा, कि युधिष्ठिर चाहे भीत और कृपण बनें परन्तु तुम्हें तो अपनी अर्घ्य लेने की योग्यता पर विचार करना चाहिये था। बंकिम ने शिशुपाल की इस वक्तृता का बड़ा मनोरञ्जक वर्णन किया है। वे कहते हैं— "यह व्याख्यान यदि विलायत की पार्लमेन्ट में होता तो उसकी जैसी चाहिये वैसी कदर होती ······शिशुपाल बोलते २ वक्ताओं की तरह जोश में आगया। फिर तर्क छोड़कर अलंकार में आ गया, विचार छोड़कर गालियाँ देने लगा।"† उसने कृष्ण को एकान्त में घृत की धार चाटने वाला कुत्ता और विवाहित नपुंसक‡ भी कहा और अन्त में यह कह कर अपने मित्र राजाओं के साथ

सभाभवन को त्याग कर चला गया कि आज राजा युधिष्ठिर और भीष्म सभी के गुणों और अवगुणों का पता चल गया।

क्षमा के मूर्तिमान अवतार, परमस्थितप्रज्ञ, योगिराज कृष्ण शिशुपाल की इन कटूक्तियों को सुन कर भी कुछ नहीं बोले। यदि वे चाहते तो उसका कचूमर वहीं निकाल देते, इतना बल उनमें था, परन्तु वे अत्यन्त धैर्यपूर्वक उसकी बातें सुनते रहे। युधिष्ठिर ने जैसा कि उसका कर्तव्य था, शिशुपाल को समझा बुझा कर शान्त करना चाहा। भीष्म को यह खुशामद अच्छी नहीं लगी। वह कहने लगे, "श्रीकृष्ण की पूजा जिसे प्रिय नहीं लगी, ऐसे जन की विनय करना या उसे समझाना उचित नहीं।"* इसके पश्चात् भीष्म ने कृष्ण की पूजा के यथार्थ पात्र होने की पुष्टि में प्रमाण देने प्रारम्भ किये। उनके वाक्यों में दो प्रकार के भाव मिलते हैं। कुछ से तो यह प्रकट होता है कि कृष्ण में मानवोचित गुणों की पराकाष्ठा है अतः वे अग्रपूजा के उचित अधिकारी हैं। कुछ वाक्य ऐसे भी हैं जिनसे कृष्ण के ईश्वर होने का संकेत मिलता है। यहाँ नमूने के लिये दोनों प्रकार के वाक्य लिखे जाते हैं। "इस राज समाज में एक भी राजा ऐसा दिखाई नहीं देता जो यदुनन्दन के तेज से परास्त न हुआ हो।" यह वाक्य कृष्ण को मनुष्य मानकर कहा गया है। अब अवतारी दृष्टि कोण सुनिये—"यह महाभुज अच्युत हमारे ही पूजनीय नहीं हैं, वह त्रिलोक भर के पूजनीय हैं।"

भीष्म ने पुनः कहा, "मैंने बहुतेरे ज्ञानवृद्धों की उपासना की है, उनसे मैं श्री कृष्ण के साधु सम्मत अनन्त गुण वृत्तान्त सुन चुका हूँ। इन श्रीमान् महापुरुष ने जन्म से जो २ कर्म किये हैं, उन सबकी कथा भी हमने सुनी है। यह मत समझना कि हम केवल

* सभापर्व अ० ३८

स्वेच्छा से या सम्बन्ध से ही कृष्ण को पूजते हैं, अपितु इनका यश, शूरता और जय का वृत्तान्त जान कर ही हम इनकी पूजा करते हैं। कृष्ण के पूज्य होने में दो कारण हैं—वेद वेदांगों का उन्हें सम्पूर्ण रीति से ज्ञान है और बल में भी वे अधिक हैं। मनुष्य लोक में केशव से अधिक गुणी और कौन होगा ? दान, दाक्षिण्य, शास्त्रज्ञान, शूरता, लज्जा, कीर्ति, अच्छी बुद्धि, विनय, श्री, धृति, तुष्टि, ये सब गुण कृष्ण में प्रतिष्ठित हैं। अत: आचार्य, पिता, गुरु, ऋत्विक् स्नातक और राजा के समान होने से कृष्ण हमारे सदा पूज्य हैं।"*

आगे दैवत्ववाद ने जोर मारा और भीष्म कहने लगे, "कृष्ण ही सब लोकों के पैदा करने और लय करने में कारण हैं। ये ही अव्यक्त प्रकृति, सनातन कर्ता और सर्वभूतों से अतीत हैं।" इस प्रकार भीष्म के कथन में मानववाद और दैवत्वाद का एक विचित्र मिश्रण सा है। हम पूर्व आधारित नियम के अनुसार कृष्ण के स्वाभाविक मानवोचित रूप को स्वीकार करने और उनके अलौकिक रूप को छोड़ने के लिये बाध्य हैं। भीष्म के कथन का मुख्य अभिप्राय यही था कि पराक्रम और पाण्डित्य में सर्वोपरि होने के कारण ही कृष्ण पूजनीय हैं। अन्त में उन्होंने शिशुपाल से यह भी कहा कि यदि तुम्हें कृष्ण की पूजा अनुचित लगती हो तो जो तुम्हारी इच्छा हो सो करो।*

भीष्म के शान्त होने पर सहदेव ने उठकर कृष्ण की पूजा की, जिसे देखकर शिशुपाल के क्रोध का पारावार नहीं रहा। उसने कृष्ण और पाण्डवों से युद्ध करने के लिये उपस्थित राजाओं को उत्तेजित किया और उन्हें यज्ञ में बाधा डालने के लिये भी

* सभापर्व अ० ३८

उत्साहित किया। उसके इस अभिप्राय को कृष्ण ने जान लिया और ये समझ गये कि ये उपद्रवी राजा लोग उस समय युद्ध के लिये तैयार हैं।* युधिष्ठिर को इससे बड़ी चिंता हुई कि कहीं शिशुपाल राजसूय यज्ञ में कोई विघ्न न डाल दे। भीष्म ने उसको घबराहट को दूर करते हुये उसे साहस बंधाया और कहा कि शिशुपाल स्वयं ही थोड़ी देर में अपने दुष्कर्मों के कारण कृष्ण के]थों से मारा जायगा।†

अब शिशुपाल ने कृष्ण और भीष्म को गालियाँ देना प्रारम्भ किया। इस बार की गालियाँ अधिक तीखी थीं। इसी प्रसंग में शिशुपाल ने कृष्ण के बाल्यकाल की उन घटनाओं की ओर भी संकेत केया, जिनका पुराणों में अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन मिलता है और ृष्ण के प्रारम्भिक जीवन की आलोचना करते समय हम जिनको रमीक्षा कर चुके हैं। परन्तु एक बात यहाँ स्पष्ट नहीं है। शिशुपाल कहता है-"कृष्ण का पूतनावध आदि कर्म विशेष रूप से कह कर मते हमें बड़ी व्यथा पहुंचाई है।" अथवा "तुम्हारी इस बात पर ह पहाड़ की चोटी पर खेलते हुये इसने बहुत अन्न खाया था, ाने बड़ा आश्चर्य माना है" इत्यादि वाक्यों द्वारा कृष्ण के बचपन : चमत्कार पूर्ण कृत्यों की तुच्छता बताते हुये शिशुपाल का यह थन है कि ये घटनायें भीष्म द्वारा वर्णित की गई हैं। परन्तु ीष्म ने कहीं भी ऐसी बातें कही हों, यह हमें सभापर्व के राजसूय करण में नहीं मिलता। यदि भीष्म कृष्ण के बाल्यकाल के रता-पूर्ण कृत्यों का वर्णन कर कृष्ण के अलौकिक बल-पराक्रम सभासदों को प्रभावित करने का यत्न करते तो शिशुपाल का

* सभापर्व अ० ३९

† सभापर्व अ० ४०

यह कथन अवश्य उचित होता। हमारे इस कथन का समर्थन डा० भाण्डारकर के निम्न कथन से होता है—

In the Sabha Parva (chap. 41), Shishupal introducing Krishna alludes to his valorous deeds, such as the killing of Putana and others, which were done in the cow-settlement, and speaks of Bhishma's having praised them. But the praise bestowed on Krishna by Bhishma (chap. 38) does not contain a mention of these deeds. This passage therefore is interpolated." Vaishnavism, Shavism and Minor Religious Systems. P. 36.

अर्थात् सभापर्व के ४१ वें अध्याय में शिशुपाल कृष्ण के पूतनावध आदि वीरता पूर्ण कार्यों का बखान करता हुआ कहता है कि भीष्म ने इन कृत्यों का वर्णन किया है। परन्तु ३८वें अध्याय में जहाँ भीष्म ने कृष्ण की प्रशंसा की है, वहाँ इनका कोई उल्लेख नहीं है। अतः यह श्लोक प्रक्षिप्त हैं।

अथवा शिशुपाल कृष्ण की लोक प्रसिद्ध घटनाओं का ही उल्लेख कर उनकी कदर्यता और अपदार्थता प्रमाणित करना चाहता था। जो कुछ हो, इसमें संदेह नहीं कि शिशुपाल की कटूक्तियों को सुन कर अत्यन्त धैर्यशाली पुरुष का भी धैर्य नष्ट हो जाता। परन्तु शान्त-मूर्ति, अद्भुत क्षमाशील कृष्ण की निर्लेपता और तटस्थता दर्शनीय है। उन्होंने अपना घोर अपमान होने पर भी भ्रूसकोच नहीं किया और अवसर की प्रतीक्षा करते रहे जब कि वे शिशुपाल को मार कर उसकी धृष्टता और उद्दण्डता का पूरा मजा चखा सकें।

शिशुपाल ने भीष्म को बुरा भला कहने में कोई कसर नहीं

रक्खी। उनके ब्रह्मचर्य पर विशेष रूप से कटाक्ष किया और कहा कि तुम्हारा ब्रह्मचर्य व्यर्थ है–या तो यह भ्रम है, नहीं तो नपुंसक होने के कारण ही तुमने इसे धारण किया है। पुत्र के अभाव में सारी देवपूजा, दान, पठन, यज्ञ आदि शुभ कर्म अधूरे हैं और तुम पुत्र के अभाव में ही वृद्ध हो गये, अतः तुम्हारा धर्म २ चिल्लाना झूठा है।* कृष्ण ने जरासंध के साथ मिलने पर ब्राह्मण का वेश धारण किया था, उसका भी उल्लेख शिशुपाल ने किया क्योंकि दोनों व्यक्ति एक ही गुट के थे। इस प्रकार शिशुपाल की अनीति और अशिष्टता अपनी चरम सीमा को पहुंच गई।

शिशुपाल की इन निर्लज्जतापूर्ण और मिथ्या बातों से क्षुब्ध होकर भीमसेन उसे मारने के लिए झपटा, परन्तु भीष्म ने उसका निवारण किया और शिशुपाल के जन्म की एक अलौकिक कथा सुनाने लगे। उस कथा का अनपेक्षित वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है। सभापर्व के ४३ वें अध्याय में इस कथा का वर्णन है। इसका भाव यह है कि जिस समय शिशुपाल पैदा हुआ था, उस समय उसके तीन नेत्र और चार भुजायें थीं। इस विकृतांग बालक को जब उसके माता पिता त्यागने के लिये तैयार हुए तो भविष्य-वाणी हुई कि जिसकी गोद में जाने से इसकी फालतू आंखें और भुजायें गिर पड़ेंगी, वही इसका मारने वाला होगा। सौभाग्य कहिये या दुर्भाग्य, श्रीकृष्ण के गोद में लेते ही शिशुपाल के दोनों हाथ और एक नेत्र अदृश्य हो गये। अब कृष्ण की मौसी, जो शिशुपाल की माता थी, उसने अपने पुत्र के प्राणों की याचना कृष्ण से की। इस पर श्रीकृष्ण ने अपनी मौसी को कहा कि मैं इसके वध योग्य १०० अपराध तक तो क्षमा कर दूंगा,† परन्तु

* सभापर्व अ० ४१

† सभापर्व अ० ४३

इसके उपरान्त भी अपराध करने पर उसका वध अवश्यम्भावी हो जायगा। यह कथा सुना कर भीष्म ने वृकोदर को निश्चय कराया कि शिशुपाल का कृष्ण के हाथों द्वारा मारा जाना दैव द्वारा सुनिश्चित है।

यह कथा स्पष्ट ही ऐतिहासिक सत्यता से शून्य है। जो व्यक्ति कृष्ण की अद्भुत क्षमाशीलता के गुण से अपरिचित हैं, उनको चमत्कृत करने के लिये यह क़िस्सा गढ़ा गया है। परन्तु कृष्ण का जन्म तो आदर्श संस्थापन के लिये हुआ था। उनके समस्त कार्य निष्काम भाव से, व्यक्तिगत हिताहित से शून्य लोकोपकार की भावना को लेकर होते थे। यों शिशुपाल ने कृष्ण के अनेक व्यक्तिगत अनिष्ट किये थे-उदाहरणार्थ, उनकी अनुपस्थिति में द्वारिका नगरी को जला डाला, राजा भोज के अनुचरों को मार डाला और उनके पिता वसुदेव के अश्वमेध का घोड़ा छिपा लिया,* परन्तु कृष्ण ने इन व्यक्तिगत कारणों का विचार नहीं किया। अब जब कि वह कृष्ण के प्रमुख उद्देश्य (mission) धर्म राज संस्थापन में बाधक बनकर युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में विघ्न पहुंचाने के लिये उद्यत है तो यह बात कृष्ण को कदापि सह्य नहीं हो सकती।

शिशुपाल और भीष्म में फिर झगड़ा हो गया। शिशुपाल ने यहाँ तक कह दिया कि यह भीष्म तो इन राजाओं की दया पर ही जीता है अन्यथा कभी का मारा जाता। भीष्म यह सुन कर आग बबूला हो गये और उन्होंने राजाओं के तिरस्कार में कुछ शब्द कहे जिनका यह अभिप्राय था कि मैं इन राजाओं को तिनके भर भी नहीं गिनता। इस पर उपस्थित राजा लोग अत्यन्त क्रुद्ध हुये और भीष्म को मारने के लिये तैयार हो गये। भीष्म ने

* सभापर्व अ० ४५

अपने ऊपर आई बला को कृष्ण के ऊपर छोड़ दिया और यह कह कर दूर हो गये कि हमने महान् बलशाली श्रीकृष्ण की पूजा की है, अतः जिसे लड़ने की इच्छा हो वह कृष्ण से लड़कर पूरी कर ले।*

अब शिशुपाल से नहीं रहा गया। उसने चिल्ला कर कृष्ण से अपने समक्ष आने के लिये कहा। श्रीकृष्ण के लिये अब कोई रास्ता बाकी नहीं रहा। उन्होंने जरासंध की तरह शिशुपाल को भी मृत्यु मुख से बचाने का भरसक प्रयत्न किया परन्तु अब युद्ध के लिये उसकी ललकार को सुनकर उनका क्षत्रियत्व चुप नहीं रह सका। उन्होंने सारी राजसभा में शिशुपाल के कुकृत्यों का खोल कर वर्णन किया और यह भी कह दिया कि अब तक तो मैं इसके अपराधों की अवज्ञा करता रहा, परन्तु अब इसकी नीचता को सहन करना असम्भव है।

इसके पश्चात् महाभारत में एक अलौकिक घटना का वर्णन आता है। वह है-कृष्ण द्वारा सुदर्शन चक्र का स्मरण, चक्र के द्वारा शिशुपाल का वध और उसके तेज का कृष्ण के मुख में विलीन हो जाना। इस घटना को अस्वाभाविक समझ कर छोड़ने के लिये हम बाध्य हैं। बंकिम भी इस घटना को सत्य नहीं मानते।† उन्होंने उद्योगपर्व में उल्लिखित धृतराष्ट्र के वचनों से यह प्रमाणित कर दिया है‡ कि शिशुपाल वध की इस कथा में सत्यता नहीं है। वास्तव में कृष्ण ने युद्ध में ही शिशुपाल को मारा क्योंकि जब वह यज्ञ में विघ्न डालने के लिये कृतसंकल्प हो गया, तो उसका वध

---

* सभापर्व अ० ४४

† कृष्ण चरित्र पृ० ३४०

‡ वही पृ० ३४१

करना भी अनिवार्य हो गया था। यज्ञ की रक्षा का कार्य श्रीकृष्ण के ही सुपुर्द था। यदि यज्ञ में विघ्न पड़ता तो उनकी निंदा होती, अतः यद्यपि वे यथाशक्य युद्ध से बच रहना चाहते थे, परन्तु फिर भी उन्हें यह अप्रिय कार्य करना पड़ा। कर्तव्य-पालन का अवसर आ जाने पर कृष्ण बड़े निर्मम हो जाया करते थे, वहाँ वे न किसी का लिहाज करते और न किसी को क्षमा। उन्होंने अपराध होने पर अपने मामा कंस को भी क्षमा नहीं किया, और अब यही गति मौसेरे भाई शिशुपाल की हुई।

जैसे तैसे राजसूय यज्ञ समाप्त हुआ। इसके पश्चात् कृष्ण द्वारिका चले गये। इसके अनन्तर सभापर्व में उनका कहीं उल्लेख नहीं है।

सभापर्व में एक अन्य स्थान पर कृष्ण का उल्लेख हुआ है, जहाँ द्रौपदी के वस्त्राकर्षण का प्रसंग है। इस प्रसंग का महाभारत का मूल वाक्य हम गोपी प्रसग में उद्धृत कर आये हैं। जिस समय हस्तिनापुर में यह घटना घटी, उस समय कृष्ण द्वारिका में निवास करते थे, अतः उनका द्रौपदी की सहायता को आना किसी प्रकार भी सम्भव नहीं था। वे युधिष्ठिर के द्यूत के लिये उद्यत होने और उसमें सर्वस्व गंवा बैठने की घटना से भी अनभिज्ञ थे। यदि वे उपस्थित होते तो युधिष्ठिर को ऐसे अधर्मपूर्ण कृत्य में कभी प्रवृत्त न होने देते। जब उन्हें पाण्डवों के द्यूत में पराजित होने और वनवासी होने के समाचार ज्ञात हुये तो उन्हें आश्चर्य और खेद दोनों ही हुये, क्योंकि वे घटनास्थल पर उपस्थित नहीं थे और उनकी अनुपस्थिति में यह दुःखद घटना हो गई। ऐसी स्थिति में उनके द्वारा द्रौपदी की साड़ी बढ़ाने के विषय में जो अलीक कल्पना लोगों में प्रचलित है, हम उसे मिथ्या ही समझते हैं। भक्तों ने भगवान् के महत्व और उसकी भक्तवत्सलता का दृष्टान्त उपस्थित करने के लिये ऐसी घटनाओं की रचना की है, वास्तव में उनमें

ऐतिहासिक तथ्य कुछ भी नहीं है। भयंकर विपत्ति पड़ने पर मनुष्य का मस्तिष्क ठिकाने पर नहीं रहता, ऐसी दशा में यदि द्रौपदी ने कृष्ण को सहायता के लिये पुकारा हो तो कोई आश्चर्य नहीं, परन्तु वे उस समय द्वारिका में थे, इसलिये बंकिमचन्द्र का कथन उपन्यास कल्पना ही है।

वनपर्व में जहाँ कृष्ण का उल्लेख हुआ है वहाँ उनके साथ किसी महत्व पूर्ण घटना का सम्बन्ध नहीं है। एक प्रसंग आता है- शाल्व वध। शाल्व के पास एक ऐसा विमान था, जिसमें जीवन की सब सुख सुविधायें तो थीं ही, साथ ही जिसके द्वारा युद्ध भी किया जा सकता था। महाभारत में इसे आकाश-चारी सौभ नगर कहा है। उसने कृष्ण की अनुपस्थिति में द्वारिका पर आक्रमण किया। जब कृष्ण को यह समाचार मिला कि शाल्व ने द्वारिका पर आक्रमण किया है तो वे तुरन्त उसकी रक्षा करने के लिये उपस्थित हो गये। घोर युद्ध के पश्चात् शाल्व मारा गया और द्वारिका विजय की उसकी कामना अपूर्ण ही रह गई। इस कथा में अद्भुत रस का बाहुल्य है, अतः बंकिम के मतानुसार यह घटना महाभारत की मौलिक तह के अन्तर्गत नहीं आती। पं० चमूपति जी ने इसे प्रामाणिक मान कर उसका एक पृथक अध्याय में वर्णन किया है। विराट पर्व में भी कृष्ण का उल्लेख नहीं है। अतः अब उद्योग पर्व के आधार पर कृष्ण चरित्र का विश्लेषण आरम्भ किया जाता है।

◆◆

२६. संधि का उद्योग

शकुनि और दुर्योधन के कपटपूर्ण द्यूत से छले जाकर पाण्डव वनवासी हुये और १२ वर्ष वनवास में व्यतीत करने के पश्चात् उन्होंने १ वर्ष राजा विराट के यहाँ अज्ञातवास के रूप में व्यतीत किया। जब यह वर्ष भी समाप्त हुआ तो पुनः राज्य प्राप्ति के लिये मंत्रणा होने लगी। राजा विराट के सभा भवन में पाण्डवों और उनके हितचिंतकों की एक सभा प्रात.काल के समय हुई। उसमें विराट, द्रुपद, श्रीकृष्ण, कृतवर्मा, बलदेव, युधिष्ठिर आदि पांचों पाण्डव और सात्यकि तथा अभिमन्यु आदि उपस्थित थे। सभा के कार्य को प्रारम्भ करते हुये श्रीकृष्ण ने अपनी वक्तृता दी। उन्होंने विगत परिस्थितियों का सिंहावलोकन करते हुये बताया कि पाण्डव लोग शकुनि के जुए में हार गये और उन्होंने १२ वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार पूरा किया है। अब नियमानुसार वे पुनः अपने राज्य को प्राप्त करने के अधिकारी हैं। परन्तु दुर्योधन के राज्य लौटाने की सम्भावना बहुत कम है। अतः कोई ऐसा मार्ग निकालना चाहिए, जिस से दुर्योधन की भी हानि न हो और पाण्डवों का भी धर्म और यश बढ़े। कृष्ण ने राज्य-प्राप्ति के लिये छल, कपट या युद्ध का सहारा लेने का परामर्श नहीं दिया। इसके विपरीत उन्होंने तो स्पष्ट कहा कि धर्मराज अधर्म से इन्द्र के राज्य की भी इच्छा नहीं करते और धर्म से एक गाँव का स्वामी होना भी अच्छा समझते हैं।

कृष्ण के कथन का यह तात्पर्य नहीं था कि पाण्डव अपने अधिकार को छोड़ कर संन्यासी की नाईं सर्व संग परित्यागी परिव्राट् बन जायें। उनका उद्देश्य धर्ममूलक प्रवृत्तिमार्ग से लोगों

को हटाना नहीं था। वे तो प्रवृत्ति और निवृत्ति के उचित सामञ्जस्य और समन्वय के पक्षपाती थे। अन्त में सबकी सम्मति मांगते हुये कृष्ण ने अपनी सम्मति के अनुसार एक पवित्र, धर्मात्मा, कुलीन और पंडित को दूत के रूप में दुर्योधन के पास भेजने का प्रस्ताव रक्खा जो युधिष्ठिर के दृष्टिकोण को राजा के समक्ष रख सके।"*

श्रीकृष्ण की वक्तृता के समाप्त होने पर बलदेव ने भी उनके कथन का समर्थन किया और दूत के विषय में अपना क्रियात्मक सुझाव दिया।† यादव वीर सात्यकि को यह संधि प्रस्ताव नहीं भाया। यह ध्यान देने की बात है कि सात्यकि को कृष्ण के प्रस्ताव का विरोध करने का तो साहस नहीं हुआ, परन्तु बलदेव के समर्थन से उसका पारा चढ़ गया। उसने बलदेव को कायर तक कहा और बल पूर्वक कौरवों को परास्त करने और पाण्डवों को राज्य प्राप्त कराने का प्रस्ताव उपस्थित किया।‡ द्रुपद ने सात्यकि का अनुमोदन किया और मित्रराजाओं की सहायता के लिये दूत भेजने का विचार रक्खा।§

अब श्रीकृष्ण पुनः बोले, "महाराज द्रुपद ने जो कुछ कहा है, वह उचित ही है और ऐसा करने से ही महातेजस्वी महाराज युधिष्ठिर का कार्य सिद्ध होगा। परन्तु हम लोगों का (अर्थात् यादवों का) पाण्डवों और कौरवों से समान सम्बन्ध है, अतः हम एक पक्ष का अवलम्बन कर कोई काम करना नहीं चाहते।

---

* उद्योग पर्व अ० १

† वही अ० २

‡ उद्योग पर्व अ० ३

§ वही अ० ४

दूसरी बात यह है कि इस समय हम अभिमन्यु के विवाह में आमंत्रित होकर आये हैं। अब विवाह समाप्त हो गया है, अतः हम अपने घर की ओर प्रस्थान करते हैं। आप सब लोग वृद्ध और नीति कुशल हैं इसलिये आप ही इस कार्य को हाथ में लीजिये और पाण्डवों की ओर से एक दूत भेजिये।" यह कह कर और महाराज विराट से मिल कर कृष्णजी विदा हो गये।*

कृष्ण के इस कथन से यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि वे युद्ध के पक्ष में नहीं थे। समस्या को हल करने का यह अन्तिम उपाय अवश्य हो सकता है, यह उनकी धारणा थी। युधिष्ठिर को आधा राज्य स्वीकार करा कर भी वे युद्ध को रोकना चाहते थे। कौरव पाण्डवों के साथ उनका समान सम्बन्ध था, यह वे स्वयं कह चुके थे। ऐसी परिस्थिति में उन्हें युद्ध लोलुप और पाण्डवों की ओर से कुचक्र रचने वाला कहना सरासर अन्याय है।

कृष्ण के द्वारिका चले जाने के पश्चात् दोनों पक्ष युद्ध के लिये तैयारियाँ करने लगे। कृष्ण को निमंत्रित करने के लिये पाण्डवों की ओर से अर्जुन और कौरवों की ओर से दुर्योधन एक समय पर ही पहुँचे। उस समय कृष्णजी सोये हुये थे। अर्जुन उनके पैताने की ओर बैठ गया। दुर्योधन उससे पूर्व ही महाराज के सिरहाने की ओर बैठा था। नींद खुलते ही महाराज की दृष्टि अर्जुन पर पड़ी और उन्होंने उससे आगमन का कारण पूछा। इधर दुर्योधन ने भी उन्हें प्रणाम किया। दोनों ने अपने २ आगमन का उद्देश्य बताया और उनसे स्वपक्ष में सम्मिलित होने की प्रार्थना की। दुर्योधन का आग्रह था कि कृष्ण उसी का पक्ष ग्रहण करें क्योंकि वही पहले आया था। अर्जुन का आग्रह अपनी ओर था। महाराज बड़े धर्म संकट में पड़े। परन्तु उन्हें एक मार्ग दिखाई दिया, जिससे

* उद्योग पर्व अ० ५

वे इस समस्या को सुलझा सकें। उन्होंने कहा कि मेरी दृष्टि सबसे पहले अर्जुन पर पड़ी है और दुर्योधन पहले आये हैं, अत मैं दोनों को तुल्य महत्व देता हूँ और दोनों की समानरूप से ही सहायता करूंगा। एक ओर मैं अकेला निशस्त्र रहूँगा और दूसरी ओर मेरी यादव सेना होगी। जिसे जो पसन्द हो, वह ले ले। अर्जुन ने यह सुन कर भी कि कृष्ण अकेले और वह भी निशस्त्र होकर रहेंगे, उनको ही स्वीकार किया। दुर्योधन के हर्ष का पारावार नहीं रहा जब उसने यह देखा कि पाण्डवों की ओर अकेले निहत्थे कृष्ण रहेंगे, उसने यादव सेना को स्वीकार करने में विलम्ब नहीं किया।*

यह कथा उद्योग पर्व के अन्तर्गत आती है, परन्तु यह निरी खिलवाड़ सी प्रतीत होती है। युद्ध जैसे गम्भीर कार्य में किसी पक्ष को ग्रहण करने का निश्चय करना इतना सरल नहीं होता, जितना कि इस कथा से प्रतीत होता है। वस्तुत: महाराज युद्ध से तटस्थ ही रहना चाहते थे इसलिए उन्होंने कौरव और पाण्डव दोनों पक्षों के आगे अपनी वैयक्तिक स्थिति स्पष्ट कर दी। उन्होंने लड़ना तो दूर, हथियार ग्रहण करना तक अस्वीकार कर दिया, हाँ, अर्जुन के सारथी वे अवश्य बने। कृष्ण का युद्ध के प्रति आग्रह नहीं था, यह इस बात से भी प्रकट होता है कि युद्ध छिड़ने की सम्भावना होने पर भी वे उससे पृथक् रहने का यत्न करते हैं। उन्होंने युद्ध रोकने की भरसक कोशिश की, परन्तु जब देखा कि युद्ध होना अवश्यम्भावी है तो उन्होंने उसमें क्रियात्मक रूप से भाग न लेने का निश्चय किया और अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहे। शान्ति के साक्षात् दूत कृष्ण को यदि लोग महाभारत युद्ध

* उद्योग पर्व अ० ७

का मूल और पाण्डव पक्ष का प्रधान कुचक्री कहें तो और आश्चर्य की बात क्या हो सकती है ?

कृष्ण ने शस्त्र न छूने की प्रतिज्ञा तो करली परन्तु अर्जुन की इस प्रार्थना को वे न टाल सके कि उसके सारथी का कार्य वे स्वयं करेंगे। क्षत्रियों के लिये सारथी का कार्य नीच समझा जाता था, परन्तु कृष्ण जैसे अहंकारशून्य, निःस्पृह व्यक्ति के लिये इसमें कोई निंदा की बात नहीं थी। उन्होंने अपने मित्र, शिष्य और सम्बन्धी अर्जुन की प्रार्थना को सादर स्वीकार किया।

द्रुपद के परामर्शानुसार महाराज युधिष्ठिर ने अपने पुरोहित को अपना दूत बना कर दुर्योधन के पास हस्तिनापुर भेजा। उसने धृतराष्ट्र के सम्मुख पाण्डवों के पक्ष को भली भांति प्रस्तुत किया।* भीष्म ने दूत की बातों को मानने का आग्रह किया, परन्तु कर्ण की कटूक्तियों से पितामह का संधि विषयक सुझाव दुर्योधन को सम्मत न हो सका। भीष्म ने भी कर्ण के सम्मुख अर्जुन के बल पराक्रम का वर्णन किया, जिससे वातावरण में और भी तनाव आ गया। अन्त में धृतराष्ट्र ने भीष्म को शान्त किया और सञ्जय को दूत बना कर पाण्डवों के समीप भेजना निश्चय किया।†

* उद्योग पर्व अ० २०

† वही अ० २१

२७. सञ्जय का दौत्य कर्म

धृतराष्ट्र की आज्ञा पाकर सञ्जय पाण्डवों के पास गये। परस्पर कुशल प्रश्न पूछने के अनन्तर कृष्ण, सात्यकि, विराट आदि महाजनों की उपस्थिति में सञ्जय ने धृतराष्ट्र का संदेश युधिष्ठिर को सुनाया।* धृतराष्ट्र के सदेश का भाव यह था कि जो कुछ हुआ सो हुआ, अब युद्ध नहीं होना चाहिये क्योंकि इससे दोनों पक्षों की हानि होगी और सर्वनाश निकट आ जायगा। सञ्जय के कथन का तात्पर्य यह था कि युद्ध घोर अधर्म का काम है, और उसमे धर्मराज जैसे महात्मा को कदापि लिप्त नहीं होना चाहिये।

सञ्जय के चुप होने पर युधिष्ठिर ने उत्तर में कहा† कि "हम युद्ध से शान्ति को सदा महत्व देते हैं और युद्ध की अनर्थकारिणी विभीषिका से भी परिचित हैं, परन्तु ससार में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो सुख की इच्छा न करता हो।" उन्होंने दुर्योधन के दोषों और धृतराष्ट्र के उसके प्रति अंध प्रेम का भी वर्णन किया और कहा कि यदि वास्तव में राजा धृतराष्ट्र संधि के लिये उत्सुक हैं तो वे इन्द्रप्रस्थ का राज्य हमें प्रदान करें और कौरवों का राज्य हस्तिनापुर में रहे।

इस पर सञ्जय पुन. उन्हें युद्ध से विरत करने के लिये समझाने लगा,‡ परन्तु युधिष्ठिर ने अत में कह दिया कि मैं अधर्म से पृथ्वी का और सब देवताओं का भी धन, प्रजापति का स्थान और ब्रह्म

---

* उद्योग पर्व अ० २५

† उद्योग पर्व अ० २६

‡ उद्योग पर्व अ० २७

का लोक भी लेना नहीं चाहता। उन्होंने सब बातें कृष्ण पर छोड़ते हुये कहा कि ये कृष्ण महाविद्वान् और कर्मों के निश्चय को जानने वाले हैं। ये जैसा कहेंगे वैसा ही हमें स्वीकार होगा।*

जब युधिष्ठिर ने महाराज को ही अपना अन्तिम भाग्य निर्णायक नियुक्त कर दिया तो अब उन्हें बोलना ही पड़ा। उन्होंने इस प्रसंग में सञ्जय को जो कुछ कहा उसमें उनके सम्पूर्ण आदर्शों और कृत्यों की बड़ी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।† उन्होंने पहले तो कहा कि हम पाण्डव और कौरव दोनों की ही अभिवृद्धि और कल्याण चाहते हैं। मेरी हार्दिक इच्छा यही है कि दोनों में संधि हो जाय। मेरा पाण्डवों को भी यही परामर्श है कि संधि करलो परन्तु दुर्योधन आदि का हठ और दुराग्रह देखते हुये ऐसा होना बहुत कठिन है। उन्होंने फिर कहा कि हम लोग और महाराज युधिष्ठिर धर्म पर स्थित हैं, फिर तुमने महाराज को अधर्मी क्यों कहा ?

तत्पश्चात् महाराज कर्म का महत्व बताने लगे और उसकी व्याख्या करने लगे। उन्होंने कहा कि संसार में कर्म ही प्रधान है। ज्ञान और कर्म का समन्वय ही प्राणियों को इष्ट है। बिना कर्म के विद्या फलवती नहीं होती। कर्म से ही सिद्धि प्राप्त होती है। तदन्तर उन्होंने कहा कि संसार के समस्त देवता कर्म के आधार पर ही बलवान् और प्रभुत्वशाली हुये हैं। उन्होंने चारों वर्णों के पृथक २ कर्मों को भी गिनाया और अन्त में कहा कि महाराज युधिष्ठिर तो सावधान होकर अपना धर्म पालन कर रहे हैं। परन्तु दुर्योधन ने ही उनका राज्य छीन कर धर्म का नाश किया है। दुर्योधन के इस कार्य की चोरों से तुलना करते हुये महाराज ने

* उद्योग पर्व अ० २८

† अ० ९

कहा कि हे सञ्जय, चाहे चोर बिना देखे धन चुरा ले या कोई दुष्ट देखते हुये छल से धन छीन ले, यह दोनों ही चोर कहलाते हैं। इसी नियम के अनुसार दुर्योधन का काम चोरों जैसा है। उन्होंने धृतराष्ट्र को यह संदेश दिया कि पाण्डवों को राज्य देना ही उत्तम है।

संजय युद्ध का निषेध बार बार धर्म के नाम पर कर रहा था। उसके इस पाषण्ड पूर्ण कथन का भण्डाफोड़ करने के लिये उन्होंने कौरवों के अधर्माचरण को प्रकट किया और कहा कि क्या कौरवों की सभा में रजस्वला पतिव्रता द्रौपदी को लाना ही धर्म था ? यदि धृतराष्ट्र अपने पुत्र दुःशासन का इस निंदनीय कर्म से रोकते तो अवश्य उनके इस कर्म की प्रशंसा होती, परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। द्रौपदी पर किये गये, इस घोर अत्याचार को हम कदापि क्षमा नहीं कर सकते। संजय, तुम्हें युधिष्ठिर को धर्मोपदेश देते हुये लज्जा नहीं आती ? कृष्ण ने कर्ण, दुःशासन, शकुनि, दुर्योधन, आदि सभी कौरवपक्ष के लोगों के दुष्कर्मों का नग्न चित्र खोल कर

कर्मयोग के नाम से विख्यात है, उसका बीज रूप से वर्णन इसी अध्याय में हुआ है। धर्म में उनकी दृढ़ निष्ठा, कर्तव्य के प्रति उनका निर्मम आग्रह, लोकोपकार और जन कल्याण के लिये उनका सर्वस्व त्याग आदि गुण उन के प्रत्येक शब्द से प्रकट होते हैं। यद्यपि कौरव एवं पाण्डवों के संधि या विग्रह में उनका वैयक्तिक स्वार्थ या लाभ किंचित मात्र भी नहीं था, परन्तु फिर भी वे संधि का प्रस्ताव लेकर हस्तिनापुर जाने के लिये तैयार हो जाते हैं। वे जानते थे कि यदि संधि हो गई तो उससे असंख्य लोगों की प्राणरक्षा होगी और राष्ट्र का कल्याण होगा। वे पाण्डवों का पक्ष स्वीकार कर चुके थे इसलिये इसमें संदेह था कि उनका संधि प्रस्ताव कौरव लोग सहानुभूति पूर्वक सुन भी लेंगे या नहीं परन्तु लोकहित को दृष्टि में रखते हुये महाराज ने इस दुष्कर कार्य को हाथ में ले ही लिया।

कृष्ण की यथार्थ बातें सुनकर संजय चुप हो गया और उसने प्रस्थान की आज्ञा मांगी। युधिष्ठिर ने यह कह उसे विदा किया, "हम लोग कभी वह काम नहीं करेंगे, जिससे दुर्योधन की हानि हो। अत यदि भला चाहते हो तो इन्द्रप्रस्थ का राज्य हमें दो, अथवा युद्ध के लिये तैयार हो जाओ।"* संजय को श्रीकृष्ण ने स्वयं कह दिया था कि एक बार और संधि का प्रयत्न करने के लिये हम हस्तिनापुर जायेंगे। उनके हस्तिनापुर प्रयाण और इस कथन के बीच में विदुर प्रजागर, सनत्सुजातीय और यान-संधि के प्रकरण हैं।

संजय के दौत्य कर्म का उपसंहार वहाँ होता है जब वह हस्तिनापुर लौट कर अपनी यात्रा का विस्तृत वर्णन धृतराष्ट्र आदि

* उद्योग पर्व अ० ३०

कौरवों के समक्ष रखता है और उस पर धृतराष्ट्र, दुर्योधन, भीष्म और कर्ण की लंबी २ वक्तृतायें होती हैं। इन अध्यायों में विशेष काम की बात कुछ भी नहीं है। केवल एक स्थान पर कृष्ण और अर्जुन को वारुणी सेवी और विलासी बताया है।* यह प्रकरण पूर्वोक्त प्रसग से सर्वथा असम्बद्ध होने के कारण प्रक्षिप्त है। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी सुराभक्त लेखक ने शराब की प्रशंसा में यह प्रकरण महाभारत में मिला दिया। वास्तव में कृष्ण के विषय में यह सोचा भी नहीं जा सकता कि वे वारुणी और परस्त्री संसर्ग जैसे महापातकों से स्पर्श भी करते होंगे। उनके जैसा संयमी और महात्मा उस युग में दुर्लभ था।

२८. हस्तिनापुर गमन की भूमिका

अपनी पूर्व कृत प्रतिज्ञा के अनुसार महाराज ने हस्तिनापुर जाकर कौरवों के समक्ष साधचर्चा करने का मत निश्चय किया। उन्होंने युधिष्ठिर से अपना अभिमत प्रकट करते हुये कहा, "मैं आपके प्रयोजन को सिद्ध करने के निमित्त कौरवों की सभा में जाऊंगा। वहाँ पर आपके अभिलषित विषय को स्थिर रख कर यदि शान्ति स्थापित कर सकूंगा तो मेरा महाफल से युक्त, बहुत बड़े पुण्य कर्म का अनुष्ठान सफल हो जायगा। संधि करने से कौरव, सृञ्जय, पाण्डव तथा धृतराष्ट्र के पुत्रों और समस्त पृथ्वी के राजाओं तथा मनुष्यों को मृत्यु के मुख से मुक्त करूंगा।"† इससे

* उद्योग पर्व० अ० ५९

† उद्योग पर्व अ० ७२

अधिक स्पष्ट कथन और क्या हो सकता है ? कृष्ण संधि कराकर मनुष्य जाति को मृत्यु के मुख से बचाना चाहते थे। इससे अधिक विडम्बना और क्या हो सकती है कि संधि के लिये इतना घोर श्रम प्रयत्न करने वाला व्यक्ति ही युद्ध का मूल कारण समझा जाय।

युधिष्ठिर को कृष्ण का हस्तिनापुर जाना उचित प्रतीत नहीं हुआ क्योंकि उसे भय था कि कहीं कौरव उनके प्रति कोई अशिष्टाचरण न कर बैठें। परन्तु कृष्ण को इस बात से कतई भय नहीं था। वे तो दुर्योधन की दुष्ट बुद्धि से परिचित ही थे। फिर किसी कौरव में इतनी शक्ति भी नहीं थी कि वह कृष्ण का कुछ अनिष्ट कर सके। इस अन्तिम संधि चर्चा को चला कर कृष्ण संसार को यह बता देना चाहते थे कि यदि युद्ध हुआ भी तो उसके उत्तरदायी कौरव ही समझे जायेंगे, उन्होंने तो युद्ध को रोकने के यथा सम्भव सभी उपाय कर लिये थे, अब उन्हें कोई दोष न दे। कृष्ण का यह दृढ़ आत्मविश्वास और आशावाद देख कर युधिष्ठिर ने उन्हे हस्तिनापुर जाने की सम्मति दे दी क्योंकि उन्हें इस बात पर भरोसा था कि वे जो कुछ करेंगे उनके हित की ही बात होगी।

कृष्ण के प्रयत्नों की ईमानदारी पर सभी पाण्डवों को दृढ़ विश्वास था, इसलिये भीम जैसा क्रोधी और उद्दण्ड स्वभाव का व्यक्ति भी कृष्ण के इन शान्ति प्रयत्नों की प्रशंसा करने लगा। उसने भी यही कहा कि जिस प्रकार से कौरव और पाण्डवों के बीच शान्ति स्थापित हो, तुम उसी प्रकार के प्रस्ताव रखना।"* भीम की यह बात सुन कर कृष्ण को एक बार तो बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्हें इस बात पर शंका भी हुई कि जिस भीम ने कौरवों का नाश करने की प्रतिज्ञा की है, वह आज शान्ति के

* उद्योगपर्व अ० ७४

लिये इतना उत्सुक क्यों हो रहा है ? भीम ने कृष्ण की इस शका का समाधान करते हुये स्पष्ट कह दिया कि मेरे कथन का यह अभिप्राय नहीं है कि मैं युद्ध से विमुख हो गया हूँ। मेरे इस कृपा मे युक्त होने का तात्पर्य और कुछ नहीं है, केवल सहृदयता का प्रकाश करना मात्र है, जिससे हम लोगों के वंश का नाश न हो।*

कृष्ण ने क्रमशः अर्जुन, नकुल, सहदेव और सात्यकि से भी परामर्श किया† और उनके संधि विषयक विचारों से अवगत हुये। द्रौपदी ने कृष्ण का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर कौरवों द्वारा किये गये अपमान की बात को याद दिलाया और यह भी कहा कि यदि मेरे ऊपर तुम्हारी कृपा हो तो तुम धृतराष्ट्र के पुत्रों के विषय में सम्पूर्णरूप से युद्ध का ही विधान करना।‡ द्रौपदी की इस बात को सुनकर कृष्ण ने उसे आश्वासन दिया और कहा कि वह दिन सन्निकट है जब वह शीघ्र ही भरतवंश की सब स्त्रियों को इसी की भांति रोती हुई देखेगी। कृष्ण ने एक राजनीतिज्ञ की भांति मानो भविष्य को पढ़ते हुये उसे स्पष्ट कह दिया कि काल के वश में हुये धृतराष्ट्रपुत्र यदि मेरा वचन नहीं मानेंगे तो निस्सन्देह मर कर पृथ्वी पर सो जावेंगे और कुत्तों तथा सियारों के भक्ष्य बनेंगे। यदि हिमालय पर्वत भी अपने स्थान से विचलित हो जावे तो भी मेरा यह वचन मिथ्या नहीं होगा।§ कृष्ण के इन वचनों को सुन कर द्रौपदी आश्वस्त होगई।

कृष्ण की इस उक्ति में उनकी अपूर्व मेधा और दूरदर्शिता

---

* उद्योग पर्व अ० ७६
† „ अ० ७८, ७९, ८०, ८१
‡ „ अ० ८२
§ „ अ० ८२

प्रतिभा का दर्शन होता है। वे जानते थे कि दुर्योधन संधि के लिये कदापि तैयार नहीं होगा, परन्तु ऐसा जानते हुये भी उन्होंने कर्तव्य बुद्धि से संधि-हितार्थ यात्रा प्रारम्भ की—"कर्मण्ये-वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" के उपदेश का यह व्यावहारिक आचरण सर्वथा उचित ही था।

२६. हस्तिनापुर की यात्रा

कार्तिक महीने में रेवती नक्षत्र से युक्त एक दिन रात्रि व्यतीत होने पर महाराज ने शौच स्नान, नित्यकर्म आदि से निवृत्त होकर यात्रा का उपक्रम किया। उन्होंने सात्यकि को शंख, चक्र, गदा, तूणीर, शक्ति आदि शस्त्रास्त्रों को रथ में स्थापित करने का आदेश दिया क्योंकि वे जानते थे कि दुर्योधन, शकुनि, कर्ण का त्रिगुट बड़ा दुष्ट है, उनसे असावधान रहना उचित नहीं। इस प्रकार यात्रा की सब तैयारियों से सज्जित होकर कृष्ण ने यात्रा प्रारम्भ की। युधिष्ठिर, अर्जुन आदि पाण्डव उन्हें छोड़ने काफी दूर तक गये।* रास्ते में कृष्ण को ऋषियों का एक समुदाय मिला-जिनसे उन्होंने वार्तालाप किया। ऋषियों ने कृष्ण के संधि-विषयक साधु प्रयत्न की प्रशंसा की और सभा में उनका वक्तव्य सुनने की इच्छा प्रकट की।

रात होने तक कृष्ण वृकस्थल तक पहुंच चुके थे। वहाँ वे रथ से उतर पड़े और सारथी को रथ से घोड़ों को खोलने की आज्ञा देकर शौच आदि कार्यों को समाप्त कर संध्योपासन किया।

* उद्योग पर्व० अ० ८३

दारुक सारथी ने भी शास्त्रविधि से उनकी परिचर्या की। तदन्तर उन्होंने रात्रि वहीं व्यतीत करने का अभिप्राय अपने सेवकों से कहा। तदनुकूल ही सारी व्यवस्था हो गई। वहाँ महाराज के लिये सुन्दर भोजन तैयार किया गया। कृष्ण के आगमन का समाचार पाकर गांव के ब्राह्मण उनसे मिलने के लिये आये और उन्होंने महाराज की पूजा की। उन्होंने महाराज को अपने स्थान पर ले जाने की भी प्रार्थना की, जिसे उन्होंने स्वीकार किया। वहाँ से लौटकर उन्होंने ब्राह्मणों के साथ ही भोजन किया और रात्रि वहीं व्यतीत की।* यात्रा का यह वृत्त सक्षेप में लिखने की आवश्यकता इसलिये प्रतीत होती है कि महाभारत में कृष्ण के जन सामान्य रूप के ही सरल दर्शन होते हैं। उन पर लोकोत्तर भावनाओं का आवरण बहुत पीछे डाला गया है।

३०. हस्तिनापुर की घटनायें

कृष्ण के हस्तिनापुर आगमन के समाचार को दूतों के मुख से सुन कर धृतराष्ट्र ने उनके स्वागत की तैयारियाँ करवाईं। उसने कहा कि मधुसूदन कृष्ण हम लोगों के सब प्रकार से माननीय हैं और पूजार्ह हैं। धृतराष्ट्र के इस वचन का भीष्म आदि सभी ने अनुमोदन किया और कहा कि कृष्ण का सत्कार हमारा मुख्य कर्तव्य कर्म है। दुर्योधन ने भी कृष्ण के प्रति लोगों की आदर भावना को जान कर कृष्ण के स्वागत के लिये मार्ग में स्थान २ पर अनेक तैयारियाँ करवाईं। धृतराष्ट्र अत्यन्त प्रेम पूर्वक विदुर से

* उद्योग पर्व० अ० ८४

कहने लगा कि महाराज के आने पर वह किस २ प्रकार से उनका स्वागत करेगा। उसने बड़े आडम्बर के साथ इसका वर्णन किया।* परन्तु विदुर चतुर थे। वे समझ गये कि यह सब कृष्ण को फुसलाने की चालें हैं। अतः उसने स्पष्ट रूप से धृतराष्ट्र को कह दिया कि कृष्ण तुम्हारी इन बातों में आने वाले नहीं हैं। उन्हें थोथे आडम्बर और दिखावे के आदर सत्कार की आवश्यकता नहीं है। यदि सचमुच ही तुम्हारे हृदय में कृष्ण के लिये सम्मान का भाव है तो तुम वही यत्न करो जिसमें कृष्ण अपने उद्देश्य में सफल हों। कृष्ण की यही इच्छा है कि कौरवों और पाण्डवों के बीच संधि हो, इसलिये तुम्हें कृष्ण की इस इच्छा को पूरा करना चाहिये।*

दुर्योधन धूर्त था। वह समझता था कि युद्ध तो रुकेगा नहीं इसलिये उसने कहा कि कृष्ण पूजनीय अवश्य हैं परन्तु अभी युद्ध का समय उपस्थित होने के कारण उनको कोई उपहार आदि भेंट में नहीं दिये जा सकते। इस प्रकार धृतराष्ट्र की स्वागत सम्बन्धी समस्त योजनाओं पर उसने पानी फेर दिया, यद्यपि कुछ समय पूर्व वह स्वयं इसके लिये तैयार हो गया था। भीष्म पितामह को दुर्योधन की इस क्षुद्र प्रवृत्ति पर बड़ा क्रोध आया और उन्होंने कहा, "तुम चाहे कृष्ण का सत्कार करो या न करो, उनका अपमान तो हर्गिज नहीं कर सकोगे। तुम्हारी भलाई इसी में है कि कृष्ण जो कुछ कहे उसे पूरा करने का यत्न करो।" अब दुर्योधन ने अपना वास्तविक रूप दिखलाया। उसने कहा, "मैं कृष्ण को क़ैद कर लूंगा, ऐसा करने से सम्पूर्ण यादव और पाण्डव मेरे वश में हो जायेंगे, क्योंकि कृष्ण के बिना, उनका एक क्षण भी काम

---

* उद्योग पर्व अ० ८६

नहीं चलेगा।" दुर्योधन की इस दुष्टता को देख कर धृतराष्ट्र ने उसे फटकारा और भीष्म तो नाराज होकर सभा से उठ कर ही चले गये।*

प्रात काल होते ही श्रीकृष्ण ने हस्तिनापुर नगर मे प्रवेश किया। दुर्योधन के अतिरिक्त सभी कौरव तथा भीष्म, द्रोण, कृप आदि ने नगर की प्राचीर तक आकर उनका स्वागत किया। इसके अतिरिक्त नगर के हजारों मनुष्य भी उनके स्वागत के लिये नगर से बाहर तक आये। उनका बड़े सभार से स्वागत हुआ और स्वागत यात्रा नगर के प्रमुख राजपथों से होती हुई कौरवों की राजसभा तक आकर समाप्त हुई। सभा में महाराज ने धृतराष्ट्र तथा अन्य उपस्थित कौरव पक्ष के लोगों से भेंट की और प्रारम्भिक कुशल प्रश्न पूछने के अनन्तर विश्राम के लिये पूर्वयोजित निवास स्थान विदुर के घर को चले गये।†

पाण्डवों की माता कुन्ती भी विदुर के घर पर हस्तिनापुर में ही रहती थी क्योंकि वन जाते समय पाण्डव उसे वहा रख गये थे। कृष्ण के आने पर उसने अपने पुत्रों के दुखों का वर्णन किया। उनके समाचार जानने की आकाक्षा व्यक्त की और अन्त में रोती कलपती हुई बोली कि तुम्हारे जैसे सहायकों और भीम तथा अर्जुन जैसे वीर पुत्रों के होते हुये मुझे यह कठोर दुख सहन करना पड़े, यही आश्चर्य है। इस प्रकार कुन्ती को अत्यन्त कातर तथा दुखी देख कर महाराज ने उसे समझाया, "तुम्हारे पुत्र निद्रा, आलस्य, क्रोध, हर्ष, भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी आदि दुखदायी द्वन्द्वों को जीत कर वीरों की तरह सुख से निवास करते हैं। अत्यन्त उत्साही और

* उद्योग पर्व अ० ८८
† " अ० ८९

महाबल से युक्त पाण्डवों को साधारण मनुष्यों के सुख से कभी संतोष नहीं हो सकता। वीर लोग अल्प सुख से संतुष्ट नहीं होते। धैर्यशाली पंडित लोग किसी वस्तु की अन्तिम सीमा को ही भोगते हैं। वे लोग या तो मनुष्यों के योग्य महाक्लेशों को ही भोगते हैं या उत्तम भोग और सुखों के फल को ही अनुभव करते हैं। साधारण पुरुषों की तरह मध्यम मार्ग उन्हें रुचिकर नहीं होता। इसी प्रकार पाण्डवों की दृढ़ प्रतिज्ञा है कि एक दिन वे पुनः अपने राज्य को प्राप्त करने में अवश्य समर्थ होंगे, यह उनका दृढ़ विश्वास है।" कुन्ती को कृष्ण के इन वचनों से पर्याप्त सान्त्वना मिली और उसने पुनः कृष्ण को पाण्डवों की भरसक सहायता करने को कहा। कुन्ती से विदा होकर कृष्ण सभा भवन की ओर चले।*

कृष्ण के राजसभा में आने पर दुर्योधन आदि कौरवों ने उठ कर उनका सत्कार किया और उन्हें एक उच्च आसन प्रदान किया। मधुपर्क की शास्त्रोक्त रीति से उनकी पूजा की और उन्हें अपने घर भोजन करने का निमंत्रण दिया। कृष्ण ने इसे स्वीकार नहीं किया। कारण पूछे जाने पर महाराज ने कहा कि दूत लोग अपने कार्य को पूरा करने पर ही जिसके निकट जाते हैं उसकी पूजा ग्रहण करते हैं, अतः जब मैं अपने उद्देश्य में कृतकृत्य हो जाऊंगा, तभी आपका सत्कार भी स्वीकार करूंगा।

दुर्योधन को महाराज के इस उत्तर से संतोष नहीं हुआ। उसने पुनः आग्रह पूर्वक कहा कि कार्य सिद्ध हो या न हो आपको अवश्य ही मेरे यहाँ भोजन करना चाहिये। अब महाराज ने स्पष्ट कहा, भोजन करने में दो हेतु होते हैं। जिसके ऊपर किसी की प्रीति होती है, वह उसका भोजन करता है, अथवा जो विपद्ग्रस्त

* उद्योग पर्व अ० ९०

नहीं चलेगा।" दुर्योधन की इस दुष्टता को देख कर धृतराष्ट्र ने उसे फटकारा और भीष्म तो नाराज होकर सभा से उठ कर ही चले गये।*

प्रात काल होते ही श्रीकृष्ण ने हस्तिनापुर नगर में प्रवेश किया। दुर्योधन के अतिरिक्त सभी कौरव तथा भीष्म, द्रोण, कृप आदि ने नगर की प्राचीर तक आकर उनका स्वागत किया। इसके अतिरिक्त नगर के हजारों मनुष्य भी उनके स्वागत के लिये नगर से बाहर तक आये। उनका बड़े सभार से स्वागत हुआ और स्वागत यात्रा नगर के प्रमुख राजपथों से होती हुई कौरवों की राजसभा तक आकर समाप्त हुई। सभा में महाराज ने धृतराष्ट्र तथा अन्य उपस्थित कौरव पक्ष के लोगों से भेंट की और प्रारम्भिक कुशल प्रश्न पूछने के अनन्तर विश्राम के लिये पूर्वयोजित निवास स्थान विदुर के घर को चले गये।†

पाण्डवों की माता कुन्ती भी विदुर के घर पर हस्तिनापुर में ही रहती थी क्योंकि वन जाते समय पाण्डव उसे वहां रख गये थे। कृष्ण के आने पर उसने अपने पुत्रों के दुखों का वर्णन किया। उनके समाचार जानने की आकांक्षा व्यक्त की और अन्त में रोती कलपती हुई बोली कि तुम्हारे जैसे सहायकों और भीम तथा अर्जुन जैसे वीर पुत्रों के होते हुये मुझे यह कठोर दुख सहन करना पड़े, यही आश्चर्य है। इस प्रकार कुन्ती का अत्यन्त कातर तथा दुखी देख कर महाराज ने उसे समझाया, "तुम्हारे पुत्र निद्रा, आलस्य, क्रोध, हर्ष, भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी आदि दुखदायी द्वन्द्वों को जीत कर वीरों की तरह सुख से निवास करते हैं। अत्यन्त उत्साही और

* उद्योग पर्व अ० ८८
† " अ०

महाबल से युक्त पाण्डवों को साधारण मनुष्यों के सुख से क संतोष नहीं हो सकता । वीर लोग अल्प सुख से संत नहीं होते। धैर्यशाली पंडित लोग किसी वस्तु की अन्ति सीमा को ही भोगते हैं। वे लोग या तो मनुष्यों के योग्य महाक्लेश को ही भोगते हैं या उत्तम भोग और सुखों के फल को ही अनुभ करते हैं। साधारण पुरुषों की तरह मध्यम मार्ग उन्हें रुचिकर न होता। इसी प्रकार पाण्डवों की दृढ़ प्रतिज्ञा है कि एक दिन पुनः अपने राज्य को प्राप्त करने में अवश्य समर्थ होंगे, यह उनक दृढ़ विश्वास है।" कुन्ती को कृष्ण के इन वचनों से पर्याप्त सान्त्व मिली और उसने पुनः कृष्ण को पाण्डवों की भरसक सहाय करने को कहा। कुन्ती से विदा होकर कृष्ण सभा भवन की अ चले।॥

कृष्ण के राजसभा में आने पर दुर्योधन आदि कौरवों ने कर उनका सत्कार किया और उन्हें एक उच्च आसन प्रदान किय मधुपर्क की शास्त्रोक्त रीति से उनकी पूजा की और उन्हें अप घर भोजन करने का निमंत्रण दिया। कृष्ण ने इसे स्वीकार न किया। कारण पूछे जाने पर महाराज ने कहा कि दूत लोग अप कार्य को पूरा करने पर ही जिसके निकट जाते हैं उसकी पू ग्रहण करते हैं, अतः जब मैं अपने उद्देश्य में कृतकृत्य हो जाऊंग तभी आपका सत्कार भी स्वीकार करूंगा।

दुर्योधन को महाराज के इस उत्तर से संतोष नहीं हुआ उसने पुनः आग्रह पूर्वक कहा कि कार्य सिद्ध हो या न हो आपक अवश्य ही मेरे यहाँ भोजन करना चाहिये। अब महाराज ने क कहा, भोजन करने में दो हेतु होते हैं। जिसके ऊपर किसी प्रीति होती है, वह उसका भोजन करता है, अथवा जो विपद्ग्र

होता है वह दूसरे का दिया हुआ भोजन खाता है, परन्तु आपने मेरी प्रीति का कोई कार्य नहीं किया और मैं भी आपत्तिग्रस्त नहीं हूँ, अत: मैं आपका भोजन कैसे करूँ ?

यद्यपि भोजन का निमंत्रण एक साधारण सी बात थी, परन्तु कृष्ण का प्रत्येक व्यवहार धर्म और नीति से युक्त होता था अतः उन्होंने दुर्योधन को सीधा और सच्चा उत्तर दे दिया, स्पष्ट बात कहने में उन्होंने कभी संकोच नहीं किया। निमंत्रण वाली बात को इस प्रकार समाप्त कर वे विदुर के घर आ गये।*

रात को पुन: कृष्ण और विदुर की बात चीत हुई। विदुर ने महाराज से कहा कि दुर्योधन जैसे कपटी, धूर्त और क्षुद्राशय व्यक्ति से यह आशा रखना कि वह सधि कर लेगा, दुराशा मात्र है। उसने दुर्योधन की यह आन्तरिक अभिलाषा से भी महाराज को अवगत कराया कि वह पाण्डवों को कोई भी वस्तु देना नहीं चाहता। अत आपका सारा परिश्रम अरण्य रोदन या वधिर के समीप गीत गाने के तुल्य निष्फल जायगा। कृष्ण ने इसका जो उत्तर दिया, उससे एक बार यह और स्पष्ट हो गया कि वे युद्ध के विरोधी और शान्ति के इच्छुक थे।

उन्होंने कहा कि मैं दुर्योधन की नीचता को जानता हूँ, परन्तु फिर भी मैं आज कौरव मण्डल में सधि प्रस्ताव को लेकर उपस्थित हुआ हूँ। इसका एक विशेष कारण है। जो पुरुष हाथी, घोड़े, रथ आदि से युक्त इस पृथ्वी को मृत्यु के मुख से बचा सकेगा, वह अवश्य ही धर्म का कार्य करेगा। मनुष्य अपनी शक्ति के अनुसार कोई धर्म के कार्य का अनुष्ठान कर उसे पूरा न कर सके तो वह उसे उस पुण्य का फल प्राप्त कराता है। मैं यथाशक्ति छल

* उद्योग पर्व अ० ९१

और कपट से रहित होकर शान्ति स्थापन के लिये यत्न करूंगा। जो मेरे इन प्रयत्नों को निस्वार्थ भाव से देखेंगे, वह इनकी प्रशंसा करेंगे। कौरवों की दुर्भावना का तो मुझे रत्ती भर भी डर नहीं है। मेरे क्रुद्ध होने पर, जैसे सिंह के सम्मुख साधारण पशु खड़े नहीं हो सकते, उसी प्रकार ये सब कौरव भी मेरे सम्मुख नहीं टिक सकेंगे।"*

३१. हस्तिनापुर की सभा

दूसरे दिन प्रातः जब कृष्ण संध्या वंदन आदि नित्य कर्मों से निवृत्त हुये तो दुर्योधन और शकुनि उन्हें बुलाने आ गये। महाराज ने यथाविधि ब्राह्मणों को दान दिया और अपने सारथी को रथ तैयार रखने का आदेश दिया। रथ पर आरूढ़ होकर महाराज ने सभाभवन की ओर प्रस्थान किया। सात्यकि, कृतवर्मा आदि वृष्णिवंशी महारथी उनके साथ थे। सभा में पहुँचने पर महाराज के स्वागत के लिये भीष्म, द्रोण आदि सभी कौरव प्रमुख महापुरुष उठ खड़े हुये और उन्हें एक श्रेष्ठ आसन दिया। कुशल-प्रश्न पूछने के अनन्तर सब यथास्थान बैठ गये। इसी समय वे ऋषि भी आ पहुँचे जो महाराज को रास्ते में मिले थे और जिन्होंने उनकी संधि सम्बन्धी वक्तृता सुनने की इच्छा प्रकट की थी। सबके स्थान ग्रहण करने के अनन्तर सभा में सर्वत्र शान्ति छा गई।†

* उद्योग पर्व अ० ९३
† उद्योग पर्व अ० ९४

महाराज ने इस सभा में आ करके हुये और धृतराष्ट्र को सम्बोधन करते हुये एक लम्बी वक्तृता दी जिसके प्रारम्भ में उन्होंने अपने आगमन का उद्देश्य बताते हुये कहा कि आपका कुरु-वंश क्षत्रियों में सर्व श्रेष्ठ माना जाता है, परन्तु इसमें दुर्योधन जैसे कुपुत्र का जन्म हो जाने के कारण भाई २ के बीच आज यह विरोध का प्रसंग उत्पन्न हुआ है। यदि आप चाहें तो इस युद्ध की अग्नि को शान्त कर सकते हैं। उन्होंने युद्ध की विभीषिका का यथार्थ और भयोत्पादक चित्र उपस्थित करते हुये यह भी कहा कि यदि कौरव और पाण्डव मिल कर रहेंगे तो संसार में ऐसा कौन सा कार्य है जिसे वे सिद्ध न कर सकें। अन्त में उन्होंने कहा कि पाण्डव लोग आपकी सेवा करने के लिये तैयार हैं और प्रतिकूल परिस्थिति उत्पन्न होने पर युद्ध के लिये भी सन्नद्ध हैं, इसमें जो आपको उत्तम और हितकारी प्रतीत हो उसी का अनुष्ठान कीजिये।*

कृष्ण के बोलने के पश्चात् ऋषियों ने भी धृतराष्ट्र को अनेक प्रकार से समझाया, परन्तु उसने यही उत्तर दिया कि संधि करना मेरे बस की बात नहीं है। इसके लिये आपको दुर्योधन को समझाना चाहिये। इस पर कृष्ण, भीष्म, द्रोण, और विदुर आदि सभी ने क्रम से दुर्योधन को समझाया, पर वह अपनी जिद पर अड़ा रहा। धृतराष्ट्र ने भी अपने पुत्र से स्पष्ट कह दिया कि कृष्ण ने जो धर्म और अर्थ से युक्त वचन कहे हैं उन पर यदि तुम ध्यान नहीं दोगे तो तुम्हारी पराजय निश्चित है।†

अब दुर्योधन के बोलने की बारी आई। उसने कहा कि, "आप

* उद्योग पर्व अ० ९५

† उद्योग पर्व अ० १२५

सब लोग मुझे ही दोषी बता रहे हैं, परन्तु मेरी समझ में यह नहीं आया कि मैं किस प्रकार दोषी हूँ ? यदि पाण्डवों ने जुआ खेला और उसमें वे अपने राज्य को हार गये तो इसमें मेरा क्या दोष है ? यदि उन्हें पासे (अक्ष) के खेल में पराजित होने पर वनवास मिला तो इसमें मेरा कौनसा अपराध है ? इतने पर भी यदि वे लड़ने पर ही उतारू हैं तो हम भी उनसे डरने वाले नहीं हैं। पहले मेरे बाल्यकाल मे मेरे पिता ने चाहे उन्हें आधा राज्य दे दिया हो, परन्तु अब इस समय मेरे जीते जी वे लोग राज्य के पुनः अधिकारी कदापि नहीं हो सकते। अधिक क्या कहूँ तीक्ष्ण सुई की नोक से जितनी भूमि बींधी जा सकती है, मेरे राज्य से उतनी भूमि भी पाण्डवों को नहीं दी जा सकती।"*

दुर्योधन की इस बात का महाराज ने मुंह तोड़ उत्तर दिया। उन्होंने विस्तार पूर्वक बताया कि पाण्डवों को मारने और उनका राज्य हथियाने के लिये कौरवों ने क्या २ चालें चली थीं। दुर्योधन की सारी धूर्तता और कुकर्मों का पर्दा फाश हो गया। वह सभा छोड़कर चला गया। अब कृष्ण ने धृतराष्ट्र को कहा कि देश में शान्ति स्थापित करने के लिये और पृथ्वी को युद्ध से बचाने के लिए अब एक मात्र उपाय यही है कि आप दुष्ट दुर्योधन, कर्ण, शकुनि आदि को बांध कर पाण्डवों के हाथों में दे दें। पण्डितों ने कहा है कि यदि एक पुरुष के त्याग से कुल भर की रक्षा होती हो तो अवश्य ही उसे त्याग देना चाहिये। सम्पूर्ण ग्राम की रक्षा के लिये कुल को, जनपद के लिये ग्राम को अपनी आत्मा की रक्षा के लिये सम्पूर्ण पृथ्वी को भी त्याग देना चाहिये। उन्होंने

* उद्योग पर्व अ० १२७

स्वयं अपना उदाहरण दिया कि मैंने अपने मामा कंस को उसके दुराचारी होने के कारण मार डाला।*

कृष्ण के इस प्रभावशाली कथनको सुन कर एक बार पुनः-धृतराष्ट्र ने गान्धारी के द्वारा दुर्योधन को समझाया, परन्तु उस पर कोई प्रभाव नहीं पडा उल्टा वह अपने साथियों के साथ श्रीकृष्ण को कैद करने का उपाय सोचने लगा। सात्यकि को दुर्योधन की इस दुरभिसंधि का पता चल गया। उसने कृतवर्मा से कहा कि मैं यह समाचार कृष्ण से कहने जाता हूँ तब तक तुम सेना का व्यूह बना कर सतर्कता सहित सभा द्वार पर उपस्थित रहो। सात्यकि ने सभा में प्रविष्ट होकर सर्व प्रथम कृष्ण, धृतराष्ट्र, विदुर आदि को दुर्योधन, कर्ण, शकुनि आदि का यह कुविचार सुनाया कि वे कृष्ण को बंदी बनाने की सोच रहे हैं। विदुर ने यह सुनकर धृतराष्ट्र को स्पष्ट कह दिया कि तुम्हारे पुत्र अब काल के वश हो गये हैं, तभी तो वे कृष्ण को बलपूर्वक पकड़ने का स्वप्न देखते हैं। परन्तु कृष्ण के सामर्थ्य से वे अनभिज्ञ हैं; यदि कृष्ण चाहें तो इन सारे षड्यंत्र कारियों को एक साथ ही यमपुर भेज सकते हैं।

यह समाचार सुनकर कृष्ण को जरा भी आश्चर्य नहीं हुआ, उन्होंने धृतराष्ट्र से इतना ही कहा कि दुर्योधन आदि कितने ही क्रुद्ध क्यों न हों मैं अकेला ही उनका निग्रह करने में समर्थ हूँ। यदि ये लोग मुझे पकड़ना ही चाहते हैं तो इस प्रकार राजा युधिष्ठिर की परोक्षरूप में भलाई कर रहे हैं। मैं आज इन लोगों को पकड़ कर पाण्डवों के समर्पण कर सकता हूँ। ऐसा करना मेरे लिये कोई कठिन नहीं है। मैं अपनी सहमति प्रकट करता हूँ कि दुर्योधन अपनी इच्छानुसार कार्य करे। कृष्ण की इन बातों को सुन कर धृतराष्ट्र घबराया। उसने पुन. विदुर के द्वारा दुर्योधन को

* उद्योग पर्व अ० १२७

बुलाकर फटकारा। उसने कहा, तू बड़ा क्रूर, पापी और नीच है। मैंने सुना है कि तू इन पाप बुद्धि पामरों की सहायता से महाप्रतापी कृष्ण को पकड़ने की इच्छा रखता है। तुम समान कुल कलंक और नीच के अतिरिक्त और कौन ऐसे काम की इच्छा रख सकता है? परन्तु तू यह निश्चित समझ ले कि कृष्ण को पकड़ना कोई हँसी खेल नहीं है। बालक जिस प्रकार चन्द्रमा को पकड़ने की इच्छा रखता है, उसी प्रकार यह तेरी इच्छा है। इसी प्रकार विदुर ने भी दुर्योधन को इस दुष्कर्म के लिये बुरा भला कहा।*

विदुर के चुप हो जाने पर वासुदेव ने जोर से अट्टहास किया और सात्यकि तथा कृतवर्मा का हाथ पकड़ कर चल दिये। इस स्थान पर महाभारत में चमत्कारपूर्ण और अलौकिक घटनाओं का मिश्रण कर कृष्ण के स्वाभाविक चरित्र को दैवी बनाने वालों ने विराट्स्वरूप दर्शन का एक नूतन प्रसंग प्रक्षिप्त किया है। अब तक महाभारत में जो कुछ कहा गया था वह अत्यन्त सुसंगत, स्वाभाविक तथा घटना चक्र के अनुकूल था, परन्तु बंकिम के शब्दों में, "क्षेपक मिलाने वालों से यह नहीं देखा गया। क्षेपक मिलाने के लिये उनके हाथ खुजलाने लगे। उन्होंने सोचा कि इतनी बड़ी घटना हो गई और उसमें एक भी अस्वाभाविक और अद्भुत बात नहीं, फिर भला कृष्ण की ईश्वरता कैसे बनी रहेगी? कदाचित यही सोच कर उन्होंने कृष्ण के हंसने और उठ कर चल देने के बीच में विराट् रूप घुसेड दिया है।" †

दुर्योधन को डराने के लिये कृष्ण ने विराट् रूप दिखलाया। उसे देख कर भीष्म, द्रोण, विदुर, सञ्जय और ऋषियों के अति-

* उद्योग पर्व अ० १३०

† कृष्ण चरित्र पृ० ३९१

रिक्त अन्य सब उपस्थित लोगों ने अपनी आंखें मूंद ली। देवता पुष्प वृष्टि करने लगे और समस्त राजा अत्यन्त भयभीत हो गये, पृथ्वी कांपने लगी। क्षेपककारों द्वारा की गई इस मिलावट को सिद्ध करने के लिये बंकिम बाबू ने निम्न प्रमाण दिये हैं—*

(१) गीता के ११ वें अध्याय में विराट्रूप का जो वर्णन है, वह प्रथम श्रेणी के कवि की रचना है। साहित्य जगत् में वैसी रचना दुर्लभ है, पर भगवद्यान पर्वाध्याय में विराट्रूप का वर्णन जिसने लिखा है उसके लिये काव्य रचना विडम्बना मात्र है।

(२) भगवद्गीता के ११ वें अध्याय में कृष्ण अर्जुन से कहते हैं, "तुम्हारे सिवा और किसी ने यह रूप पहले नहीं देखा है।"† पर यहाँ कौरव सभा में दुर्योधनादि यह रूप पहले ही देख चुके हैं।

(३) उसी अध्याय में कृष्ण कहते हैं—"तुम्हारे सिवा कोई और मनुष्य वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान, दान क्रिया और कठोर तपस्या करके भी मेरा यह रूप नहीं देख सकता।"‡ पर कुकवियों की कृपा से कौरव सभा में उपस्थित ऐरों गैरों सभी ने विराट्रूप देख लिया।

(४) गीता में यह भी लिखा है कि अनन्य भक्ति से ही मेरा यह रूप लोग जान व देख सकते हैं।¶ पर यहाँ दुष्ट, पापात्मा और भक्तिशून्य शत्रुओं ने भी विराट् रूप का दर्शन किया है।

---

* कृष्ण चरित्र पृ० ३९१-३९२

† गीता ११ । ४७

‡ गीता ११ । ४८

¶ गीता ११ । ५४

(५) इस प्रसग में विराट्रूप दर्शन की कोई आवश्यकता भी नहीं थी। कारण कि प्रथम तो दुर्योधन आदि कृष्ण को पकड़ने का विचार ही रखते थे, इसके लिये उन्होंने कोई चेष्टा नहीं की। दुर्योधन भी बाप और चाचा की फटकार सुनकर चुप हो गया। अगर वह कुछ प्रयत्न भी करता तो उसे सफलता नहीं मिलती, क्योंकि कृष्ण स्वय ही इतने बली थे कि किसी के लिये उनको पकड़ना सम्भव नहीं था। फिर, कृष्ण के सहायक सात्यकि, कृतवर्मा आदि यदुवशी भी कृष्ण की सहायता और रक्षा के लिये उपस्थित थे। अब प्रत्येक दृष्टि से देखने पर यही विदित होता है कि यहाँ विराट् रूप दिखाने का न तो कोई प्रसग था और न प्रयोजन। यह स्पष्ट ही क्षेपककारी की कृपा है, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं। अस्तु

कुरु सभा से निकल कर महाराज कुन्ती से मिले और पाण्डवों के प्रति उसका सदेश लेकर विराट नगर की ओर चले जहाँ पाण्डव ठहरे हुए थे। चलते समय उन्होंने कर्ण को अपने साथ रथ पर बिठा लिया, उसका क्या प्रयोजन था, यह जानना चाहिये।

कर्ण कुन्ती का कानीन पुत्र था।* पाडवों में जन्म की दृष्टि से वही सबसे ज्येष्ठ था। महाराज का कर्ण से वार्तालाप करने में प्रयोजन यह था कि किसी न किसी प्रकार कर्ण को पाडवों के पक्ष में मिला लेना चाहिये। इससे पूर्व वे साम और दान आदि नीतियों का प्रयोग कर चुके थे, दण्ड नीति को अत के लिये छोड़ कर उन्होंने भेद नीति का प्रयोग किया। उन्होंने कर्ण से कहा कि कुन्ती के गर्भ से कन्यावस्था में उत्पन्न होने के कारण तुम युधिष्ठिर

* कौमार्य अवस्था में उत्पन्न।

आदि पाण्डुपुत्रों से ज्येष्ठ हो। इसलिये तुम्हें उचित है कि अपने अनुज पाण्डवों का साथ दो। बड़े होने के कारण राज्य के अधिकारी भी तुम्हीं होओगे।*

कर्ण पर महाराज की इस भेद नीति का कोई प्रभाव न हुआ। वह दुर्योधन का साथी था और दुर्योधन का उस पर बड़ा भारी ऋण था। दुर्योधन भी कर्ण जैसे महारथी के बल पर ही उछल रहा था। अपने मित्र को संकट में छोड़कर पाण्डवों के पक्ष में मिल जाना कर्ण को घोर स्वार्थ और कृतघ्नता प्रतीत हुई, अत उसने महाराज के इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। कृष्ण को अपनी इस असफलता से दुख हुआ और उन्होंने यह कह कर उससे विदा ली कि, "जब मेरी बात तुम्हारे हृदय में नहीं बैठती तो यह निश्चय समझ लो कि इस सम्पूर्ण पृथ्वी की प्रजाओं के नाश का समय उपस्थित हो गया है। इस महानाश का कोई नहीं रोक सकता।"

◆◆

युद्ध का उपक्रम—

३२. भीष्मपर्व

शान्ति के सभी उपायों के असफल होने पर युद्ध के सिवा कोई मार्ग नहीं रहा। कुरुक्षेत्र के मैदान में वह विश्वप्रसिद्ध संग्राम हुआ जो १ दिन तक चला। इसमें दोनों पक्षों के हजारों वीर मरे और अपार जन धन की क्षति हुई। इस संग्राम ने [illegible] को इतना जबरदस्त धक्का लगाया कि हजारों वर्ष व्यतीत हो

* उद्योग पर्व अ० १४०

जाने पर भी उसकी पूर्ति नहीं हो सकी। कौरव पक्ष के चार सेनापतियों ने इस युद्ध का नेतृत्व किया, उनके नाम हैं—भीष्म, द्रोण, कर्ण और शल्य। इन्हीं सेनापतियों के नाम से व्यासजी ने चार पर्वों की रचना की है। सर्व प्रथम भीष्म को कुरु सेना का नेतृत्व सौंपा गया। इनकी नायकता में दस दिन तक युद्ध हुआ।

भीष्म पर्व के प्रारम्भ में २४ वें अध्याय से भगवद्गीता प्रारम्भ होती है जो १८ अध्याय और ७०० श्लोकों में समाप्त हुई है। यह छोटा सा ग्रन्थ अपने आध्यात्मिक और दार्शनिक महत्त्व के कारण समस्त संसार में प्रख्यात है। गीता के विषय में एक पृथक अध्याय परिशिष्ट के रूप में लिखा गया है, अतः यहाँ विस्तार से कुछ भी लिखने की आवश्यकता नहीं है। युद्ध के अवसर पर शत्रु पक्ष में अपने ही नातेदारों और सम्बन्धियों को उपस्थित देख कर अर्जुन मोहग्रस्त हो गया। वह सोचने लगा कि इनको मार कर यदि मैंने विजय श्री प्राप्त भी कर ली तो उससे मेरा क्या कल्याण होगा ? ऐसी बातों को सोचते २ अर्जुन किंकर्तव्य विमूढ़ हो गया। उसने युद्ध न करने का ही निश्चय कर लिया और शोकाविष्ट होकर रथ के पृष्ठ भाग में बैठ गया। कृष्ण ने जब उसकी यह दशा देखी तो उन्हें बड़ा खेद हुआ। उन्होंने अपने ओजस्वी उपदेश के द्वारा अर्जुन का स्वकर्तव्य की ओर ध्यान आकर्षित किया और पर्याप्त प्रयत्न करने के पश्चात् वे अपने कार्य में सफल भी हुये। कृष्ण की प्रेरणादायक शिक्षा को सुन कर अर्जुन पुनः युद्ध के लिये कृतसंकल्प हुआ। संक्षेप में गीता का यही विषय और प्रयोजन है।

युद्ध के लिये अर्जुन के पुनः उद्यत होने पर पाण्डव पक्ष के सभी योद्धा सिंहनाद करने लगे। उस समय महाराज युधिष्ठिर

युद्ध में विजय प्राप्ति का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिये करबद्ध होकर भीष्म, द्रोण, कृप, शल्य आदि कौरव प्रमुखों के पास गये और उन्हें प्रणाम किया तथा आशीर्वाद की याचना की। युधिष्ठिर की इस नम्रता को देख कर सभी लोग बड़े प्रभावित हुये। उनको मनोनुकूल ही वर मिला, विशेषतया भीष्म तो बड़े प्रसन्न हुये।

इस समय कृष्ण ने पुन कर्ण को पाण्डव पक्ष में सम्मिलित होने की सम्मति दी क्योंकि कर्ण की यह प्रतिज्ञा थी कि जब तक भीष्म लड़ेंगे तब तक वह स्वयं युद्ध से पृथक रहेगा। इस प्रतिज्ञा का कारण उसका भीष्म से वैयक्तिक द्वेष था। कृष्ण ने इसका लाभ उठा कर उसे अपने ही भाई पाण्डवों के पक्ष में युद्ध करने के लिये उत्तेजित किया, परन्तु कर्ण अपने विचार का पक्का था। उसने यह स्पष्ट कह दिया कि मैं वह कार्य कदापि नहीं करूंगा जिस से दुर्योधन का अहित हो।

युद्ध प्रारम्भ हुआ। पाण्डव सेना का प्रथम सेनापति धृष्टद्युम्न था। प्रथम दिन की लड़ाई में ही भीष्म ने जो भयङ्कर मारकाट मचाई उसे देख कर युधिष्ठिर व्याकुल हो गया और उसने अपनी निराशा कृष्ण के समक्ष व्यक्त की। कृष्ण ने सदा की भाँति उन्हें धैर्य बंधाया।

युद्ध के वर्णन में महाभारतकार ने सैंकड़ों अध्याय लिखे हैं। उनमें किसी प्रकार की रोचकता या नवीनता नहीं है। यदि बंकिम के शब्दों का प्रयोग करें तो कहेंगे कि, "इन युद्ध पर्वों को महाभारत का निकृष्ट अंश समझना चाहिये क्योंकि पुनरुक्ति, अत्युक्ति, असंगति और अरुचिकर, अस्वाभाविक तथा अनावश्यक वर्णनों से परिपूर्ण हैं।"*

* कृष्ण चरित पृ० ४०३

कई दिनों तक युद्ध चलता रहा। भीष्म के युद्ध कौशल के समक्ष पाण्डवों में से कोई भी उनका सामना करने की शक्ति नहीं रखता था। एक अर्जुन ही उनकी टक्कर का वीर था परन्तु वह भी जी खोल कर नहीं लड़ रहा था। पितामह के प्रति उसके हृदय में अत्यन्त कोमल भावनायें थीं, क्योंकि वह जानता था कि बाल्यकाल में मेरा पालन पोषण भीष्म ने ही किया है। इस पर्व में सञ्जय का कथन है कि अर्जुन मृदु युद्ध करते थे और भीष्म सदा बाणों की वृष्टि करते थे।† भीष्म को पाण्डव सेना का नाश करते और अर्जुन के शिथिल युद्ध को देख कर कृष्ण से नहीं रहा गया। वे एक दिन स्वयं रथ से कूद पड़े। भीष्म के वध की इच्छा से बार २ सिंहनाद करने लगे और अपने पावों से पृथ्वी को कंपाते हुये अपने भुजा रूपी शस्त्रों का अवलम्बन करके हाथ में कोड़ा लिये हुये भीष्म की ओर दौड़े।

जब अर्जुन ने देखा कि कृष्ण मेरे लिये ही अपनी पूर्वकृत प्रतिज्ञा‡ को तोड़ने के लिये उद्यत हो गये हैं तो उसे बड़ा दुख हुआ और वह शीघ्रता से उनके पीछे दौड़ा और अपनी भुजाओं से उनको पकड़ लिया। उसने महाराज को बार २ आश्वासन दिया कि अब वह पितामह का वध अवश्य करेगा। उसने कृष्ण से प्रार्थना की कि आप युद्ध से निवृत्त हो जायें क्योंकि आपकी प्रतिज्ञा की रक्षा होना आवश्यक है। यदि आप अपने युद्ध न करने के वचन को तोड़ देंगे तो लोग आपको मिथ्यावादी कहेंगे। कृष्ण कुछ भी न बोल कर पुनः रथ पर बैठ गये और अर्जुन जी लगा कर लड़ने लगा।

---

† भीष्म पर्व अ० १०३

‡ संग्राम में शस्त्र धारण न करने की कृष्ण की प्रतिज्ञा थी।

इस घटना को लेकर कथावाचकों ने एक नई बात गढ़ ली है। उनके कथनानुसार जिस प्रकार कृष्ण ने युद्ध में न लड़ने की प्रतिज्ञा की थी, उसी प्रकार भीष्म ने भी युद्ध में कृष्ण को शस्त्र ग्रहण कराने की प्रतिज्ञा की थी। अपने भक्त के प्रण की रक्षा करने के लिये ही कृष्ण रथ का पहिया लेकर भीष्म की ओर दौड़े। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि सूरदास ने इसी प्रसंग का एक पद लिखा है।* वस्तुतः इस कल्पना का कोई आधार नहीं है। महाभारत में भीष्म की इस प्रतिज्ञा का कहीं उल्लेख नहीं है। भीष्म को मारने के लिये यदि महाराज दौड़े भी तो उससे उनकी प्रतिज्ञा की हानि नहीं हुई। उन्होंने युद्ध तो किया नहीं था। चक्र लेकर उनके दौड़ने का उद्देश्य केवल इतना ही था कि अर्जुन भीष्म को मारने के लिये अपने युद्ध में कुछ उग्रता लाये। उनकी अभीष्ट सिद्धि हो भी गई।

युद्ध के नवें दिन भीष्म वध का उपाय करने के लिये युधिष्ठिर ने अपने भाई बंधुओं और हितचिन्तकों को सम्मिलित किया। इस गोष्ठी में कृष्ण ने कहा कि भीष्म का वध करने में मैं और अर्जुन दोनों ही समर्थ हैं। अब आप हम में से चाहें जिसे आज्ञा दें हम तैयार हैं। इस समय युधिष्ठिर को कृष्ण की शस्त्र ग्रहण न करने की प्रतिज्ञा का स्मरण आया—"अयुध्यमान संग्रामे न्यस्त

---

* आजु जो हरिहिं न शस्त्र गहाऊँ।
तौ लाजौं गंगा जननी को शान्तनु सुत न कहाऊँ।
पाण्डव दल सन्मुख ह्वै धाऊं सरिता रुधिर बहाऊँ।
स्यन्दन खंडि महारथ खंडौं कपिध्वज सहित डुलाऊँ।
इति न करौं तो सपथ मोहि हरि की छत्रिय गतिहि न पाऊँ।
सूरदास रन विजय सखा को जियत न पीठ दिखाऊँ॥

हन्तोऽहमेकतः।" अतः उसने कहा कि मैं अपने स्वार्थ के लिये तुम्हें भीष्मवध का कार्य सौंप कर मिथ्यावादी नहीं बनाना चाहता। पुनः कृष्ण की सम्मति से सब लोग भीष्म के समीप गये और उनसे उनकी मृत्यु का उपाय पूछा। भीष्म ने भी बता दिया कि अर्जुन और कृष्ण के अतिरिक्त और किसी पुरुष में इतनी सामर्थ्य नहीं है कि वह मेरा वध कर सके।

अर्जुन यद्यपि भीष्म की वीर गति प्राप्त करा सकता था परन्तु जैसा कि पूर्व ही कहा जा चुका है भीष्म के प्रति उसके हृदय में बड़ा आदर भाव था। उसे बाल्यकाल की वह घटना स्मरण हो जाती थी जब कि वह पितामह की गोद में बैठ कर उन्हें "बापू बापू" कह कर पुकारता था। उस समय भीष्म उसे कहते थे, "बेटा मैं तेरा बापू नहीं तेरे पिता का बापू हूँ।" ऐसे प्रेममूर्ति पितामह को मारना अर्जुन के लिये बड़ा धर्म संकट बन गया। उसने अपने हृदय की इस कमजोरी को कृष्ण के समक्ष भी स्वीकार कर लिया परन्तु बाद में उनके समझाने पर उसने स्वीकार कर लिया कि पाण्डवों के हित में वह अवश्य भीष्म का वध करेगा। अन्त में ऐसा ही हुआ। अर्जुन के तीक्ष्ण बाणों से आहत होकर भीष्म का शरीर युद्ध क्षेत्र में पतित हुआ और वे शर शय्या पर सो गये।

मूल महाभारत में शिखण्डी की कथा पीछे के कवियों ने मिलाई है, यह बंकिम का मत है।* यहीं भीष्म पर्व समाप्त होता है।

---

* कृष्ण चरित्र पृ० ४०८

द्रोणपर्व—

२२. जयद्रथ वध

भीष्म के पश्चात् द्रोणाचार्य कौरव सेना के सेनापति हुये। द्रोणपर्व के प्रारम्भ में कृष्ण के विषय में कोई महत्त्वपूर्ण उल्लेख नहीं है। कृष्ण अभिमन्यु वध के पश्चात् ही कार्यक्षेत्र में आते हैं। द्रोणाचार्य ने चक्रव्यूह की रचना की थी, जिसे भेदने की शक्ति पाण्डव पक्ष में अर्जुन को छोड़ कर और किसी में नहीं थी। परन्तु दुर्भाग्य वश अर्जुन उस दिन संशप्तकों से युद्ध करने चले गये। उसकी अनुपस्थिति में गुरु द्रोणाचार्य द्वारा रचित चक्रव्यूह का समाचार सुन कर पाण्डवों की सेना में बड़ी हलचल मची। कोई व्यक्ति चक्रव्यूह के रहस्य से अभिज्ञ नहीं था। अन्त में सौभद्र अभिमन्यु इस काम के लिये तैयार हुआ। उसने उस दिन पाण्डव सेना का नेतृत्व किया और अकेला ही चक्रव्यूह में घुस कर कौरव सेना का हनन करने लगा। उसकी सहायता के लिये जो पाण्डव सेना साथ गई थी, वह अन्दर प्रवेश भी नहीं पा सकी। इसका कारण जयद्रथ था, जो मुख्य द्वार का रक्षक था, और जिसने पाण्डव सेना को व्यूह के भीतरी भाग में प्रविष्ट नहीं होने दिया।

कौरवों से युद्ध करता हुआ महावीर अभिमन्यु सात महारथियों के क्रूरतापूर्ण षड्यन्त्र का शिकार हुआ। जब अभिमन्यु वध का समाचार युधिष्ठिर को मिला तो उसे अपने भ्रातृपुत्र की असामयिक मृत्यु का तो दुख हुआ ही, साथ ही इस बात का भी खेद हुआ कि जब अर्जुन अपने कार्य को समाप्त कर मेरे समक्ष आयगा तो मैं उसे क्या उत्तर दूंगा? अर्जुन सायंकाल को संशप्तक युद्ध से लौटकर जब शिविर में आया तो उसे अभिमन्यु वध का समाचार मिला। उसने तुरन्त ही जयद्रथ को मारने की प्रतीज्ञा कर ली। जयद्रथ ही चक्रव्यूह

का द्वार रक्षक था और उसके कारण ही पाण्डव सेना अन्दर प्रविष्ट नहीं हो सकी थी। यदि पाण्डव सेना अभिमन्यु के साथ रहती तो वह इस प्रकार नहीं मारा जा सकता था। अर्जुन का यह निश्चय रहा कि या तो वह एक दिन में ही जयद्रथ को मारेगा अथवा स्वयं अपना प्राणान्त कर लेगा।

जब कृष्ण ने अर्जुन की प्रतिज्ञा का समाचार सुना तो उन्होंने एक दूत कौरव शिविर में भेजा और वहां होने वाली अर्जुन की प्रतिज्ञा की प्रतिक्रिया का पता लगाया। दूत ने उन्हें बताया कि अर्जुन की प्रतिज्ञा का समाचार कौरव दल में बड़ी चिंता के साथ सुना गया है। ज्योंही यह समाचार जयद्रथ को मिला, वह अत्यन्त भयभीत होकर दुर्योधन के पास गया और उससे अपने घर जाने की आज्ञा मांगी। दुर्योधन ने उसे इतना जीवन से हताश और निराश न होने की हिम्मत बंधाई और आश्वासन दिया कि उसकी प्राण-रक्षा का भरसक प्रयत्न किया जायगा। अब द्रोणाचार्य ने सूची व्यूह की रचना जयद्रथ की रक्षा के लिये की। जयद्रथ को एक केन्द्र स्थान पर छिपाया गया और कौरव पक्ष के सब महारथी प्राचीर की तरह उसकी रक्षा करने लगे। ऐसी परिस्थिति में शायद अर्जुन के लिये भी उस भीषण व्यूह को भेद कर जयद्रथ को मारना कठिन हो जाय, यह जान कर कृष्ण उपाय सोचने लगे। इस विचार विमर्श में ही रात्रि व्यतीत होने लगी।

अभिमन्यु वध का हृदयद्रावक समाचार जब उसकी माता सुभद्रा और पत्नी उत्तरा को मिला तो वे शोक के कारण अत्यन्त व्याकुल होकर विलाप करने लगीं। कृष्ण उन्हें सान्त्वना देने के लिये अर्जुन के शिविर में गये। उन्होंने धैर्य बंधाते हुये अपनी बहिन को कहा कि पुत्र के लिये शोक करना उचित नहीं है। काल ने सम्पूर्ण प्राणियों के लिये और विशेषकर क्षत्रियों के लिए

ऐसी ही गति का विधान किया है। पिता के समान पराक्रमी तुम्हारे महारथ पुत्र की प्रारब्ध से ही ऐसी वीर मृत्यु हुई है, अत तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। धर्म के अनुसार अनेक शूरवीर पुरुषों को यमलोक पहुँचाकर अन्त में तुम्हारे पुत्र ने वीर पुरुषों की अभिलषित वीर गति को प्राप्त किया है अत तुम्हें उसके निमित्त दुखी नहीं होना चाहिये। इन वचनों से महाराज ने सुभद्रा के दुखी हृदय को सान्त्वना देने का प्रयत्न किया।* यह सत्य है कि केवल बातों से ही, उस माता को जिसका युवा पुत्र संग्राम में हत हुआ है, सान्त्वना नहीं मिल सकती। परन्तु कृष्ण ने अपने कर्तव्य पालन में शिथिलता नहीं दिखलाई।

सुभद्रा के आवास से कृष्ण अपने स्थान पर गये और पुन जयद्रथवध का उपाय सोचने लगे। उन्होंने अपने सारथी दारुक को बुलाया और उसे प्रातःकाल ही अपने रथ को अस्त्रों और अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित रखने की आज्ञा दी। उनका विचार यह था कि यदि अर्जुन दिनभर लड़कर भी यदि व्यूह को नहीं तोड़ सका और जयद्रथ का नहीं मार सका तो वे स्वय जयद्रथ को मारेंगे और उसकी प्रतिज्ञा पूरी करेंगे।

कृष्ण को लड़ने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। अर्जुन ने ही सारे रथियों को पराजित कर जयद्रथ वध का मार्ग प्रशस्त कर दिया। परन्तु यदि कृष्ण को युद्ध करना ही पड़ता तो इससे उनकी संग्राम में शस्त्र ग्रहण न करने की प्रतिज्ञा खण्डित नहीं होती। बंकिम ने इस प्रसंग में ठीक ही कहा है, "जिस युद्ध के लिये उन्होंने प्रतिज्ञा की थी वह यह नहीं

* द्रोणपर्व अ० ७५

† ०, अ० ७७

था। वह कौरव पाण्डवों का राज सम्बन्धी युद्ध था और यह अर्जुन की प्रतिज्ञा सम्बन्धी। इसका उद्देश्य दूसरा था। यह युद्ध अर्जुन की जीवन रक्षा के लिये था। यदि अर्जुन प्रतिज्ञा पूरी न कर सकता तो वह आग में जल मरता। यह युद्ध पहले नहीं ठना था, अतः 'अयुद्धमानः संग्रामे' इसमें नहीं लगता है।"*

यहाँ एक मन गढ़ंत कहानी और महाभारत में मिलाई गई है। रात्रि के समय कृष्ण और अर्जुन दोनों हिमालय पर्वत पर जाकर महादेव से जयद्रथ वध के लिये पाशुपतास्त्र प्राप्त करते हैं। वनपर्व में वनवास के समय में भी अर्जुन के महादेव से पाशुपतास्त्र लेने का उल्लेख है। यहाँ वह घटना पुनः दोहराई गई है। प्रक्षेप करने वाला यह भूल गया कि उसका यह पुनरुक्ति दोष पकड़ा जायगा।

दूसरे दिन जयद्रथ वध के लिये घोर संग्राम हुआ। दोनों पक्षों के सैंकड़ों महारथी हताहत हुये। सूर्यास्त से पूर्व ही अर्जुन ने जयद्रथ को मार डाला। यहाँ एक अन्य अलौकिक और चमत्कारपूर्ण घटना का आयोजन किया गया है। महाभारत में कहा गया है कि जयद्रथ को अर्जुन के सम्मुख आने का साहस नहीं हो रहा था, और जब तक वह सम्मुख न आये, अर्जुन उसे कैसे मार सकता था? इसका उपाय करने के लिये कृष्ण ने अपनी योग माया के बल से तीसरे पहर में ही सूर्य को छिपा दिया। सूर्यास्त हुआ जान कर जयद्रथ बाहर निकल आया और अर्जुन ने उसे मार डाला। बंकिम इस कथा को क्षेपक मानते हैं। उनका कथन है कि कृष्ण को इस चालाकी के करने की आवश्यकता ही क्या थी? सूर्य छिपने से पूर्व भी अर्जुन और जयद्रथ एक दूसरे पर वार कर रहे थे। अतः एक बार सूर्यास्त होने और पुनः सूर्य के निकलने की घटना पर विश्वास करना कठिन है।

* कृष्ण चरित्र पृ० ४१३

जयद्रथ के वध के साथ २ एक पौराणिक गाथा और जुड़ी हुई है। जयद्रथ के पिता वृद्धक्षत्र वहीं तपस्या कर रहे थे। उनको यह वरदान था कि जो कोई उनके पुत्र का सिर धड़ से पृथक करेगा और भूमि पर गिरायेगा तो उसी समय उसके पुत्र को मारने वाले का भी सिर कट कर सौ टुकड़ों में विभक्त होकर पृथ्वी पर गिर पड़ेगा। यह रहस्य जानते हुये कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि तुम जयद्रथ पर इस प्रकार प्रहार करो कि जिससे उसका सिर अमुक स्थान पर तपस्या करने वाले वृद्धक्षत्र की गोद में पड़े और जब वह हड़बड़ा कर उठेगा तो उसकी गोद से ही उसके पुत्र का सिर गिरेगा, फलस्वरूप वह स्वयं भी मारा जायगा। अर्जुन ने ऐसा ही किया और जयद्रथ का सिर उसके पिता की मृत्यु का भी कारण बना। ऐसी ऊटपटांग कहानियों की मीमांसा करने की आवश्यकता नहीं है। इन्हीं चमत्कारपूर्ण घटनाओं ने महाभारत के वास्तविक ऐतिहासिक स्वरूप को छिपा कर उसे पुराण के निकट बैठा दिया है।

◆◆

३४. घटोत्कच वध

भीम का विवाह हिडिम्बा नाम की राक्षसी से हुआ था। यह राक्षसी हिडिम्ब नामक राक्षस की सहोदरा थी। भीम ने राक्षस का वध कर उसकी बहिन से पाणि-ग्रहण किया था। इस राक्षस पत्नी से भीम के एक पुत्र हुआ-घटोत्कच। यह बड़ा वीर और लड़ाकू था। पाण्डव पक्ष की ओर से घटोत्कच ने बड़ा भयकर युद्ध किया। कौरव सेना इसकी भयकर मारकाट

से ग्रस्त हो उठी। कर्ण और घटोत्कच के बीच भयंकर संग्राम हुआ। कर्ण ने इन्द्रप्रदत्त अमोघ शक्ति का प्रयोग घटोत्कच को मारने के लिये किया। वस्तुतः उसने यह शक्ति अर्जुन को मारने के लिये ही रख छोड़ी थी, परन्तु घटोत्कच के अप्रतिम शौर्य और रण चातुरी से अपने को पार न पाता देख कर निराशा युक्त कर्ण के लिये उस शक्ति का प्रयोग करना आवश्यक हो गया। ऐन्द्री शक्ति से घटोत्कच मारा गया। पाण्डव पक्ष में शोक के बादल छा गये, परन्तु श्रीकृष्ण खुशी के मारे नाच उठे। *

बंकिम ने कृष्ण की इस प्रसन्नता का बड़ा मनोरञ्जक वर्णन किया है। वे लिखते हैं—"घटोत्कच के मरने पर पाण्डव शोक से व्याकुल हो रोने लगे, पर श्रीकृष्ण रथ पर नाच उठे। अब तो वह गोप बालक नहीं हैं। नाती पोते वाले हैं। अचानक उनके पागल हो जाने की भी बात नहीं है। फिर रथ पर नाच कैसा? केवल नाच ही नहीं, सिंहनाद और खम ठोकना।" † अर्जुन ने इसका कारण पूछा तो आपने कहा कि कर्ण ने एक इन्द्रदत्त शक्ति तुम्हें मारने के लिये रख छोड़ी थी, अब घटोत्कच पर उसका प्रयोग हो जाने से वह नष्ट हो गई है, अतः अब तुम्हें किसी से भय नहीं रहा। अब निश्चिन्त होकर कर्ण से लड़ो। इस कथा को कल्पित करने वाला यह भूल गया, कि इससे पूर्व जब जयद्रथ के लिये अर्जुन और कर्ण में युद्ध हुआ था, उस समय कर्ण को उस शक्ति का ध्यान नहीं आया। प्रक्षेप करने वालों का पदा इसी तरह उघड़ता है।

---

* द्रोण पर्व अ० १७८

† कृष्ण चरित्र पृ० ४२३

दूसरी तह के कवि और वंकिम

मैंने पूर्व अध्यायों में यथा प्रसंग निवेदन किया है कि वंकिम का कृष्ण चरित्र कहीं कहीं परस्पर विरोधात्मक बातों से दूषित हो गया है। वंकिम की ये आपस की विरोधी बातें उनके ग्रन्थ में चन्द्रमा में कलंक के तुल्य हैं। इस पारस्परिक विरोध का कारण भी यथा अवसर संकेत रूप में बता दिया गया है। यद्यपि वंकिम ने कृष्ण के मानवी चरित्र की समालोचना करने का बीड़ा उठाया है, परन्तु उनके अवचेतन में कृष्ण के अवतारी रूप की भी छाया विद्यमान है। उन्होंने यह कहीं अस्वीकार नहीं किया कि वे कृष्ण को ईश्वर नहीं मानते। बस, यह द्वैध विश्वास ही इस वदतो व्याघात दोष को उत्पन्न करने का कारण है। कृष्ण के स्वाभाविक और मानवी चरित्र का विश्लेषण करने वाला वंकिम एक ओर तो महाभारत के प्रक्षिप्त अंशों और पुराणों की अविश्वसनीय मन गढ़न्त कथाओं को अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये अनुपयुक्त समझता है और दूसरी ओर कृष्ण को ईश्वर मानने के कारण इन्हीं काल्पनिक आख्यायिकाओं की दार्शनिक और आध्यात्मिक दृष्टि से संगति लगाने का यत्न करता है। वंकिम की इस परस्पर विरोधी विश्लेषण पद्धति का दिग्दर्शन कराने के लिये ही ये पंक्तियां लिखी जा रही हैं। ५

घटोत्कच और जयद्रथ वध का वर्णन हो चुका है। इसमें क्षेपककारों के रचनाकौशल और मिश्रण की चातुरी की ओर भी संकेत किया जा चुका है। वंकिम ने भी इसे मूल महाभारत का अंश न मानकर दूसरी तह के कवियों की कृति माना है। अब अवतार वाद की प्रतिष्ठा रखने के लिये वंकिम ने इन दूसरी तह के कवियों की इन अनुचित कार्य वाहियों का भी औचित्य सिद्ध

करने के लिये एक सम्पूर्ण अध्याय की रचना की है। उनके कथन का सारांश यह है—

"हिन्दुओं के मत से ईश्वर ही जगत् है उसने लीला के लिये यह जगत् बनाया है। जगत् उससे अलग नहीं है। उसी का अंश है। उसने अपनी सत्ता को अविद्या से ढक लिया है, इसी से वह सुख, दुःख और पाप, पुण्य का आधार हुई है। सुख, दुःख और पाप पुण्य उसी से निकले हैं। उसकी माया से दुख मिलता है और उसी की माया से लोग पाप करते हैं। दुख जगदीश्वर का प्रेरित है, उसके सिवा दुख का और दूसरा कोई कारण नहीं है। पाप बुद्धि जगदीश्वर की प्रवर्तित है। दूसरी तह के कवि इसी तत्व की अवतारणा में भीतर ही भीतर लगे थे।*

आगे चल कर बंकिम पुन. लिखते हैं, "ईश्वर ही सब है और और उससे ही सब कुछ हुआ है। उसी से ज्ञान और उसी से ज्ञान का अभाव या भ्रान्ति निकली है। उसी से बुद्धि और उसी से दुर्बुद्धि आई है। उसी से सत्य और उसी से असत्य पैदा हुआ है। उसी से न्याय और उसी से अन्याय उत्पन्न हुआ है ज्ञान, बुद्धि, सत्य और न्याय उसी से निकले हैं, यह समझाने की जरूरत नहीं हाँ, भ्रान्ति, दुर्बुद्धि, आदि भी उसी से निकले हैं, यह अच्छी तरह समझाने की जरूरत है।" वह जयद्रथ बध में दिखलाते हैं कि भ्रान्ति ईश्वर प्रेरित है, घटोत्कच बध में दिखाते हैं कि दुर्बुद्धि भी उसी की प्रेरित है और दुर्योधन बध में दिखावेंगे कि अन्याय भी वहीं से आया है।†

* कृष्ण चरित्र पृ० ४१६-४१८

† कृष्ण चरित्र पृ० ४१९-४२०

बंकिम के मन्तव्य को पाठकों को भली प्रकार हृदयंगम कराने के लिये ही इतना लम्बा उद्धरण देने की आवश्यकता पड़ी है। अब इसकी आलोचना में कुछ बातें लिखी जाती हैं। प्रथम तो बंकिम का कथन ही सर्वांश में सत्य नहीं है कि हिन्दुओं के मत में ईश्वर ही जगत् है। चाहे थोड़े से इनेगिने अद्वैत मतावलम्बी वेदान्तियों को यह अभिमत क्यों न हो, इसे सारे हिन्दुओं का मत बताना अन्याय होगा। रामानुज, मध्व, निम्बार्क आदि अनेक दार्शनिक इस सिद्धान्त से असहमत हैं। वेद प्रतिपादित प्राचीन आर्य धर्म से तो यह सिद्धान्त निश्चित ही प्रतिकूल है। यहाँ ईश्वर, जीव और जगत् की त्रिविध सत्ताओं के पृथक निर्देश का उल्लेख मिलता है।* ईश्वर चेतन है और जगत् जड प्रकृति का परिणाम है, ईश्वर आनन्द स्वरूप है और जगत् में न चैतन्य है और न आनन्द। बंकिम का मत शांकर मतानुयायियों को मान्य हो सकता है, परन्तु उनको छोड़कर भी हिन्दुओं में विशिष्टाद्वैतवादी, द्वैतवादी आदि अनेक दार्शनिक सम्प्रदायों के अनुयायी लोग हैं, जिनको यह मत कदापि स्वीकार नहीं हो सकता। अतः नवीन वेदान्तियों के हेत्वाभास युक्त असत्य कथन के आधार पर निर्विकार, निर्लेप ईश्वर को दुःख, पाप, दुर्बुद्धि, भ्रान्ति, असत्य और अन्याय का कारण बताना विडम्बना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

अवश्य ही जीव में दुःख, पाप, दुर्बुद्धि, भ्रान्ति आदि दुर्गुण रहते हैं, परन्तु इसका कारण है उसका अल्पज्ञ और अल्प शक्ति वाला होना। यदि दुर्गुण, दुर्व्यसन, अन्याय और अत्याचार भी ईश्वर प्रेरित समझे जांय तो नैतिकता और आचार शास्त्र (Ethics)

* द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्ष परिषस्व जाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति॥
ऋ० १।१६४

का तो दिवाला ही निकल जायगा। चोर अपनी चोरी के दुष्कर्म को ईश्वर प्रेरित बतायगा और व्यभिचारी तथा दुराचारी भी अपने दोषों के लिये ईश्वर को ही उत्तरदायी ठहरायेंगे। फिर न्यायालय द्वारा उन्हें दण्ड देने में भी कोई औचित्य नहीं रह जायगा। बंकिम का यह विचित्र तर्क न तो उनके ईश्वर की ही प्रतिष्ठा बढ़ाता है और न उससे कृष्ण चरित की ही किसी महत्ता का उद्घाटन होता है। केवल अवतारवाद को प्रश्रय देने के लिये ही जिन घटनाओं को वे मिथ्या और कल्पनाप्रसूत कह चुके हैं, उनकी ही वकालत करना बुद्धिमत्ता कैसे कही जा सकती है ?

घटोत्कच वध के प्रकरण में भी बंकिम कुछ इसी प्रकार की बात करते हैं, "बुद्धि ईश्वर प्रेरित है और दुर्बुद्धि भी ईश्वर प्रेरित है, बस यही कवि कहना चाहता है। कर्ण ने अर्जुन' के मारने के लिये इन्द्र की शक्ति उठा रखी थी, पर पीछे घटोत्कच पर चला दी। यह उसकी दुर्बुद्धि थी। कृष्ण कहते हैं कि यह मेरा काम था, अर्थात् दुर्बुद्धि ईश्वर प्रेरित है।" * यह। सब लिख कर अन्त में कह दिया, "यह सब बातें दूसरी तह की हैं।"† अब इसे क्या कहा जाय ? एक ओर तो वैदिक धर्म में गायत्री मंत्र द्वारा सद् बुद्धि की प्रार्थना की गई है और ईश्वर से कहा गया है कि वह हमारी बुद्धियों को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करे दूसरी ओर बंकिम कहते हैं दुर्बुद्धि ईश्वर प्रेरित है। इस कथन पर भी दृढ़ नहीं रहते और कह देते हैं यह सब कवियों की कल्पना है। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि बंकिम का यह सारा लेख ही परस्पर विरुद्ध, असंगतियों से परिपूर्ण है अतः अमान्य है।

◆◆

* कृष्ण चरित्र पृ० ४२५

† कृष्ण चरित्र पृ० ४२६

३५. द्रोण वध

द्रोणाचार्य के वध की लोक प्रचलित कथा निम्न लिखित है—दस दिन तक भीष्म ने कौरवों का सेनापतित्व किया और पाँच दिन तक द्रोण ने। अन्तिम ५ दिनों में द्रोण का पराक्रम और शौर्य पाण्डवों के लिये अत्यन्त हानिकर सिद्ध हुआ। अन्त में आचार्य को मार डालने का उपाय सोचा जाने लगा। प्रचलित महाभारत कथा में द्रोण को मरवाने का कलंक कृष्ण पर ही लगाया गया है। कृष्ण ने पाण्डवों से कहा, यदि द्रोण युद्ध भूमि में स्थिर रहे तो इन्द्र भी उन्हें पराजित करने में समर्थ नहीं है। अतः तुम लोग धर्म युद्ध त्यागकर ऐसा उपाय अवलम्बन करो जिससे तुम्हारा नाश न हो। उन्होंने उपाय भी बताया। निश्चय है कि अश्वत्थामा का मरना सुनकर द्रोणाचार्य युद्ध करने में समर्थ न होंगे, इससे कोई पुरुष उनके समीप जाकर अश्वत्थामा के मरने का समाचार सुनाये।"*

कृष्ण के चरित्र पर इससे घोर लांछन और क्या हो सकता है? जिस महापुरुष ने आजन्म धर्माचरण किया और सत्य का व्रत पालन किया आज वही यह परामर्श दे रहा है कि अधर्म से असत्य बोलकर द्रोण को परास्त करो। इसी से सिद्ध होता है कि महाभारत में बहुतों का हाथ है। अर्जुन ने कृष्ण के इस परामर्श को स्वीकार नहीं किया, परन्तु युधिष्ठिर ने कर लिया। भीम ने तुरन्त कृष्ण के इस लज्जाजनक प्रस्ताव को कार्यरूप में परिणित करने का बीड़ा उठाया। वह तुरन्त एक अश्वत्थामा नाम के प्रसिद्ध हाथी को मार आया और द्रोण के पास जाकर लज्जावनत

* द्रोण पर्व अ० १८८

मस्तक होकर कहने लगा कि अश्वत्थामा मारा गया। आचार्य ने यह सुनकर एकक्षण के लिये सोचा, परन्तु अपने पुत्र के बल का स्मरण कर उन्हें इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। वे पुनः उत्साह से युद्ध में लग गये।

द्रोणाचार्य को क्षत्रियों के वध में प्रवृत्त देखकर और उन्हें युद्ध से उपरत करने की इच्छा से प्रवृत्त होकर विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज आदि ऋषि वहाँ उपस्थित हुए और द्रोण से बोले, "हे द्रोण तुम अधर्म से युद्ध कर रहे हो, अब तुम्हारा मरणकाल उपस्थित हुआ है। अब शस्त्रास्त्रों को त्यागकर हमारी ओर देखो, तुम्हें यह क्रूर कर्म नहीं करना चाहिये। तुम जो अस्त्र विद्या न जानने वाले पुरुषों को ब्रह्मास्त्र से भस्म कर रहे हो यह तुम्हारा कार्य श्लाघनीय नहीं है।"*

ऋषियों के इन वचनों को सुनकर और अपने शत्रुपुत्र धृष्टद्युम्न को सम्मुख देखकर द्रोण का युद्ध से मन हट गया और उन्होंने युधिष्ठिर से अपने पुत्र अश्वत्थामा के विषय में यह जानना चाहा कि वह जीवित है अथवा भीमसेन के कथनानुसार मारा गया। द्रोणाचार्य का यह दृढ़ विश्वास था कि सत्यवादी युधिष्ठिर त्रिकाल में भी मिथ्या बात नहीं कहेंगे। यहाँ कृष्ण को फिर लपेटा गया है। कृष्ण ने युधिष्ठिर को असत्य भाषण के लिये उकसाते हुए कहा कि द्रोणाचार्य यदि क्रुद्ध होकर आधे दिन भी युद्ध करेंगे तो तुम्हारी सम्पूर्ण सेना का नाश हो जायगा। अत द्रोणाचार्य से अपनी सेना की रक्षा करने के लिये तुम्हें असत्य वचन कहना ही पड़ेगा। भीमसेन ने भी इसका समर्थन किया। धर्मराज पहले तो धर्मसंकट में पड़कर असत्य भाषण की कल्पना से ही भयभीत होने लगे,

* द्रोण पर्व अ० १८९।

परन्तु इस असत्य को भी कृष्ण प्रेरित (भगवत् प्रेरित बंकिम के अनुसार) समझकर द्रोण के समीप गये और मन में हाथी का नाम लेकर प्रकाशरूप में अश्वत्थामा मारे गये, यह वचन कहा।' महाभारतकार कहते हैं कि पहले सत्यवादिता के कारण राजा युधिष्ठिर के रथ के पहिये पृथ्वी से चार अंगुल ऊपर रहते थे, परन्तु अब मिथ्यावादी हो जाने के कारण उनका रथ भूमि को स्पर्श कर चलने लगा।"*

धर्मराज का यह कथन सुनकर द्रोणाचार्य पुत्र शोक से व्याकुल हो गये और उन्होंने अपने जीवन की आशा छोड़ दी। वे इतने हताश हो गये कि अपने ऊपर आनेवाले अस्त्रों के प्रतिकार में भी अपने आपको असमर्थ अनुभव करने लगे। उसी समय भीमसेन पुनः उनके रथ के समीप आकर बोलने लगे—"यदि अस्त्र शास्त्रों की शिक्षा जानने वाले अधम ब्राह्मण अपने जातीय कर्तव्य कर्मों के अनुष्ठान से विरत होकर युद्ध न करते तो क्षत्रियों के कुल का कभी नाश नहीं होता। हे ब्राह्मण, सर्व शास्त्रों में अहिंसा को ही पण्डितों ने श्रेष्ठ कर्म कहा है। ब्राह्मण ही मुख्यतया उस धर्म के आचरण करने वाले हैं। परन्तु अत्यन्त शोक की बात है कि उन्हीं ब्राह्मणों के अग्रगण्य होकर भी आप म्लेच्छ की तरह एक पुत्र के लिये इस प्रकार प्राणियों का नाश कर रहे हैं और जिसके लिये आप इतना प्राणिवध रूपी पाप संचय कर रहे हैं वह आपका पुत्र अश्वत्थामा आज मर कर पृथ्वी पर शयन कर रहा है।"†

भीम के वचनों को सुनकर द्रोण का रहा सहा धैर्य भी लुप्त हो गया और उन्होंने अपने धनुष को फेंककर कौरव पक्ष के कर्ण,

* द्रोण पर्व अ० १८९।

† द्रोणपर्व अ० १९०।

ष्टप, दुर्योधन आदि नेताओं को युद्ध का भार सम्हालने के लिये कहा। तदनन्तर विरक्त भाव से बैठकर योगयुक्त पुरुष की भाँति परमात्मा का ध्यान करने लगे। इस प्रकार ध्यानावस्थित होकर आचार्य द्रोण ने अपने प्राणों को योग बल से शरीर से निकाल दिया। इसी समय धृष्टद्युम्न आगे बढ़ा और उसने तलवार से आचार्य का सिर काट लिया।*

स्थूल रूप से यह वर्णन महाभारत के कुछ अध्यायों का साराश है जिसमें द्रोणवध की कथा कही गई है। बंकिम ने इसमें अनेकानेक असगतियाँ ढूँढ निकाली हैं। उनके विवेचन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि यदि इस वृत्तान्त को सत्य मानें तो इसमें कृष्ण, भीम, युधिष्ठिर आदि जो भी शामिल थे, वे सभी इस गुरुहत्या के पाप के भागी ठहरते हैं। कृष्ण इस पापाचरण के अगुआ सिद्ध होते हैं क्योंकि उन्होंने ही अधर्म से द्रोण को मारने और युधिष्ठिर को मूठी साची देने का परामर्श दिया। युधिष्ठिर के लिये लिखा है कि इसी चणिक अनृत भाषण के कारण उन्हें चण भर के लिये नरक में जाना पडा था, परन्तु गुरुहत्या जैसे भयकर पाप को देखते हुए यह दण्ड अत्यन्त तुच्छ मालूम होता है। अस्तु।

कृष्ण चरित्र का कलकित करने वाले इस भयकर लाछन का परिमार्जन करना बंकिम न नितान्त आवश्यक समझा क्योंकि उनकी दृष्टि में वृन्दावन की गोपियों और "अश्वत्थामा हत इति गज" इन दो बातों से ही कृष्ण पर गहरा कलक लगता है।† इस घटना को अप्रामाणिक सिद्ध करने के लिये बंकिम ने निम्न प्रमाण दिये हैं ‡

* द्रोण पर्व अ० १९०।

† कृष्ण चरित्र पृ० ४३२

‡ कृष्ण चरित्र पृ० ४३३।से ४४३

(१) जैसा कि बंकिम ने कृष्ण चरित्र के आलोचन के नियम बनाते समय कहा था कि श्रेष्ठ कवियों के कहे हुए चरित्र सब अशों में सुसंगत होते हैं। यदि कहीं उसमें अन्तर पडे तो उसके प्रक्षिप्त होने का सदेह होगा। इस नियम के अनुसार इस घटना की जांच कीजिये। यहाँ भीम, युधिष्ठिर और कृष्ण तीनों के चरित्र में असंगति है। युधिष्ठिर को यहाँ हम असत्यवादी के रूप में देखते हैं। भीम जैसे बाहुबल के धनी के लिये यह लिखना कि वह छल कपट और धोखे से द्रोण को मारना चाहता था उसके चरित्र पर सबसे बड़ा विद्रूप है। कृष्ण के चरित्र में तो असगति की पराकाष्ठा है। इस घटना का उक्त पात्रों के मौलिक चरित्र से कोई मेल न होने के कारण इसे सत्य नहीं माना जा सकता।

(२) क्षेपक छाँटने का दूसरा नियम यह है कि यदि दो परस्पर विरोधी घटनायें मिलें तो उनमें से एक को अवश्य क्षेपक मानना पड़ेगा। यहाँ भी द्रोणवध का कारण बनने वाली दो घटनायें बड़ी असगढ रीति से मिला दी गई हैं। एक है अश्वत्थामा हाथी वाली बात, जिसे सुनकर द्रोण का हताश होना बतलाया गया है और दूसरी है ऋषियों की धिक्कारभरी फटकार, जिससे आचार्य को विराग हो गया। ऋषियों की इस फटकार को सुनकर भी द्रोण न हथियार नहीं रक्खे, वस्तुत वे भीम की धिक्कार को सुनकर ही युद्ध से पृथक हुये। अत द्रोण की मृत्यु के इन दो सर्वथा पृथक् विवरणों में से किसी एक को मिथ्या अवश्य मानना पड़ेगा और इनमें से अश्वत्थामा हाथी के मारे जाने का वृत्तान्त ही क्षेपककार की करतूत सिद्ध होती है, क्योंकि यही घटना युधिष्ठिर, भीम और कृष्ण के मौलिक चरित्र के भी विरुद्ध पड़ती है।

(३) अश्वत्थामा की मृत्यु की घटना की अविश्वसनीयता का और भी कारण है। प्रथम तो द्रोण को अपने पुत्र की मृत्यु का

विश्वास होना ही कठिन था, द्वितीयतः वह इतना मूर्ख नहीं था कि बिना उसकी पूरी जानकारी प्राप्त किये यों ही आत्महत्या के लिये तैयार हो जाता। यदि द्रोणाचार्य किसी व्यक्ति को इस बात का पता लगाने के लिये भेजते तो कृष्ण की इस चालाकी का अवश्य भण्डा फोड़ हो जाता। अतः यह कथा क्षेपक सिद्ध होती है। यदि अश्वत्थामा की मृत्यु की कथा मिथ्या है तो कोई आवश्यक नहीं कि ऋषियों के रण भूमि में आने और उनके द्वारा धिक्कृत होने से द्रोण का आत्महत्या के लिये तैयार होने की घटना को अर्थापत्ति से सत्य सिद्ध किया जाय, क्योंकि ऋषियों का तो वहाँ आना ही असम्भव है।

(४) अनुक्रमणिकाध्याय को भी देखना चाहिये। वहाँ द्रोण के मरने पर धृतराष्ट्र इतना ही कहते हैं कि जब धृष्टद्युम्न ने योगाभ्यास में बैठे हुये द्रोणाचार्य को रथ पर मार डाला तो मुझे पाण्डवों की जय में कोई संदेह नहीं रहा। यहाँ भी यही कहा गया कि द्रोण बध का निन्दनीय कार्य धृष्टद्युम्न के अधर्माचरण से ही हुआ, अर्थात् उसने ही योगावस्था में स्थित आचार्य को मार डाला। वे योग स्थित क्यों हुये, यह एक पृथक् प्रश्न है।

(५) पर्व संग्रहाध्याय में केवल "द्रोणे युधि निपातिते" के अतिरिक्त कुछ नहीं है। वहाँ मरे हाथी की चर्चा नहीं है।

(६) द्रोणपर्व के ७ वे ८ वें अध्याय में जहाँ द्रोण के युद्ध का संक्षिप्त वर्णन है, इस धोखेबाजी का कुछ भी जिक्र नहीं है।

(७) आश्वमेधिक पर्व में कृष्ण के द्वारिका आने पर जब वसुदेव ने उनसे युद्ध का वृत्तान्त पूछा तो उन्होंने उसका संक्षेप मे वर्णन किया। यहाँ द्रोण बध के सम्बन्ध में उन्होंने इतना ही कहा कि द्रोण और धृष्टद्युम्न की लड़ाई पाँच दिन तक हुई। द्रोण लड़ते लड़ते

थक गये और धृष्टद्युम्न के हाथों मारे गये। द्रोण वध का यही सत्य कारण प्रतीत होता है।

इस प्रकार द्रोण वध से सम्बन्धित प्रचलित कथा को असत्य ठहराकर भी बंकिम यही राग अलापते हैं कि इस कथा से यह सिद्ध होता है कि सत्य और असत्य दोनों ईश्वर प्रेरित हैं।* इसकी समीक्षा पूर्वाध्याय में की जा चुकी है।

◆◆

३६. अर्जुन का धर्म संकट

द्रोण के मरने पर कर्ण कौरव सेना का तृतीय सेनापति नियुक्त हुआ। उसने घनघोर युद्ध द्वारा पाण्डव सेना का नाक में दम कर दिया। दुर्भाग्यवश उस दिन युधिष्ठिर उससे मोर्चा लेने गये थे। कर्ण ने जब युद्ध में उनके दाँत खट्टे कर दिये तो वे मैदान छोड़कर शिविर में आ गये। इधर जब अर्जुन ने युधिष्ठिर को युद्ध क्षेत्र में नहीं देखा तो वह घबराया। उसने भीमसेन से भी उनके बारे में पूछा, परन्तु कुछ पता नहीं लगा। अतः वह स्वयं महाराज युधिष्ठिर का पता लगाने शिविर में आया।

युधिष्ठिर अपने परास्त हो जाने के कारण बड़े दुःखी थे। वे यही सोच रहे थे कि अर्जुन तो निश्चय ही कर्ण को मारकर लौटेगा। अब जब उन्होंने कृष्ण और अर्जुन को रणक्षेत्र से लौटकर आने के समाचार सुने तो वे कर्ण वध का समाचार सुनने के लिये बड़े उत्सुक हुये, परन्तु जब उन्हें यह पता चला कि कर्ण अभी तक जीवित है और अर्जुन तो उनकी कुशल जानने के लिये ही आये

* कृष्ण चरित्र पृष्ठ ४४१

दीं, तो उनके क्रोध का पारावार न रहा। उन्होंने अर्जुन को बहुत फटकारा और उसे कहा कि तू कुरुवंश का कलंक है। अर्जुन की भर्त्सना करते करते उनके मुह से यहाँ तक निकल गया कि तुम अपना गाण्डीव धनुप किसी अन्य बलशाली राजा को दे दो क्योंकि तुम्हारे जैसे रणाँगण को छोडकर आ जाने वाले व्यक्ति के हाथ में यह शोभा नहीं पाता।

युधिष्ठिर के मुंह से अपना यह अपमान सुनकर अर्जुन आपे से बाहर हो गया। उसने तुरन्त अपनी तलवार म्यान से बाहर निकाल ली और बड़े भाई को मारने पर उतारू हो गया। कृष्ण ने अर्जुन का जब यह क्रोधावेश और उसके फलस्वरूप होने वाले भयंकर परिणाम का अनुमान लगाया तो उन्हे बडी चिन्ता हुई। उन्होंने उससे पूछा कि वह यह क्या कर रहा है। अर्जुन ने उत्तर दिया कि यह तो मेरी प्रतिज्ञा है। जो कोई मुझसे कहेगा कि अपना गाण्डीव दूसरे को दे दो, मैं उसका सिर उतार लूंगा। आज युधिष्ठिर ने हमसे यही कहा है, हम इन्हे कदापि क्षमा नहीं करेंगे। आज महाराज का वध मेरे हाथ से होना निश्चय है।

कृष्ण पहले तो अर्जुन की इस विचित्र प्रतिज्ञा को सुनकर चकराये। फिर उसे शान्त करते हुये बोले,* तुम्हे इतना शीघ्र क्रोध आ गया, इससे हमें जान पडता है कि तुमने वृद्धों की सेवा नहीं की। तुम्हारे सिवा और कौन ऐसा बुरा काम करने के लिये तैयार होगा। तुम धर्म के सिद्धान्तों से अनभिज्ञ हो अतः हमें मूर्ख के समान दिखाई देते हो। तुम्हे यह नहीं जान पडता कि मनुष्य को मारना सबसे बडा पाप है। हमारी सम्मति मे हिंसा ही सबसे बडा पाप है। चाहे मनुष्य झूठ बोल दे, परन्तु किसी की हत्या नहीं करे। सो तुम सब धर्मों को जानकर भी बडे भाई युधिष्ठिर

* कर्ण पर्व अ० ६९

को मारने के लिये कैसे उद्यत हो गये हो? तुमने यह प्रतिज्ञा बालक अवस्था में की थी, अब इसका पालन मूर्खता पूर्ण है। इससे ज्ञात होता है कि तुम धर्म की सूक्ष्म गति को नहीं जानते हो, अन्यथा अपने गुरुतुल्य अग्रज को मारने के लिये क्यों दौड़ते?

सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं है, परन्तु सत्य के तत्व को जानना बड़ा कठिन है। कहीं बात कहने से सत्य रहता है, कहीं न कहने से सत्य रहता है और कहने से झूठ हो जाता है। कहीं कहने से सत्य और न कहने से झूठ हो जाता है.... तुम धर्म और अधर्म का बिना निश्चय किये ही कर्म करते हो, इससे नरक में जाओगे। कोई महात्मा कहते हैं कि वेद धर्म का मूल है* कोई कोई कहते हैं कि जो तर्क से सिद्ध हो वही धर्म है,† परन्तु हम कहते हैं कि धर्म को जानना बहुत कठिन है। हम ऊपर कहे किसी लक्षण का खण्डन नहीं करते हैं, परन्तु यह अवश्य कहते हैं कि मनुष्यों की उन्नति के लिये ही ‡ मुनियों ने समय के अनुसार धर्म के लक्षण बना लिये हैं। हमारी बुद्धि में किसी की हिंसा न करना केवल यही धर्म है। मुनियों ने हिंसकों को हिंसा से बचाने के लिये ही धर्म के अनेक वचन लिख दिये हैं। जो धारण किया जाय अथवा प्रजा जिसे धारण करे वही धर्म कहाता है, इसलिये जो वस्तु या गुण धारण करने योग्य हो, वही धर्म ठहरी।.......मैंने तुम्हारे कल्याण के लिये अपनी बुद्धि के अनुसार धर्म के ये लक्षण कहे हैं। क्या अब भी तुम्हारी इच्छा युधिष्ठिर को मारने की है?"

कृष्ण का यह उपदेश अर्जुन के गले तो उतरा, परन्तु उसे

* वेदोऽखिलो धर्म मूलम्। मनु०

† यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेद नेतरः। मनु०

‡ यतो अभ्युदय निश्रेयस सिद्धिः स धर्मः। कणाद

इस बात का खेद था कि वह अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं कर सका। कृष्ण ने अर्जुन को संतुष्ट करने का भी उपाय ढूंढ़ निकाला। उन्होंने कहा कि कर्ण से त्रस्त होकर ही महाराज ने तुम्हें ये कटु शब्द कहे हैं, अत: उनको मारना कदापि योग्य नहीं है। परन्तु एक रास्ता है जिससे साँप भी मरे और लाठी भी नहीं टूटे। महाराज को मारने का कलंक भी तुम्हें नहीं लगेगा और तुम्हारी प्रतिज्ञा भी पूरी हो जायगी। उत्तम पुरुष जब तक आदर्श से जिये तब तक ही उसका जीना सार्थक है और जिसका निरादर हो गया, उसे मृत ही समझना चाहिये। इस नियम के अनुसार तुमने जो कटु शब्द महाराज के प्रति कहे हैं उनसे इनका मरण हो गया, और भी इनको जो कुछ कहना हो कहलो। तुम इन्हें "आप" के स्थान पर "तुम" कह कर पुकार लो, बस इतने से ही ये मर जायेंगे।"

अर्जुन को यह बात उचित प्रतीत हुई। उसने जी भर युधिष्ठिर की बुराई की*, परन्तु तुरन्त पश्चात् ही घबरा कर और अप्रतिभ हो कर चुप हो गया। उसे अपने बड़े भाई को बुरा भला कहने का अत्यन्त खेद हुआ, और इसका प्रायश्चित करने के लिये उसने अपनी खड्ग निकाली और आत्महत्या के लिये उतारू हो गया। कृष्ण विचित्र स्थिति में पड़े। अर्जुन से फिर पूछा, 'भाई, अब यह क्या करने जा रहे हो?" अर्जुन ने उत्तर दिया, मैंने धर्मराज को दुर्वाक्य कह कर उनका अपमान किया। यह बड़ा भारी पाप हुआ है। इसके प्रायश्चित स्वरूप ही मैं अपनी हत्या कर रहा हूँ। इस पशोपेश की हालत को कैसे दूर किया जाय? उन्हें एक उपाय सूझ गया। उन्होंने अर्जुन से कहा कि यदि तुम इसे अपराध समझते हो और स्वयं को दण्ड देना चाहते हो तो आत्म प्रशंसा

* कर्ण पर्व अ० ७०

कर लो, क्योंकि अपने मुंह से अपनी प्रशंसा करना सज्जनों के लिये मृत्यु तुल्य है। कृष्ण का यह उपाय भी अर्जुन को भा गया। उसने जी खोल कर आत्मश्लाघा करली।

इस प्रकार कृष्ण महाराज दोनों भाइयों के छोटे बालकों की तरह रूठने और मनाने के अभिनय को देखते रहे। अर्जुन को पश्चात्ताप करते देख कर स्वयं युधिष्ठिर भी पिघल गये और आत्म-निंदा करते हुये कहने लगे कि मैं स्वयं ही राजा बनने के अयोग्य हूँ। तुम लोग मेरे स्थान पर भीमसेन को राजा बनाओ। मुझे मार डालो अथवा मैं ही सन्यासी बन कर वन में चला जाऊँगा। यह और नई आफत आ गई। युधिष्ठिर को जब वैराग्य का भूत सताने लगता था तो वह सबसे भयकर होता था। कृष्ण ने पुनः उन्हें समझाया और दोनों भाइयों के हृदय में जो वैमनस्य और ग्लानि के भाव आ गये थे उसे उन्होंने अपने नम्र और सौजन्यपूर्ण व्यवहार से दूर किया।

३७. कर्ण वध

कर्ण और अर्जुन दोनों ही टक्कर के योद्धा थे। दोनों ने एक दूसरे को मारने की प्रतिज्ञा कर रक्खी थी। कुन्ती ने एक बार कर्ण को उसके जन्म का वृत्तान्त बताकर उसे पाण्डव पक्ष में सम्मिलित होने का आग्रह किया था, परन्तु जब उसने उसकी प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया तब उसने कर्ण को अपूर्व योद्धा जानकर और यह सोच कर कि यह मेरे पुत्रों को मार डालेगा, उससे अपने पाँचों पुत्रों के प्राणों की भिक्षा माँगी। इस पर कर्ण ने उसे यह आश्वासन दिया कि वह अर्जुन को छोडकर और किसी

को नहीं मारेगा। अर्जुन के साथ युद्ध करने में या तो वह खुद ही अर्जुन के हाथों मारा जायगा, अथवा वह अर्जुन को ही मार डालेगा। प्रत्येक अवस्था में कुन्ती के पाँच ही पुत्र शेष रहेंगे, या तो कर्ण को मिलाकर और अर्जुन को छोड़कर पाँच, या कर्ण के अतिरिक्त पाँच।

समय आने पर अर्जुन और कर्ण का घोर युद्ध हुआ। उसका विस्तृत वर्णन करने का प्रसंग और अवकाश यहाँ नहीं है। केवल युद्ध का अत्यन्त महत्व पूर्ण भाग का ही यहाँ विश्लेषण उपस्थित किया जायगा। युद्ध के आखिरी दौरान में कर्ण के रथ का पहिया पृथ्वी में धँस गया। अब कर्ण रथ के नीचे उतरा और हाथ के बल से पहिये को बाहर निकालने लगा। इस समय अर्जुन ने कर्ण को मारने का अच्छा अवसर देखा और उसने धनुष पर बाण चढ़ाया ताकि कर्ण को समाप्त करदे। परन्तु कर्ण ने उसे तब तक ठहरने की प्रार्थना की जब तक कि वह पहिया निकाल न ले। अर्जुन ने कर्ण का यह आग्रह स्वीकार भी कर लिया, परन्तु अर्जुन से बाण न चलाने की प्रार्थना करते समय कर्ण ने यह कहा कि इस समय मुझे अवसर देना तुम्हारा धर्म है। उसके वास्तविक शब्द यह थे, "प्रारब्ध से ही पृथ्वी में मेरे रथ का पहिया धस गया है, अतः जब तक मैं पहिये को न निकाल लूं तब तक बाण मत छोड़ो। इस समय बाण चलाना तुम्हारी कापुरुषता होगी। तुम जगत्प्रसिद्ध महावीर हो, अतः ऐसा नपुंसक कर्म मत करो।"*

अधर्मी कर्ण के मुँह से जब यह धर्म की दुहाई कृष्ण ने सुनी तो उनसे नहीं रहा गया। उन्होंने रथ में बैठे ही बैठे कर्ण से कहा, "हे राधा पुत्र, तुमने आज प्रारब्ध से ही धर्म का स्मरण किया है।

* कर्ण पर्व अ० ९०

तुम्हारे समान नीच मनुष्य आपत्ति में ही प्रारब्ध की निंदा और धर्म का स्मरण करते हैं। हे कर्ण, जिस समय शकुनि ने एक वस्त्र वाली द्रौपदी को सभा में बुलाया था, तब तुमने धर्म नहीं समझा था? जब जुआ न जानने वाले महाराज को शकुनि ने दुष्टता से सभा में जीता था, तब तुम्हारा धर्म कहाँ गया था? हे कर्ण, जब १३ वर्ष वनवास में रह कर पाण्डव आये तो भी तुमने उनको राज्य नहीं दिया, तब तुम्हारा धर्म कहाँ रहा? जब तुम्हारी सम्मति से दुर्योधन ने भीमसेन को विष खिला कर नदी में डाल दिया था, तब तुम्हारा धर्म कहाँ गया था? हे राधा पुत्र, जब वारणावत नगर में लाख के घर में तुमने सोते हुये पाण्डवों को जलाया था, तब तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था? हे कर्ण, जब दुःशासन से पकड़ी हुई द्रौपदी को देख कर तुम हसे थे, तब तुम्हारा धर्म कहाँ चला गया था? हे राधा पुत्र, जब सभा में रोती हुई द्रौपदी को देख कर सब दुष्ट हंस रहे थे, और तुमने कुछ बल नहीं किया था, तब तुम्हारा धर्म कहाँ गया था? जब तुमने द्रौपदी से कहा था, कि हे गजगामिनि, पाण्डव नष्ट हो गये, इन्हें घोर दुःख भोगना पड़ेगा इसलिये तुम दूसरा पति करलो, तब तुम्हारा धर्म कहाँ गया था?

पांचाली के सहित पाण्डव अपने बाहुबल से शत्रुओं का नाश कर राज्य प्राप्त करेंगे।"

कृष्ण के इन मन्युयुक्त वचनों को सुन कर कर्ण का सिर लज्जा से नत हो गया। वह पुनः धनुष उठा कर अर्जुन से युद्ध करने लगा और लड़ते २ मारा गया।

३८. दुर्योधन वध

कर्ण के अनन्तर मद्रराज शल्य कौरव सेना का सेनापति बना। वह महाराज युधिष्ठिर के हाथों मारा गया। अब कौरव पक्ष लगभग समाप्त हो चुका था, केवल अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कृतवर्मा और स्वयं दुर्योधन, ये चार पुरुष ही बच रहे थे। दुर्योधन मृत्यु के भय से एक तालाब में छिप गया। पाण्डवों ने उसे ढूंढ़ निकाला और युद्ध के लिये ललकारा। दुर्योधन ने कहा, वह तो युद्ध से थक कर विश्राम के लिये ही यहाँ बैठा है। युधिष्ठिर ने पहले तो दुर्योधन को बहुत बुरा भला कहा, परन्तु अन्त में उसके यह कहने पर कि वह अकेला इतने महारथियों का सामना कैसे कर सकता है, उसने दुर्योधन को यह छूट दे दी कि वह मनचाहा शस्त्र लेकर ५ पाण्डवों में से *किसी एक के साथ युद्ध करे। यदि वह इस युद्ध में भी जीत गया तो वह राज्य का स्वामी होगा, अन्यथा मरकर स्वर्ग जायगा।

युधिष्ठिर की इस उदारतापूर्ण मूर्खता से दुर्योधन को मनचाही बात मिल गई। वह तुरन्त गदा लेकर बाहर निकल आया और गदा युद्ध के लिये पांडवों को ललकारने लगा।❀ श्रीकृष्ण को

* शल्य पर्व अ० ३२

युधिष्ठिर की यह बात मूर्खता बहुत बुरी लगी और उन्होंने इसे फटकारते हुए कहा कि हममें भीमसेन के अतिरिक्त कोई नहीं है, जो गदायुद्ध मे दुर्योधन को जीत सके। तुमने यह वचन देकर कि चाहे जिस पाडव से युद्ध करले, एक महान् भूल की है। यह तो एक दूसरा जुआ ही हो गया। दुर्योधन बडा चालाक और धूर्त है। गदा युद्ध में उसे जीतना पाण्डवों के लिये शक्य नहीं है। अन्त में महाराज ने क्रोधाविष्ट होकर यहाँ तक कह दिया कि पाण्डु और कुन्ती की सन्तान भीख माँगने और वन में फिरने के लिये ही उत्पन्न हुई हैं राज्य भोगने के लिये नहीं। यह हमें आज निश्चय हो गया।*

भीम ने कृष्ण और युधिष्ठिर को युद्ध में दुर्योधन को परास्त करने का आश्वासन दिया और उससे भिड गया। इसी समय बलराम भी आ गये। भीम और दुर्योधन दोनों ही गदा युद्ध में बलराम के शिष्य थे, पर उनका अधिक प्रेम दुर्योधन से ही था। युद्ध कई दिन तक लगातार चलता रहा, परन्तु उसमें किसी की जय पराजय के आसार दिखाई नहीं दिये। दोनों वीर बल में तुल्य थे।

यहाँ महाभारत में प्रक्षेप करने वालों की लेखनी ने फिर जोर मारा है। अर्जुन श्रीकृष्ण से पूछते हैं कि इन दोनों में कौन तेज है? श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया—"इन दोनों की विद्या तो समान ही है, परन्तु बल में भीमसेन अधिक हैं। दुर्योधन सावधान और चतुर है, इसलिये भीम धर्म युद्ध से इसे नहीं मार सकेंगे, परन्तु यदि अन्याय से युद्ध करें तो अवश्य विजयी हो सकेंगे। धर्मराज के अपराध से हम एक बार पुन संकट में पड गये हैं। अब यदि यहाँ

* शल्य पर्व अ० ३३

भीमसेन अन्याय से युद्ध नहीं करेंगे तो दुर्योधन अवश्य पुनः राजा हो जायगा।" * श्रीकृष्ण ने अर्जुन को भीम की उस प्रतिज्ञा का भी स्मरण दिलाया जो द्रौपदी के अपमान के समय उसने दुर्योधन की जंघाओं को तोड़ने के सम्बन्ध में की थी। इस कथन से कृष्ण का गूढ़ अभिप्राय समझ कर अर्जुन ने भीम को इशारा करते हुये, अपनी जंघा पर हाथ मारा। इस इशारे से भीमसेन समझ गये और उसने वेग से दुर्योधन की जंघा पर प्रहार किया, जिससे वह गिर पड़ा।

भीम ने दुर्योधन को अन्याय पूर्वक गिरा कर ही संतोष नहीं किया, वह भूमि पर गिरे हुये दुर्योधन के सिर को लातों से मारने लगा। युधिष्ठिर ने ऐसा करने से उसे रोका और दुर्योधन की सम्मानित दुखद मृत्यु पर शोक प्रकट करने लगे। † इधर दुर्योधन को अन्याय से मारा गया जान कर बलराम बड़े क्रोधित हुये और भीम को इस कुकृत्य के लिये धिक्कारने लगे। वे अपने प्रिय शिष्य की मृत्यु का बदला लेने के लिये भी उद्यत हुये और भीम को मारने के लिये दौड़े, परन्तु श्रीकृष्ण ने बीच-बचाव कर उन्हें शान्त किया। ‡ वे पुन द्वारिका लौट गये।

दुर्योधन को मरा जान कर पाण्डवों के हर्ष की सीमा न रही। उन्होंने खूब हर्ष मनाया और भीमसेन को उसके इस कृत्य के लिये साधुवाद दिया। वे भूमि पर गिरे हुए दुर्योधन को भी बुरा भला कहने लगे और उसे जली कटी सुना कर अपने मन का गुबार निकालने लगे। कृष्ण जैसे आदर्श पुरुष को भीम का यह

---

* शल्य पर्व अ० ५८

† शल्य पर्व अ० ५९

‡ शल्य पर्व अ० ६०

कृत्य उचित नहीं जान पड़ा कि युद्ध में पतित शत्रु को कटु वाक्य कह कर जलाया जाय। श्रीकृष्ण ने कहा, "मरे हुये शत्रु को वचनों से मारना उचित नहीं। यह पापी तो उसी समय मारा गया था, जब इसने लज्जा छोड़ दी। अब इस मूर्ख को कठोर वचन सुनाने से क्या लाभ ?" अब क्षेपककारों की लीला देखिये। इनकी कृपा से जिस कृष्ण ने भीम के कृत्य की निंदा की वह स्वय ही दुर्योधन को बुरा भला कहता है—"इस लोभी के सब पापी ही सहायक थे। यह मित्रों के वचन नहीं मानता था। कृप, द्रोण, विदुर, भीष्म आदि के अनेक बार समझाने पर भी इस नीच ने पाण्डवों को उनके पिता का राज्य नहीं दिया आदि।'

श्रीकृष्ण की इन बातों को सुन कर दुर्योधन ने जो उत्तर दिया वह और भी आश्चर्य में डालने वाला है, क्योंकि उससे कृष्ण चरित्र का लाछित होना स्वाभाविक है। उसकी सभी बातें यथार्थता के प्रतिकूल हैं। वह अभी तक मरा नहीं था, इसलिये श्रीकृष्ण को सुना कर कहने लगा,* "अरे कस के दास के दास, दुर्बुद्धि, पापी कृष्ण, तुझे कुछ भी लज्जा और घृणा नहीं है। तुमने ही भीमसेन को इशारा कर मेरी जघा तुड़वाई, तुम्हारी प्रेरणा से ही अर्जुन ने हजारों राजाओं को धर्म युद्ध करते हुये मारा। तुमने ही शिखण्डी को आगे कर पितामह को मरवाया। अश्वत्थामा के बहाने आचार्य के हथियार रखवा लिये और जब धृष्टद्युम्न ने उनको मार डाला तो तू कुछ नहीं बोला। तूने ही अर्जुन को मारने के लिये जो शक्ति कर्ण ने रख छोड़ी थी, वह घटोत्कच पर चलवा दी। तुमने ही रथ का पहिया उठाते कर्ण को मरवाया। तेरी ही सम्मति से भूरिश्रवा मारा गया। यदि तू यह अधर्म नहीं करता तो पाण्डव कभी विजयी नहीं हो सकते थे।"

* शल्यपर्व अ० ६१

दुर्योधन के इस मिथ्यालाप पर टिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि विगत अध्यायों में महाभारतीय युद्ध के आलोचनात्मक वर्णन को पढ़ने के पश्चात् दुर्योधन के इन आरोपों में किसी को सत्यता नहीं मिलेगी। अतः यह सारा प्रलाप क्षेपक कर्ताओं की कृपा है। कृष्ण चरित्र को कलंकित करने वाले ऐसे मिथ्या आक्षेप महाभारत में और कहीं भी नहीं हैं, शिशुपाल की गालियों में भी नहीं।

श्रीकृष्ण ने दुर्योधन की इन गालियों का जो क्षुद्रता पूर्ण उत्तर दिया वह और भी भयंकर है। कारण यह है कि श्रीकृष्ण महाराज की गम्भीरता और क्षमाशीलता के प्रसंग ऊपर आ चुके हैं। शिशुपाल की नीचता पूर्ण गालियों को भी उन्होंने भरी सभा में सहन कर लिया था। वे ही क्षमा की साक्षात् मूर्ति कृष्ण दुर्योधन की नीचता पूर्ण बातों का उसी निम्न स्तर पर उतर कर उत्तर देंगे, इस पर सहसा विश्वास नहीं होता।

कृष्ण का दुर्योधन को बुरा भला कहना ऐसी परिस्थिति में और भी अस्वाभाविक जान पड़ता है जब कि वह अपनी मृत्यु की बाट देख रहा था और रण भूमि में पड़ा २ अन्तिम सांसें ले रहा था। खैर, प्रक्षेप करने वाले जो कुछ लिखें, उनके लिये सब सम्भव है। उन्होंने कृष्ण के मुंह से दुर्योधन को भर पेट गालियें दिलवाई और अन्त में कहा कि अब अपने क्रिये का फल भोग।*

अब दुर्योधन के बोलने की बारी आई। उसने कहा, "हे कृष्ण, हमने विधि पूर्वक वेद पढ़े, समुद्र-पर्यन्त पृथ्वी का राज्य किया, शत्रुओं के सिर पर पैर दिया, हमारे समान महात्मा कौन होगा? महात्मा क्षत्रिय जिस प्रकार युद्ध में मरने की इच्छा करते हैं, उसी प्रकार हम मरे। देवताओं के योग्य भोगों को हमने

* शल्य पर्व अ० ६१

भोगा, अब हम अपने मित्र और भाइयों से स्वर्ग में जाकर मिलेंगे। तुम लोग शोक से व्याकुल होकर जगत में रह जाओगे।"

दुर्योधन का यह कथन भी विशेष आश्चर्य-जनक नहीं है, क्योंकि जो सर्वस्व हार चुका है, वह घोर निराशा की प्रतिक्रिया के रूप में कहे कि बाजी मैंने ही जीती है तो उसका यह कथन मनोविज्ञान के विरुद्ध नहीं है। दुर्योधन जैसे अहंकारी के लिये तो यह और भी सम्भव था। परन्तु घोर आश्चर्य तो तब होता है जब हम आगे महाभारत में पढ़ते हैं कि दुर्योधन के अपना कथन समाप्त करते ही आकाश से पुष्प वृष्टि होने लगी, गन्धर्व और अप्सरायें दुर्योधन का यश गाने लगे। दुर्योधन की इस यश गाथा को सुन कर श्रीकृष्ण और पाण्डव सभी लज्जित हो गये। भीष्म, द्रोण, कर्ण और भूरिश्रवा को अधर्म से मरा हुआ सुन कर सब लोग शोक से व्याकुल होकर सोच करने लगे।*

प्रक्षेपकारों ने यहाँ जो यह अप्रासंगिक चर्चा छेड़ी है उस पर बंकिम की टिप्पणी पठनीय है—"महाभारत के पापियों में जो सबसे अधम समझा गया है, उसके लिये यह साधुवाद! और जो धर्मात्माओं में श्रेष्ठ समझे गये हैं वह अपने पापों के लिये लज्जित हैं। महाभारत में यह अनोखी बात है। सिद्ध, अप्सरायें, गन्धर्व सब मिलकर कहते हैं कि दुरात्मा दुर्योधन धर्मात्मा है और कृष्ण पाण्डवादि महा पापात्मा हैं। यह बड़ी विचित्र बात है। क्योंकि इसका मेल महाभारत से कुछ भी नहीं है। सिद्ध तथा गंधर्वादि तो दूर रहे यदि कोई मनुष्य भी इस तरह प्रशंसा करे तो आश्चर्य होगा क्योंकि दुर्योधन का अधर्म और कृष्ण तथा पाण्डवों का धर्माचरण वर्णन करना ही महाभारत का उद्देश्य है। इस पर बुरा यह कि जब दुर्योधन से उन्होंने सुना कि भीष्म, द्रोण, कर्ण

* शल्यपर्व अ० ६१

और भूरिश्रवा अधर्म से मारे गये हैं तब वह लोग शोक करने लगे। अब तक मानों वह लोग कुछ जानते ही नहीं थे। परम शत्रु के कहने से भलेमानस की तरह शोक दिखलाने लगे। वह लोग जानते थे कि हम लोगों ने भीष्म या कर्ण को अधर्म से नहीं मारा है पर जब परम शत्रु दुर्योधन कह रहा है कि तुमने उन्हें अधर्म से मारा है तब भला वह विश्वास क्यों न करते? वह जानते थे कि हम लोगों में से किसी ने भूरिश्रवा को नहीं मारा है सात्यकि ने मारा है; बल्कि सात्यकि को श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीम ने रोका भी था, पर जब परम शत्रु दुर्योधन कहता है कि तुमने ही मारा है और तुमने ही अधर्म किया है, तब बेचारे पाण्डवों को लाचार हो अपना दोष मानना और अपने किये पर पछताना पड़ा।"*

बंकिम ने इस आलोचना का इन शब्दों में उपसंहार किया है—"पाठको, आप ही बतलाइये, भला ऐसी ऊँटपटांग बातों की मैं क्या आलोचना करूं? पर इस अभागे देश के लोगों का विश्वास है कि पुस्तकों में जो कुछ लिखा है वह ऋषि वाक्य है और शिरोधार्य है। इसलिये लाचार होकर मुझे यह भी झख मारना पड़ा।" †

प्रक्षेपकारों ने इतना लिख कर ही विश्राम नहीं लिया। उन्होंने आगे भी अपना कलम कुठार चलाया। अब उन्होंने लिखा— कृष्ण एक क्षण के लिये तो लज्जित हुये, पुनः अपनी दुष्कृतियों की निर्लज्जतापूर्ण प्रशंसा पाण्डवों के समक्ष करने लगे—"केवल धर्म युद्ध से आप लोग भी भीष्मादिक वीरों को नहीं मार सकते थे। मैंने यह सब छल कपट केवल आपके कल्याण के लिये ही किया और उसी से ये सब भीष्मादिक युद्ध में मारे गये। यदि मैं ऐसा

* कृष्ण चरित्र पृ० ४७९-४८०

† कृष्ण चरित्र पृ० ४८०

छल नहीं करता तो क्यों कर तुम्हारी विजय होती। भीष्म, द्रोण, कर्ण, भूरिश्रवा ये चारों महारथ और महात्मा थे, इनको धर्मयुद्ध में साक्षात् लोकपाल भी नहीं जीत सकते थे। और गदाधारी दुर्योधन को भी गदा युद्ध में साक्षात् यमराज भी नहीं मार सकते थे। आप लोग इसका कुछ भी विचार न करें।"*

जैसा कि बंकिम ने ठीक ही कहा है, इस प्रकार की व्यर्थ, बे सिर पैर की बातों की आलोचना व्यर्थ है। जब यह सिद्ध हो चुका कि युद्ध में कृष्ण ने कोई अधर्म युक्त कार्य नहीं किया तो फिर क्षेपककारों के विपरीत कहने से कुछ लाभ नहीं। बंकिम के मत से यह कृष्णद्वेषी तीसरी तह के कवियों की करतूत है।†

◆◆

३६. युद्ध की समाप्ति

दुर्योधन को वहीं युद्धभूमि में आहत अवस्था में छोड़ कर पाण्डव गण अपने डेरों में लौट आये। कृष्ण ने पहले अर्जुन को रथ से उतरने के लिये कहा और उसके उतरने के पश्चात् स्वयं उतरे। लिखा है कि उनके उतरते ही वह रथ जल कर राख हो गया।‡ इस घटना से आश्चर्य युक्त होकर जब अर्जुन ने पूछा तो कृष्ण ने कहा कि यह रथ तो कर्ण, द्रोणाचार्य आदि के ब्रह्मास्त्रों से पहले ही जल चुका था, परन्तु मैं बैठा था, इसलिये उसका प्रभाव दिखाई नहीं दिया। अब मेरे उतरते ही उसकी यह

* शल्य पर्व अ० ६१।
† कृष्ण चरित्र पृ० ४८१
‡ शल्य पर्व अ० ६२

गति हो गई है।" यह कथा स्पष्ट ही अलौकिक है। बंकिम ने इसे दूसरी या तीसरी तह की रचना माना है।*

युधिष्ठिर को पतिव्रता गांधारी का बहुत भय था। कहीं वह अपने पुत्रों की दुखद मृत्यु का समाचार सुन कर पाण्डवों को शाप न दे दे। इसलिये उन्होंने कृष्ण को हस्तिनापुर भेजा ताकि वे उसे समझायें और सान्त्वना दें। तदनुकूल ही कृष्ण हस्तिनापुर गये और उन्होंने सारी परिस्थिति से धृतराष्ट्र और गांधारी को अवगत कराया। कृष्ण और गांधारी की विस्तृत भेंट का वर्णन स्त्री पर्व के अन्तर्गत आता है। इधर युद्ध क्षेत्र में आहत दुर्योधन अश्वत्थामा को कौरव सेनापति बनाते हैं। † उस समय अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा ये तीन ही कौरव पक्ष के योद्धा बच रहे थे। यहीं शल्य पर्व समाप्त होता है।

शल्य पर्व के आगे सौप्तिक पर्व है। इसमें अश्वत्थामा द्वारा द्रौपदी के पांचों पुत्रों, शिखण्डी, और धृष्टद्युम्न आदि पाञ्चालों के वध का क्रूर दृश्य है। अब पाण्डवों के पक्ष में भी पांच भाइयों और कृष्ण तथा सात्यकि के अतिरिक्त और कोई नहीं बचा। अश्वत्थामा के इस पाशविक हत्याकाण्ड का बदला लेने के लिये अर्जुन उसका पीछा करता है। अश्वत्थामा के छोड़े हुये ब्रह्म शिरास्त्र से उत्तरा के गर्भ नष्ट होने की कथा भी इसी पर्व में है। यह भी लिखा है कि कृष्ण ने मृत परीक्षित को बचाया।

स्त्री पर्व में मृत वीर पुरुषों की विधवा स्त्रियों के विलाप और रुदन का वर्णन है। श्रीकृष्ण के विषय में केवल दो घटनायें इस पर्व में हैं—(१) धृतराष्ट्र ने सोचा कि मैं भीमसेन का आलिंगन

---

* कृष्ण चरित्र पृ० ४८३

† शल्य पर्व अ० ६५

फेरते समय उसे पीस डालूँगा। कृष्ण उसके इस विचार को समझ गये। उन्होंने पूर्व से तैयार की गई भीम की एक लोहे की मूर्ति को धृतराष्ट्र के समक्ष रख दिया। अन्धे धृतराष्ट्र ने उसे चूर २ कर दिया। (२) गाधारी ने कृष्ण के समक्ष बहुत विलाप किया और अन्त में कृष्ण पर ही अपने मृत पुत्रों के शोक का उबाल निकालते हुये उन्हें शाप दे डाला—जब कौरव और पाण्डव दोनों परस्पर लड़ कर नष्ट हो रहे थे तब तुमने उन्हें क्यों नहीं रोका? तुम सब प्रकार से बलवान होते हुये भी कौरवों का नाश देखते रहे। इसलिये इस कर्म का फल भोगो। मैंने जो अपने पति की सेवा से तप सचित किया है, उसके बल से तुम्हें शाप देती हूँ। तुमने जिस प्रकार कौरवों और पाण्डवों का नाश किया, उसी प्रकार तुम अपनी जाति का भी नाश करोगे और स्वय भी मारे जाओगे।* गाधारी से यह शाप दिला कर महाभारत के इस भाग के लेखक ने मौसल पर्व की भूमिका पहले से ही तैयार कर ली। बेचारी गाधारी को यह पता नहीं कि कृष्ण ने युद्ध रुकवाने के लिये क्या २ प्रयत्न किये थे। वह तो प्रक्षेपकारों के मुह से बोल रही है। इसमें उसका क्या वस है।

◆◆

४०. युधिष्ठिर का राज्याभिषेक

स्वजनों के वध से युधिष्ठिर पुन दुखी हुआ और वैरागी बन कर जगल में जाकर रहने और भीख माग कर खाने की बात करने लगा। इससे उसके विचारों की अस्थिरता और निश्चयात्मक बुद्धि का अभाव प्रतीत होता है। वह अपरिपक्व

* स्त्री पर्व अ० २५

मस्तिष्क का था। अर्जुन, भीम, द्रौपदी, नारद, व्यास आदि ने उसे समझाया, परन्तु वह नहीं माना। अन्त में अर्जुन के कहने से कृष्ण ने उसे उपदेश दिया। उनके बहुत समझाने के अनन्तर, वह किसी तरह राजा बनने के लिये तैयार हुआ।

राज्याभिषेक का दिन निश्चय होने पर युधिष्ठिर ने धूमधाम से हस्तिनापुर में प्रवेश किया। राज्याभिषेक के प्रबन्ध में कृष्ण का बड़ा भारी हाथ था। खैर, किसी तरह यह महत्कार्य भी समाप्त हुआ, और कृष्ण का चक्रवर्ती आर्य महासाम्राज्य की स्थापना का दिव्य स्वप्न आज पूरा हुआ। धर्मात्मा अजातशत्रु महाराज युधिष्ठिर सम्राट् के पद पर अभिषिक्त हुये। इस प्रसंग में युधिष्ठिर से श्रीकृष्ण की स्तुति कराई गई है। इससे पूर्व युधिष्ठिर ने कभी कृष्ण की स्तुति नहीं की, क्योंकि आयु में कृष्ण उनसे छोटे थे। इस स्तुति में युधिष्ठिर कृष्ण को ईश्वर मान कर उनका गुणानुवाद करते हैं।* हमारे विचार से यह महाभारत का मौलिक अंश नहीं है।

इधर रणक्षेत्र में भीष्मपितामह शरशय्या पर पड़े २ सूर्य के उत्तरायण होने पर प्राण छोड़ने की प्रतीक्षा कर रहे थे। कृष्ण ने महाराज युधिष्ठिर से कहा कि नर शार्दूल भीष्म जब अपने कर्म के प्रभाव से शरीर को त्याग कर स्वर्ग लोक में जायेंगे तो यह पृथ्वी चन्द्र-विहीन रात्रि के तुल्य अशोभनकारी हो जायगी। अतः आप महापराक्रमी पितामह के समीप† उपस्थित होकर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, यज्ञ, वर्णाश्रम, राजधर्म आदि विषयों पर आपको जो कुछ पूछना हो वह उनसे पूछ लीजिये। भीष्म के परलोक गमन के पश्चात् इन विद्याओं का इतना श्रेष्ठ वक्ता आपको और कहीं नहीं मिलेगा।*

* शान्ति पर्व अ० ४३

† शान्ति पर्व अ० ४६

कृष्ण के इस परामर्श को शिरोधार्य कर महाराज युधिष्ठिर उनके साथ ही कुरुक्षेत्र के उस स्थान पर गये, जहाँ पितामह की जीर्ण शीर्ण काया शरशय्या पर पडी थी। वहाँ पहुँच कर कृष्ण ने भीष्म के शरीर की अवस्था का ज्ञान प्राप्त किया और बहुत प्रकार से उनकी प्रशसा करने के अनन्तर युधिष्ठिर को प्रधानत राजधर्म और सामान्यतया अन्य धर्मों का उपदेश देने की प्रार्थना की। युधिष्ठिर ने भी भीष्म की स्तुति करने के अनन्तर उनसे उपदेश देने की प्रार्थना की।

कृष्ण और युधिष्ठिर के आग्रह के उत्तर मे भीष्म ने कहा कि इस समय भयकर शारीरिक क्लेशों से पीडित होने के कारण मैं कुछ भी कहने में असमर्थ हूँ और आप जैसे सर्व विद्या निधान महापुरुष की उपस्थति में मेरा कुछ कहना भी अविनय के तुल्य ही है, इसलिये आप स्वय ही युधिष्ठिर को उपदेश करें तो अधिक उत्तम होगा। परन्तु कृष्ण के पुन आग्रह करने से उन्होंने इस कथन को स्वीकार कर लिया और वे युधिष्ठिर आदि पाण्डवों को उपदेश देने में प्रवृत्त हुये। इस प्रसग के अन्तर्गत महाभारत में विस्तार पूर्वक भीष्म के इन उपदेशों का वर्णन है। सम्पूर्ण शान्ति पर्व और अनुशासन पर्व भीष्म युधिष्ठिर सवाद से युक्त है। इनमें जहाँ अनेक काम की बातें हैं, वहाँ अनेक व्यर्थ की बातें भी हैं। अनेक बातें शास्त्र के अनुकूल हैं तो अनेक प्रतिकूल भी हैं। इन पर्वों में प्रक्षेप करने वालों को भी खुली छुट्टी मिल गई है। क्योंकि भीष्म के नाम पर अपने विचारों का महाभारत में मिला देने का इससे अधिक उपयुक्त अवसर कब आता। इन पर्वों की काय वृद्धि का एक यह भी कारण है।

४१. काम गीता

भीष्म के अनुशासन के समाप्त होते २ सूर्य उत्तरायण हो गये और उनकी मृत्यु का समय उपस्थित हुआ। भीष्म ने अनुकूल समय आया जान कर परलोक गमन किया। पाण्डवों ने यथाविधि उनकी अन्त्येष्टि क्रिया की।*

भीष्म के स्वर्गारोहण के पश्चात् युधिष्ठिर ने पुनः नेत्रों से अश्रु-धारायें बहानी प्रारम्भ कीं और राज्य छोड़ कर अरण्यवासी होने का विचार करने लगे। इस बार भी धृतराष्ट्र, व्यास और कृष्ण ने उन्हें समझाया। कृष्ण युधिष्ठिर के मनोविज्ञान से भलीभाति परिचित हो गये थे अतः उन्होंने जो सारभरा उपदेश उसे दिया, उसका साराश यहाँ लिखा जाता है। उन्होंने कहा महाराज, आपके सम्पूर्ण शत्रु नि शेष और पराजित नहीं हुये हैं क्योंकि आप निज शरीर मे रहने वाले शत्रु को नहीं जान सके हैं। अपने इस कथन को सिद्ध करने के लिये महाराज कृष्ण ने युधिष्ठिर को इन्द्र और वृत्र का रूपक सुनाया।† कृष्ण के इस उपदेश को बकिम ने काम गीता के नाम से अभिहित किया है‡। महाभारत के अन्तर्गत अश्वमेध पर्व के १२ वें और १३ वें अध्याय में इसका वर्णन हुआ है। कृष्ण के उपदेश का सार यह था—व्याधि दो प्रकार की होती है—शारीरिक और मानसिक। ये दोनों प्रकार की व्याधियाँ पारस्परिक सहयोग से ही उत्पन्न होती हैं। जो व्याधि शरीर से उत्पन्न होती है वह शारीरिक और जो मन से उत्पन्न होती है वह मान

* अनुशासन पर्व १६८

† अश्वमेध पर्व अ० ११

‡ कृष्ण चरित्र पृष्ठ खण्ड—११ वाँ परिच्छेद।

सिक कहलाती है। सर्दी, गर्मी अर्थात् वात, पित्त और कफ शरीर के धर्म हैं। इनकी साम्यावस्था को ही पडित लोग स्वस्थ शरीर का लक्षण कहते हैं। इनमें से एक के अधिक होने से शरीर की प्रकृति विषम हो जाती है और शरीर रोगी हो जाता है। इसी प्रकार सत्व, रज और तम आत्मा के गुण हैं। इनकी साम्यावस्था को ही स्वस्थता और विषमता को अस्वस्थता कहना चाहिये।

शोक से हर्ष और हर्ष से शोक नष्ट होता है। कोई दु ख में रहकर सुख को और कोई सुख में रहकर दुख को स्मरण करना चाहता है। आपको सुख और दुख दोनों को ही विस्मरण करना चाहिये। द्रौपदी का अपमान आदि जो दुखद घटनायें आपके जीवन में घट चुकी हैं उनका स्मरण करना आपको उचित नहीं। इस समय आपके मन में जो अहकार उत्पन्न हुआ है, उसका दमन करना ही उचित है। इस युद्ध में धनुष, बाण आदि भौतिक अस्त्रों की आवश्यकता नहीं है। अत मन पर उचित नियत्रण रखते हुये तथा अपने पिता, पितामह की प्रवृत्ति का अनुसरण करते हुये राज्यशासन करना ही आपके लिये उचित है।"

श्रीकृष्ण ने पुन कहा, "हे राजन्, केवल राज्य शासन आदि का परित्याग कर देने से ही मोक्ष नहीं मिलता, अपितु शारीरिक कर्मादि को त्यागने से ही मोक्ष होता है। परन्तु शुष्क वैराग्य युक्त विवेकहीन पुरुष भी मोक्ष का निश्चय नहीं कर सकते। बाह्य राज्यादि वस्तुओं में विरक्ति और शारीरिक कामादि में आसक्ति युक्त पुरुषों को जो धर्म और सुख मिलता है वह तो आपके शत्रुओं का प्राप्त होने योग्य है। ससार में ममता मृत्यु का कारण है और निर्ममता मोक्ष का कारण है। यह ममता और निर्ममता जनित सघर्ष मनुष्य के हृदय मे सदा होता रहता है।

* अश्वमेध पर्व अ० १२

यदि इस विश्व को अविनाशी समझें तो किसी प्राणी को भी मारने से हिंसा जनित पाप नहीं लगे। जो व्यक्ति समस्त पृथ्वी का अधिकार पाकर भी उसमें ममता नहीं रखता है, तो वह निर्लिप्त ही कहलाता है। इसके विपरीत जो वनवासी होते हुये और फल फूलों से जीविका निर्वाह करते हुये भी बाह्य वस्तुओं में ममता रखते हैं वे मृत्यु प्राप्त करते हैं। अतः आपको इन बाह्य और आन्तरिक शत्रुओं का पूर्ण विचार करना चाहिये। जो इस अनादि मायामय मनुष्य स्वभाव को जानते हैं वे ही संसार से मुक्त होते हैं। कामनावान पुरुष की इस लोक में प्रशंसा नहीं होती। परन्तु कामना के बिना किसी पुरुष की किसी विषय में प्रवृत्ति भी नहीं होती। इसलिये योगवेत्ता पंडित इस कामना का संहार करते हैं। जो लोग निष्काम भाव से यज्ञ, ध्यान, व्रत, तप आदि का अनुष्ठान करते हैं वे ही कामना निग्रह कर धर्म और मोक्ष को प्राप्त करते हैं।"

तदनन्तर महाराज ने काम गीता की गाथा सुनाते हुये कहा, "काम स्वयं कहता है, निर्ममता और योगाभ्यास रूपी उपाय के अतिरिक्त कोई प्राणी मुझे जीत नहीं सकता। जो पुरुष जप, यज्ञ, अध्ययन, धैर्य, तप, मुमुक्षता के द्वारा मुझे जीतने का यत्न करता है, मैं उसके हृदय में अहंकार से उत्पन्न होकर उसे पथभ्रष्ट कर देता हूँ।"

अपने उपदेश का उपसंहार करते हुये कृष्ण ने कामजय का उपाय बतलाया। निष्कामपूर्वक योगाभ्यास करने के अतिरिक्त कामजय का और कोई उपाय नहीं है। अतः कामना का परित्याग कर विविध दक्षिणायुक्त यज्ञों का अनुष्ठान ही आपके लिये क्षेमकर है। आप युद्ध में मरे बांधवों की चिन्ता छोड़ कर अपने कर्तव्य कर्म में प्रवृत्त हों। जो मर गये हैं उनका पुनः दर्शन

सम्भव नहीं है। इसलिये आपको शोक संवरण कर कर्तव्य कर्म में लगना ही उचित है।" ❀ महाराज की यह शिक्षा नितान्त उपादेय और उदात्त है। गीता के सिद्धान्तों से इसका पूर्ण साम्य लक्षित होता है।

इस प्रकार कृष्ण के मुख से निसृत अत्युत्तम उपदेशामृत के पान से तृप्त होकर महाराज युधिष्ठिर आश्वस्त हुये। महाभारत युद्ध की समाप्ति और युधिष्ठिर के धर्मराज्य संस्थापन के साथ २ कृष्ण के जीवन का महत्वपूर्ण उद्देश्य पूरा हुआ। अब उनके इन्द्रप्रस्थ से प्रस्थान कर द्वारिका जाने का प्रसंग उपस्थित हुआ।

क्षेपककारों की करतूतों का एक विचित्र चमत्कार यहाँ भी दृष्टिगोचर होता है। यहाँ उन्होंने महाराज के द्वारिका गमन के लिये प्रस्थान होने से पूर्व एक अनावश्यक और अप्रासंगिक कथा बीच में और घुसेड़ दी। अर्जुन अचानक एक दिन कृष्ण से पूछ बैठे कि युद्ध के समय आपने जो मुझे उपदेश दिया था, चित्त विभ्रम हो जाने के कारण मैं उसे भूल गया हूँ। अब आप द्वारिका के लिये शीघ्र ही प्रस्थान करने वाले हैं, परन्तु इस विषय को एक बार पुनः सुनने की मेरी अभिलाषा है। कृष्ण यह सुन कर बड़े फेर में पड़े। उन्होंने कहा, तुमने मूर्खता से मेरे कहे हुये वचन को ग्रहण नहीं किया उसका मुझे बड़ा दुःख है। अब वह कथन मेरी स्मृति से विस्मृत हो चुका है। पहले मैंने योगयुक्त हो कर तुमसे उस परब्रह्म का विषय कहा था। तुममें श्रद्धा और मेधा नहीं है। इसके पश्चात् महाराज ने अर्जुन को एक पुरातन इतिहास सुना कर ही संतुष्ट किया। यह दूसरी बार का उपदेश

❀ अश्वमेध पर्व अ० १३

"अनुगीता" के नाम से प्रसिद्ध है।§ इसके ही एक भाग का नाम ब्राह्मण गीता है।

इस अनुगीता के क्षेपक होने के विषय में बंकिम की सम्मति स्पष्ट है। वे लिखते हैं—"यह कृष्णोक्त नहीं है। रचयिता या और किसी ने जिस ढंग से इसे कृष्ण के मुख से कहलाया है उसी से प्रतीत होता है कि यह कृष्णोक्त नहीं है। पैबन्द साफ मालूम होता है। वह बहुत छिपाने से भी नहीं छिपता। गीतोक्त धर्म का अनुगीता के धर्म से ऐसा कुछ मेल नहीं है जिससे यह गीता कहलाने के योग्य समझी जाय। श्रीयुक्त काशीनाथ त्र्यम्बक तैलंग ने सतोषजनक प्रमाणों से सिद्ध किया है कि गीता बनने के कई शताब्दियों पीछे यह अनुगीता रची गई है. .. इसका एक प्रमाण यह भी है कि पर्व संग्रहाध्याय में इसका नाम तक नहीं है।"❀

अनुगीता ही क्यों, बंकिम की सम्मति में तो "भगवद्गीता, विदुर प्रजागर,० सनत्सुजातीय, मारकण्डेय समस्या आदि बहुत से धर्म सम्बन्धी ग्रन्थ महाभारत में ऊपर से मिलाये गये हैं और अब वह सबके सब महाभारत के अंश समझे जाते हैं।"†

अनुगीता के समाप्त होने के पश्चात् कृष्ण ने युधिष्ठिर की आज्ञा लेकर द्वारिका के लिये प्रस्थान किया।‡ प्रस्थान के समय भी महाराज के स्वाभाविक, मानुषोचित व्यवहार का वर्णन महाँ-

§ अश्वमेध पर्व अ० १६ से ५१

❀ कृष्ण चरित्र पृ० ४१६

० विदुर प्रजागर को महर्षि दयानन्द ने आर्ष रचना स्वीकार किया है। अतः उसे मूल महाभारत का भाग मानना ही उचित होगा। —लेखक

† वही पृ० ४९५

‡ अश्वमेध पर्व अ० ५२

भारतकार ने किया है। उसका कुछ संकेत पूर्व भी किया जा चुका है, अतः पुनरुक्ति से बचने के लिये यहाँ नहीं लिखा जाता।

द्वारिका के मार्ग में उत्तंकमुनि से साक्षात्कार की कथा* क्षेपककारों की मनगढ़न्त है। उत्तंकमुनि कृष्ण से इसलिये अप्रसन्न हुये कि उन्होंने समर्थ होते हुये भी युद्ध क्यों नहीं रोका। मुनि तो उनको उसके लिये शाप देने तक के लिये तैयार हो गये थे, परन्तु कृष्ण ने उन्हें अपना वास्तविक स्वरूप बताया और यह भी कहा कि शाप देने से उनका तपोबल क्षीण हो जायगा। इस प्रसंग में महाभारत में अनेक असम्भव गाथायें लिखी गई हैं। बंकिम के अनुसार यह कथा महाभारत के पर्व संग्रहाध्याय में नहीं है, अतः क्षेपक है और तीसरी तह की है।†

द्वारिका पहुँचने के अनन्तर कृष्ण ने अपने पिता वसुदेव व अन्य परिजनों से भेंट की। वसुदेव ने जब कुरुक्षेत्र के युद्ध का वृत्तान्त जानने की इच्छा प्रकट की तो कृष्ण ने संक्षेप से युद्ध का वर्णन किया।‡ यह वर्णन अतिशयोक्ति और अनैसर्गिक घटनाओं से रहित होने के कारण अधिक प्रामाणिक है। इसमें भीष्म, द्रोण, कर्ण और दुर्योधन की मृत्यु के स्वाभाविक कारणों का वर्णन दिया गया है। अभिमन्यु वध का उल्लेख महाराज ने जानबूझकर नहीं किया, क्योंकि उससे वसुदेव को अपने दौहित्र का मृत्यु समाचार सुन कर दुख होता। सुभद्रा द्वारा स्मरण दिलाने पर कृष्ण ने उस घटना का भी विस्तार पूर्वक वर्णन किया।§

---

* वही अ० ५३
† कृष्ण चरित्र पृ० ४१७
‡ अश्वमेध पर्व अ० ६०
§ अश्वमेध पर्व अ० ६१

कृष्ण के द्वारिका गमन के समय युधिष्ठिर ने उन्हें अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर पुनः हस्तिनापुर आने का अनुरोध किया था। उस अनुरोध की रक्षा करते हुये महाराज अश्वमेध के अवसर पर पुनः हस्तिनापुर उपस्थित हुये। इसी समय उत्तरा ने मरे हुये पुत्र परीक्षित को जन्म दिया। लिखा है कि कृष्ण ने उसे पुनरुज्जीवित कर दिया।* इसमें यद्यपि अलौकिकता कुछ भी नहीं है, परन्तु कथावाचकों द्वारा उसे अलौकिक रूप प्रदान किये जाने का यत्न अवश्य हुआ है। आज भी चिकित्सकों द्वारा सद्योजात बालकों की चिकित्सा होती है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि कृष्ण को वैद्यक शास्त्र का भी अच्छा ज्ञान था। अश्वमेध समाप्त हो जाने पर कृष्ण पुनः द्वारिका लौट गये। इसके पश्चात् उनका पाण्डवों से फिर कभी साक्षात् नहीं हुआ।

मौसल पर्व—

४२. यदुवंश का नाश और कृष्ण का स्वर्गारोहण

आश्वमेध पर्व के पश्चात् आश्रम वासिक पर्व है। कृष्ण चरित्र से इसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। इसके पश्चात् मौसल पर्व है जिसमें यादव वंश के नाश और कृष्ण के स्वर्गारोहण का वर्णन है। महाभारत के वर्तमान उपलब्ध संस्करणों में मौसल पर्व की कथा इस प्रकार है।

एक बार विश्वामित्र, कण्व और नारद ये तीन ऋषि द्वारिका

* अश्वमेध पर्व अ० ७९

में आये। उस समय के यादव बड़े उद्दण्ड हो गये थे। उन्होंने साम्ब (सत्यभामा पुत्र) को स्त्री की भाँति सजाया और ऋषियों के पास ले गये। ऋषियों से दिल्लगी करते हुये पूछा, "यह स्त्री गर्भवती है। आप अपनी त्रिकालज्ञता से बतायें कि यह क्या प्रसव करेगी, पुत्र अथवा कन्या ?" महर्षिगण यादवों की धृष्टता को समझ गये। उन्होंने अप्रसन्न होकर कहा, "यह स्त्री न पुत्र प्रसव करेगी और न पुत्री। इसके पेट से एक लोहे का मूसल निकलेगा जिससे तुम्हारा यादव वंश नष्ट हो जायगा।" यादव बड़े लज्जित हुये और लौट गये।

बंकिम ने इस घटना का बड़ा मनोरंजक वर्णन अपने ग्रन्थ में किया है। वे लिखते हैं, "ऋषि बड़े क्रोधी होते हैं। बात २ पर शाप देने के लिये मुँह बाये रहते हैं। यदि यह सत्य हो तो ऋषियों को जितेन्द्रिय, ईश्वर परायण न कहकर निष्ठुर, नरपिशाच कहना चाहिये। आजकल किसी भले आदमी से ऐसा सवाल किया जाय तो वह हँसकर रह जायगा या बहुत करेगा तो कुछ ऐंड़ी बेंड़ी सुना देगा। पर हमारे इन जितेन्द्रिय महर्षियों में इतनी सहनशीलता कहाँ। वह चट जामे से बाहर हो शाप दे बैठे। बोले न बेटा होगा न बेटी, लोहे का मूसल होगा । साम्ब चाहे पुरुष हो चाहे स्त्री पर उसने ऋषियों के वचनानुसार लोहे का मूसल जन दिया।"*

राजा उग्रसेन को जब यह समाचार ज्ञात हुआ तो उसने उस मूसल के टुकड़े टुकड़े करवा दिये और उसके चूर्ण को समुद्र में फिंकवा दिया। कृष्ण ने यदुवंशियों का अन्त समीप जानकर नगर

* कृष्ण चरित्र पृ० ४०२

में यह ढिंढोरा पिटवा दिया* कि आज से कोई नगरवासी मद्य आदि पीकर मतवाला न होवे। यदि कोई पुरुष मद्य पियेगा तो उसे बांधवों सहित सूली पर चढ़ा दिया जायगा। महाराज की कठोर आज्ञा को सुनकर लोगों ने भविष्य में मद्य न पीने की प्रतिज्ञा की।

यादवों के आसन्न सर्वनाश के लक्षण देखकर कृष्ण को गांधारी के शाप का स्मरण हो आया और उन्होंने समस्त यादवों को समुद्र के निकट प्रभास तीर्थ की यात्रा करने की आज्ञा दी।† तुरन्त ही रथ और अन्य सवारियों में आरूढ़ हो होकर यादव लोग सपरिवार समुद्रतट पर पहुँच गये।

यहाँ पहुँचकर यादवों ने मदिरापान करना प्रारम्भ कर दिया और विविध क्रीडाओं में लीन हो गये। खेल ही खेल में द्वेष फूट पड़ा और मारपीट की नौबत आ गई। सर्व प्रथम सात्यकि ने कृतवर्मा को उसके कौरव पक्ष को ग्रहण करने के कारण छेड़ा। कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न ने उसका समर्थन किया। सात्यकि ने कृतवर्मा को लाञ्छित और अपमानित करना प्रारम्भ कर दिया, उससे कहा कि वह घोर नराधम है क्योंकि उसने अश्वत्थामा के साथ सोये हुये पाञ्चालों और द्रौपदी पुत्रों को मार डाला। कृतवर्मा ने बदले में सात्यकि पर योगयुक्त अवस्था में भूरिश्रवा को मार डालने का अपराध लगाया। अब तो सात्यकि के क्रोध का पारावार न रहा। उसने तुरन्त आगे बढ़कर कृतवर्मा का सिर काट लिया। कृतवर्मा

---

* अद्य प्रभृति सर्वेषु वृष्ण्यन्धककुलेष्विह।
सुरासवो न कर्तव्यः सर्वैर्नगरवासिभिः॥
यश्च नो विदितं कुर्यात् पेयं कश्चिन्नरः क्वचित्।
जीवन् स शूल मारोहेत् स्वयं कृत्वा सबांधवः॥
मौसल पर्व अ० १।२९।३

† मौसल पर्व अ० २

को मरा हुआ जानकर उसके बन्धु बान्धव सात्यकि का वध करने के लिये दौड़े। अन्त में सात्यकि और उसका समर्थक प्रद्युम्न दोनों ही मारे गये।

अपने पुत्र और मित्र को मरा जानकर कृष्ण को यादवों पर क्रोध आ गया। उन्होंने एक मुट्ठी एरका (सरकण्डे की घास) जो समुद्र तट पर उग आई थी, उखाड़ ली। यह घास तुरन्त मूसल बन गई। उससे कृष्ण ने जो सामने आया उसे मार डाला। उस समय सारे यादव उस घास को उखाड़कर एक दूसरे पर प्राणघाती आक्रमण करने लगे और इस प्रकार परस्पर लड़ते हुए मारे गये। महाभारत में लिखा है कि उन सब घास के सरकण्डों ने मूसलों का रूप धारण कर लिया। अन्य ग्रन्थों में यह भी लिखा है कि यह घास उसी मूसल के चूर्ण से पैदा हुई थी जिसे साम्ब ने प्रसव किया था और जिसे राजा उग्रसेन ने समुद्र में फिकवा दिया था।

सब यादवों के मर जाने के पश्चात् कृष्ण के सारथी दारुक और बभ्रु उनके समीप आये और उन्होंने कहा कि आपने समस्त यदुवंशियों का तो नाश कर ही दिया है, अब हम वहाँ चलें जहाँ बलरामजी निवास करते हैं।*

* कृष्ण ने दारुक को अर्जुन के समीप हस्तिनापुर भेजा और उसको यह कहलवाया कि वह द्वारिका आकर यादवों की स्त्रियों को हस्तिनापुर ले जाये। तदनन्तर वे स्वयं द्वारिका में गये और अपने पिता महात्मा वसुदेव से निवेदन किया कि जब तक अर्जुन नहीं आवें तब तक वे पुरनारियों की रक्षा करें। उनका चित्त यादवों के नाश के कारण अत्यन्त खिन्न था। अब उन्होंने बलराम

* मौसल पर्व स० ३

सहित वन में निवास करने की इच्छा प्रकट की। जब वे नगर से लौटकर बलराम के समीप वन में आये तो उन्होंने देखा कि बलराम योगयुक्त होकर बैठे हैं और उनके मुख से एक श्वेतवर्ण महानाग निकलकर समुद्र में प्रविष्ट हो गया है।*

बलराम का इस प्रकार परलोक गमन हुआ जानकर महाराज ने स्वयं मर्त्यलोक त्यागने की इच्छा की और महायोग का अवलम्बन कर योग निद्रा में सो गये। उसी समय, जरा नामक एक व्याध आया और उसने मृग के भ्रम में महाराज को बाणविद्ध कर डाला। पीछे अपनी भूल से भयभीत होकर श्रीकृष्ण के समीप आया और उनके चरण पकड़कर क्षमा याचना करने लगा। कृष्ण ने उसे दुखी न होने का आश्वासन दिया और समाधि लगाकर प्राण त्याग दिये।† यह है कृष्ण के परलोक गमन का महाभारत में उपलब्ध वृत्तान्त। इसमें कितना अंश मौलिक है और कितना प्रक्षिप्त है, यह निर्णय करना जितना ही कठिन है उतना ही आवश्यक। महर्षियों के शाप और मूसल की कथा को अस्वाभाविक जानकर छोड़ भी दें तो भी यादवों के नाश पर तो विचार करना ही पड़ेगा।

यादवों में उद्दण्डता और स्वेच्छाचार बढ़ गया था। कृष्ण के मद्यपान को वर्जित करने पर भी ये मद्यपान करते थे। पुराणों में तो बलराम को भी घोर मद्यपी और द्यूतप्रिय चित्रित किया गया है। कृष्ण स्वयं इन दोषों से मुक्त थे। यादवों में भी दो कुल पृथक् पृथक् थे। वृष्णिवंशी कृष्ण और सात्यकि ने पाण्डवों का साथ दिया, इसके विपरीत अंधक और भोजवंशी कृतवर्मा ने कौरव पक्ष

* पुराणों में बलराम शेषनाग के अवतार माने गये हैं। —ले०

† मौसल पर्व अ० ४

को ग्रहण किया था। इससे उनका पारस्परिक विरोध स्पष्ट ज्ञात होता है। यादवों का कोई प्रभावशाली राज्य भी नहीं था। उग्रसेन नाम मात्र के राजा थे। कृष्ण अवश्य ही यादवों के लोकप्रिय नेता थे, परन्तु कभी कभी बलराम से उनकी पटरी नहीं बैठती थी। ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति में यादवों का परस्पर लड़भिड़कर समाप्त हो जाना कोई असम्भव नहीं। यादव वंश के इस प्रकार नष्ट हो जाने से दुखी होकर ही राम और कृष्ण का परलोक गमन हुआ, यह अनुमान लगाना अनुचित नहीं है।

महाभारत में यह भी आता है कि कृष्ण ने यादवों के पारस्परिक विनाश को रोकने के लिये कोई प्रयास नहीं किया, अपितु उन्हें नष्ट होने में कुछ सहायता ही दी। इससे कृष्ण चरित्र पर कोई आक्षेप नहीं आता क्योंकि अधर्मी यादवों के नष्ट हो जाने में ही उन्हें उनका कल्याण दिखाई दिया। वे धर्म के पक्षपाती और अधर्म के विरोधी थे। वे अपने बन्धु बान्धवों को ही अधर्म के मार्ग पर चलता हुआ कैसे देख सकते थे? अधर्मी यादवों के प्रति उन्हें कोई विशेष पक्षपात नहीं रह गया था। अत कृष्ण पर यह आक्षेप नहीं लगाया जा सकता कि उन्होंने स्वबन्धुओं का सर्वनाश कराया।

कृष्ण के शरीर त्याग के कारणों की मीमासा करते बंकिम ने चार कारण उपस्थित कर उनकी सम्भवता और असम्भवता पर विचार किया है।

(१) यूरोपीय परम्परा के विद्वानों का कथन है कि कृष्ण अपने ही भाइयों के हाथों मारे गये, परन्तु इस कथन का समर्थन किसी भी ग्रन्थ से नहीं होता। अत यह मत अमान्य है।

(२) कृष्ण जरा नामक व्याध के बाण से मारे गये।

(३) कृष्ण उस समय अपनी आयु के अन्तिम भाग को

पहुंच चुके थे। उन्हें बुढ़ापे ने घेर लिया था। अतः सम्भव है कि महाव्याध जरा (बुढ़ापा) ही उनकी मृत्यु का कारण बना हो।

(४) उन्होंने योग युक्त होकर स्वेच्छा से प्राण त्याग किये।

अन्तिम तीनों कारणों का समन्वय किया जा सकता है। योग द्वारा शरीर त्याग यूरोपीय विद्वानों के लिये भले ही आश्चर्य की वस्तु हो परन्तु यह असम्भव नहीं है। जो योगी प्राणों का सयम करते हैं उनके लिये सांस रोककर प्राणों को छोड़ना कठिन नहीं है। यह आत्महत्या भी नहीं है, क्योंकि जीवन में अपना उद्देश्य पूरा हो जाने के अनन्तर योगयुक्त होकर प्राण त्याग करना प्रत्येक व्यक्ति के लिये सुलभ नहीं है। अत कृष्ण के देह त्याग के विषय में यही मत समीचीन जान पड़ता है कि यादवों के नाश के पश्चात् उन्होंने अपने जीवन की कृतकृत्यता और उद्देश्य की पूर्ति का निश्चय कर लिया। तदनन्तर वे योग साधना द्वारा गम्य समाधि दशा को प्राप्त हो गये। उस समय उनकी आयु भी परिपक्व हो गई थी और वे अपने शरीर त्याग का विचार ही कर रहे थे। उसी समय अकस्मात् जरा नामक व्याध के बाण से घायल हो जाने से उनको इस बात का और भी निश्चय हो गया कि अब उनके प्राण त्यागने का समय आ गया है। बस, पुन ध्यानावस्थित हो कर उन्होंने अपनी आत्मा को परमात्मा में मिला कर देह त्याग दिया। इस प्रकार महाभारत के इस महान् सूत्रधार की भूमिका का अवसान हुआ। अपने युग का वह महान् राजनीतिज्ञ, समाज शास्त्री, योगी तथा दार्शनिक और सब से बढ कर आर्य साम्राज्य का महान् संस्थापक, विश्व हृदयसम्राट् कृष्ण अपनी भौतिक लीला को समाप्त कर उस लोक में पहुँच गये जिसका वर्णन केवल तत्त्व द्रष्टा ऋषि लोग ही कर सके हैं।

महाराज के परलोक गमन का समाचार सुन कर अर्जुन

द्वारिका आये और यादव स्त्रियों तथा महाराज वसुदेव से मिले। वसुदेव ने उन्हें सारी परिस्थिति से अवगत कराया। * अर्जुन ने यादव नारियों और शेष पुरुषों को हस्तिनापुर की ओर प्रयाण करने का आदेश दिया। वसुदेव भी पुत्र वियोग का शोक सहन नहीं कर सके और दूसरे दिन स्वर्ग सिधारे। अर्जुन ने उनका अन्त्येष्टि संस्कार विधिपूर्वक कराया। उन्होंने प्रभास स्थल में मरे हुये यादवों का भी अन्तिम संस्कार कराया और राम, कृष्ण के शवों का भी अनुसंधान करा कर उनका प्रेत कर्म किया।†

जब वे द्वारिका के शेष निवासियों और स्त्रियों को लिये हुये हस्तिनापुर की ओर आ रहे थे तो रास्ते में उन्हें आभीर जाति के लुटेरे मिले। डाकुओं ने स्त्रियों और धन को लूटने के लिये अर्जुन के दल पर आक्रमण किया। एक दिन जिस अर्जुन के समक्ष कौरव दल के भीष्म और द्रोण जैसे महारथी भी नहीं टिक सके, वही आज आभीर दल के सामने अपने आपको अशक्त और अक्षम अनुभव करने लगा। आभीर डाकुओं से धन और स्त्री वर्ग का अपहरण होता देख कर अर्जुन ने प्रारब्ध को ही बलवान माना।‡

अर्जुन वहाँ से निवृत्त होकर व्यासजी के हिमालय स्थित आश्रम में पहुँचे और उन्हें यादव वंश के नष्ट होने और कृष्ण के स्वर्ग गमन का वृत्तान्त सुनाया। भगवान् द्वैपायन के उपदेशों से अर्जुन को धैर्य हुआ और वह हस्तिनापुर लौट गया। वहाँ जाकर उसने धर्मराज के समक्ष सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदन किया।§

---

* मौसल पर्व अ० ६

† मौसल पर्व अ० ७

‡ मौसल पर्व अ० ७

§ मौसल पर्व अ० ८

मौसल पर्व की प्रामाणिकता संदेहास्पद है। अनुक्रमणिकाध्याय में उसकी कुछ भी चर्चा नहीं है। बंकिम ने इसे तीसरी तह की रचना माना है।*

४३ चरित्र विश्लेषण.

मनुष्य अपनी विविध प्रवृत्तियों को उन्नति के सर्वोच्च सोपान पर पहुंचा कर किस प्रकार एक साधारण मानव से महामानव के उच्च पद पर प्रतिष्ठित हो सकता है, इसका सर्व श्रेष्ठ उदाहरण कृष्ण का जीवन है। कारागार की विवशतापूर्ण परिस्थितियों में जन्म लेकर भी कोई मनुष्य संसार का महानतम नेता किस प्रकार बन जाता है, यह कृष्ण चरित्र में देखिये। बंकिम के अनुसार कृष्ण ने अपनी ज्ञानाजर्नी, कार्यकारिणी और लोकरंजनी तीनों प्रकार की प्रवृत्तियों को विकास की चरम सीमा तक पहुंचा दिया था, तभी उनके लिये यह सम्भव हो सका कि वे अपने समय के महान् राजनीतिज्ञ और समाज व्यवस्थापक के गौरवान्वित पद को आसीन कर सके।

बाल्यावस्था से लेकर जीवन के अन्तिम क्षण तक कृष्ण उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होते रहे। उनका एक मात्र उद्देश्य रहा, धर्म के अनुसार लोगों को अपने २ कर्तव्यों के पालन में रत रखना। वे स्वयं धर्म में अनन्य निष्ठा रखने वाले और उसके वास्तविक रहस्य को जान कर उसका उपदेश देने वाले महान् धर्मोपदेष्टा थे।

* कृष्ण चरित्र पृ० ५०८

ऋषि दयानन्द ने तो यहाँ तक कह दिया है कि श्रीकृष्ण ने जन्म से मरण पर्यन्त कुछ भी बुरा काम नहीं किया। यह सब कुछ धर्म के कारण ही सम्भव हुआ और तभी तो महाभारतकार ने लिखा—

"यतो कृष्णस्ततो धर्मः यतो धर्मस्ततो जयः।"

जहाँ कृष्ण हैं वहाँ धर्म है और जहाँ धर्म है वहाँ जय है। संजय ने भी इसी प्रकार गीता में अन्त में कहा—

यत्र योगेश्वरो कृष्णः यत्र पार्थो धनुर्धरः ।

तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मति मम ।१८।।७८

जहाँ योगेश्वर कृष्ण और गाण्डीव धारी अर्जुन हैं वहीं श्री है, वहा विजय है, अधिक क्या कहें वहीं विभूति और अचल कीर्ति है। ये उक्तियाँ कृष्ण को ईश्वरावतार मान कर नहीं कही गई हैं। यदि ऐसा होता तो इनका कुछ भी मूल्य नहीं होता। ये कृष्ण की सर्वोपरि मानवीय भावनाओं को ही प्रकाशित करती हैं, जिनकी चरम साधना के कारण कृष्ण साधारण मानव की कोटि से उठकर महापुरुषों की श्रेणी में आये, योगेश्वर और योगिराज बने।

बाल्यकाल से ही देखिये! एक दृढ़ विचार वाले, पुष्ट शरीर वाले और स्वस्थ मन तथा बलवान आत्मा वाले ब्रह्मचारी में जो २ विशेषतायें होनी चाहियें, वे हमें कृष्ण में मिलती हैं। उनका शारीरिक बल एक अनुकरणीय वस्तु है, जिससे उन्होंने बाल्यकाल में ही अनेक त्रासदायक और हिंसक जन्तुओं का वध किया। समय आने पर उन्होंने युद्ध कौशल और रणनीति का सांगोपांग अध्ययन किया। युद्ध नीति के वे कितने प्रकाण्ड पण्डित थे, यह तो इसी

से ज्ञात हो जायगा कि अर्जुन और सात्यकि जैसे वीर उनके शिष्य थे, जिनको उन्होंने युद्ध विद्या सिखाई थी। गदा युद्ध असि युद्ध के वे अच्छे ज्ञाता थे; निर्भयता, निडरता और चातुर्य के तो भण्डार ही थे।

शारीरिक बल के अतिरिक्त उनका शास्त्रीय ज्ञान भी बढ़ा चढ़ा था। वेद, वेदांगों के ज्ञाता थे, यह तो हमें भीष्म की उक्ति से ज्ञात होता ही है। साथ ही साथ वे चिकित्सा, संगीत, अश्व-परिचर्या आदि विविध लौकिक विद्याओं के भी पंडित थे। मृत प्राय उत्तरा के बालक को जीवनप्रदान करना, मुरलीवादन कर सबके मन को मोहित करना तथा अर्जुन के सारथी बनकर भयंकर युद्ध क्षेत्र में अपने रथी की रक्षा करना आदि उदाहरण इन बातों को सिद्ध करने के लिये उपस्थित किये जा सकते हैं। शारीरिक बल और मानसिक शक्तियों का उन्होंने चरम विकास किया था, परन्तु आचार की दृष्टि से भी उनकी बराबरी उस समय का कोई पुरुष नहीं कर सकता। वे महान् सदाचारी और शीलवान् पुरुष थे। माता पिता की आज्ञा पालने और उनके प्रति सदा पूज्य भाव रखने के गुण को उन्होंने कभी विस्मृत नहीं किया। वे मादक द्रव्यों तथा द्यूत आदि बुराइयों से सदा दूर रहते थे, यहाँ तक कि उन्होंने समय २ पर यादवों में ये आज्ञायें प्रचारित करा दी थीं कि कोई जन यदि मदिरा पियेगा तो वह राज्य की ओर से दण्डनीय होगा। ब्रह्मचर्य के विषय में प्रसंगवशात् कहा जा चुका है। एक पत्नीव्रत का पालन करते हुये भी उन्होंने सपत्नीक बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया। तदनन्तर उनके प्रद्युम्न जैसा पुत्र उत्पन्न हुआ जो रूप, गुण, शील और आचार में सर्वथा अपने पिता के ही तुल्य था। पुराणकारों ने उनके चरित्र के इस पहलू को सम्पूर्णतया विस्मृत कर दिया है।

श्रीकृष्ण सध्या और अग्निहोत्र आदि दैनिक कर्तव्यों के पालन में कभी प्रमाद नहीं करते थे। महाभारत में स्थान २ पर इसके उल्लेख मिलते हैं। दुर्योधन से सधिवार्ता के लिये जाते हुये कृष्ण को जब २ प्रात काल या सायकाल होता है तब २ वे सध्या और अग्निहोत्र करना नहीं भूलते। महाभारत में लिखा है—

प्रातरुत्थाय कृष्णस्तु कृतवान्सर्वान्हिकम्।
ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातो प्रययौ नगर प्रति ॥ *

प्रात काल उठकर कृष्ण ने आन्हिक (सध्या व हवन) आदि क्रियायें कीं पुन ब्राह्मणों की आज्ञा लेकर नगर की ओर गये। इसी प्रकार एक अन्य श्लोक है—

कृत्वा पौर्वान्हिक कृत्य स्नात शुचिरलंकृत.।
उपतस्थे विवस्वन्तं पावक च जनार्दन ॥ S

स्नान करके प्रात काल की आन्हिक क्रियायें कीं आदि। अब इसे विडम्बना के अतिरिक्त और क्या कहें कि नित्य सध्या योग के द्वारा सच्चिदानन्द ब्रह्म का ध्यान करने वाले और अग्निहोत्र के द्वारा देवताओं का यजन करने वाले, आर्य मर्यादा पालक, आदर्श महापुरुष कृष्ण को लोगों ने साक्षात् ईश्वर ही बना दिया।

कृष्ण चरित्र की सर्वोपरि विशेषता उनकी राजनैतिक विचक्षणता और नीतिज्ञता है। उनका राजनीति के प्रति यह अनुराग किसी स्वार्थ की भावना से प्रेरित नहीं था, जैसा कि आज कल के अनेक राजनैतिक नाम धारी पुरुषों में दिखाई पडता है। और

* महाभारत उद्योग पर्व अ० ९३

S महाभारत उद्योग पर्व अ० ८

न ही उनकी राजनैतिक विचारधारा किसी संकुचित राष्ट्रीयता के सीमाक्षेत्र में बंधी हुई थी। उस समय वर्तमान युग में व्यापक सीमित राष्ट्रीय भावना का तो जन्म ही नहीं हुआ था। कृष्ण के इस क्षेत्र में प्रवेश करने का एकमात्र उद्देश्य था लोक कल्याण, विश्व कल्याण और अराजकता को मिटा कर आर्य विधि का संस्थापन। लोकोपकार की यही भावना लेकर वे इस क्षेत्र में प्रविष्ट हुये।

सर्व प्रथम उनकी दृष्टि अपने ही मथुरा जनपद के स्वेच्छाचारी, एकतंत्र शासन के प्रतिनिधि राजा कंस के ऊपर गई। उन्होंने अपने पारिवारिक और व्यक्तिगत सम्बन्धों का विचार न करते हुये यादवों के हित को सर्वोपरि समझा और कंस के विनाश में ही सबका कल्याण देखा। कंस की मृत्यु के पश्चात् ही मथुरा के यादवों को अपनी सर्वांगीण उन्नति करने का अवसर मिला। कृष्ण का अभी एक कार्य पूर्णतया समाप्त भी नहीं हुआ था कि जरासंध के आक्रमण होने प्रारम्भ हो गये। कंस के मारे जाने से जरासंध ने अनुमान लगा लिया कि अब अधिक दिनों तक आर्यावर्त में अत्याचार, स्वेच्छाचार और अराजकता का राज्य नहीं चल सकता क्योंकि कृष्ण के रूप में सदाचार, स्वतंत्रता, मर्यादा और धर्म, नीति तथा समाज का संरक्षक एक महान लोकनायक उत्पन्न हो चुका है। कंस भी तो आखिर जरासंध का ही जामाता और उसी का अनुगामी था। कंसबध की घटना में जरासंध ने अपनी नीति और हथकण्डों को पराजित होते देखा। वह तुरन्त मथुरा पर चढ़ दौड़ा और एक बार ही नहीं सत्रह बार उसने आक्रमण किये। कृष्ण के अपूर्व रणचातुर्य और उनके सफल सेनापतित्व में यादवों ने जरासंध की सेना के दांत खट्टे कर दिये। परन्तु जब कृष्ण ने ही यह समझ लिया कि शूरसेन प्रदेश सुरक्षा की दृष्टि से अधिक

उत्तम नहीं है तो उन्होंने यादव जाति के निवास के लिये द्वारिका जैसा भौगोलिक दृष्टि से सुदृढ आवास स्थान ढूढ निकाला।

जरासध के सेनापति शिशुपाल को प्रथम तो रुक्मिणी के विवाह के अवसर पर कृष्ण के द्वारा नीचा देखना पड़ा और द्वितीय बार जब राजसूय यज्ञ के प्रसग में उसने अर्घ्य के पचडे को लेक यज्ञध्वस करने और कृष्ण के किये कराये पर पानी फेरने का विचा किया तो उसे यमलोक पहुँचा कर कृष्ण ने अपने "विनाशाय च दुष्कृताम्" रूपी महायज्ञ में एक और आहुति प्रदान की। जरास को समाप्त करने का अवसर इससे पूर्व ही उपस्थित हो गया था ८६ राजाओं को कैद कर और उनकी सख्या को १०० तक पहुँचा देने पर उनकी महादेव के सम्मुख बलि देने का जो पैशाचिक षड्यन्त्र जरासंध ने कर रक्खा था, उसे कृष्ण जैसे धर्मात्मा और करुणाशील पुरुष कैसे सहन कर सकते थे? इस दुष्कृत्य में तो उसके समस्त अत्याचारों की चरम परिणति हो गई थी, अत उसे सहन करना सर्वथा असम्भव था। ऐसा मनुष्य जाति का शत्रु जरासध कृष्ण की नीति और चतुराई से भीम द्वारा मारा गया। न तो युद्ध करना पडा और न रक्तपात। सब काम शान्तिपूर्वक हो गया।

महाभारतीय युद्ध में भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य, दुर्योधन आदि कौरव पक्ष के सभी महारथी वीरों का अत एक एक कर के हुआ और इस प्रकार कृष्ण के इस धर्म सस्थापन रूपी महान यज्ञ में पूर्णाहुति लगी। युधिष्ठिर के धर्मराज्य सस्थापन के विषय में अन्यत्र भी पर्याप्त लिखा जा चुका है। कृष्ण की इस अपूर्व नीतिज्ञता और रणचातुरी से यह अनुमान लगाना कि वे युद्धलिप्सु थे, अथवा समस्त देश को युद्ध की भयकर और विनाशकारी ज्वालाओं में झोंककर तमाशा देखने वाले थे, अनुचित होगा। कृष्ण ने यथाशक्य

युद्ध का विरोध किया, यह हम प्रत्येक प्रसंग में देख चुके हैं। उन्होंने न तो युद्ध को समस्या सुलझाने का एकमात्र उपाय ही समझा और न उसमें कूद पड़ने के लिये किसी को उत्साहित ही किया। यहाँ तक कि वैयक्तिक मानापमान की परवाह न करते हुये भी वे हस्तिनापुर संधि का संदेश लेकर गये, और चाहे उसमें उन्हें सफलता न भी मिली, परन्तु संसार को यह ज्ञात हो गया कि महात्मा कृष्ण संधि के लिये प्रयत्नशील हैं और उसके आकांक्षी हैं। उन्होंने स्वयं कहा है कि वे इस पृथ्वी को युद्ध की विभीषिका से बचा हुआ ही देखना चाहते हैं।

यह ठीक है कि दुर्योधन की कुटिलता से उनकी बात नहीं मानी गई और युद्ध अपरिहार्य हो गया, परन्तु लोग यह भी जान गये कि पाण्डवों का पक्ष सत्य है और दुर्योधन हठवश मानव जाति के सर्वनाश में प्रवृत्त हो रहा है। यह महत्कार्य कृष्ण की अपूर्व दूरदर्शिता और विलक्षण मेधावी बुद्धि से ही सम्पन्न हुआ। युद्ध प्रारम्भ होते ही उनका दृष्टिकोण बदल गया। अब वे युद्ध को क्षत्रियों के लिये खुला हुआ स्वर्ग का द्वार बतलाते हैं और उनका दृढ़ विश्वास है कि आततायियों का विनाश किये बिना कार्य नहीं चल सकता। रणक्षेत्र में उपस्थित होने के उपरान्त अर्जुन में जो क्लीवता और हृदय दौर्बल्य उत्पन्न हुआ उसे महाराज ने अनार्यों के उपयुक्त तथा स्वर्ग और कीर्ति का नाश करने वाला बतलाया। वास्तव में क्षात्र धर्म का यही प्राकृत रूप था, जिसे महाराज ने अत्यन्त ओजस्वी और प्रभविष्णु ढंग से निरूपित किया और जो आज विश्व के सम्मुख गीता के नाम से विद्यमान है।

यह है कृष्ण की राजनीतिज्ञता का किंचित् दिग्दर्शन। उन्होंने, जहाँ अनेक राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय महत्वपूर्ण प्रश्नों को सुलझाने में अपने जीवन का अधिकांश भाग लगाया, वहां उन्होंने

सामाजिक प्रश्नों की भी अवहेलना नहीं की। श्रीकृष्ण वर्णाश्र धर्म के सबसे प्रबल समर्थक और शास्त्रीय मर्यादा के रक्षक थे परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि वे किसी प्रका की सामाजिक कट्टरता या अनुदारता के पोषक और गतानुगति कता के समर्थक थे। उनकी सामाजिक धारणायें उदारतापू और नीतियुक्त होती थीं। उन्होंने सदा दलित और पीड़ित व का पक्ष ग्रहण किया। विदुर जैसे धर्मात्मा लोगों का उन्होंने सद सम्मान किया। नारीवर्ग के प्रति उनकी बड़ी श्रद्धा थी। कुन्ती गान्धारी, देवकी आदि पूजनीय, गरीयसी महिलाओं तथा सुभद्रा द्रौपदी आदि कनिष्ठा देवियों के प्रति उनके हृदय में सदा श्रद्धा सम्मान और आदर के भाव रहे। वे जानते थे कि मातृ शक्ति का यथोचित सम्मान करने से ही देश की भावी सन्तान में श्रेष्ठ गुणों को लाया जा सकता है।

कृष्ण के व्यक्तित्व के इन विविध रूपों की आलोचना कर लेने के पश्चात् भी उनके चरित्र की उस महनीयता और उदात्तता की ओर ध्यान आकर्षित कराना आवश्यक है जिसके कारण आध्यात्मिक क्षेत्र के महान् उपदेष्टा और योगेश्वर के रूप में उनका सर्वत्र सम्मान हुआ, हो रहा है और जब तक संसार में आर्य संस्कृति का कोई भी अनुयायी रहेगा, तब तक होता रहेगा। कृष्ण राजनीतिज्ञ भी थे, धर्मोपदेष्टा भी थे, समाज संशोधक और क्रान्ति विधायक भी थे, परन्तु वास्तव में वे योगी थे और थे आध्यात्म पथ के एक अपूर्व साधक। उन्होंने कर्म योग का ही उपदेश दिया और अपने जीवन में आचरण के द्वारा उसे ही प्रत्यक्ष कर दिखलाया।

वे ज्ञान और कर्म के समन्वय के पक्षपाती थे। यही आर्य संस्कृति और परम्परा की विशेषता है जो कृष्ण के व्यक्तित्व में

साकार हो उठी थी। सच्चिदानन्द के परम तत्व का साक्षात्कार कर लेने के उपरान्त भी वे लोक मार्ग से च्युत नहीं हुये, क्योंकि वे गीता में कह चुके हैं कि पूर्णकाम हो जाने के उपरान्त भी योगी को कर्तव्य कर्म करने से विराम नहीं लेना चाहिये। इस प्रकार इन्होंने कर्मठ जीवन का पाठ पढ़ाया परन्तु साथ ही साथ यह भी कहा कि हम अपने स्वरूप को समझें और योगी की भांति निष्काम भाव से कर्तव्य पालन में दत्तचित्त हों। यही कृष्ण के उपदेश का सार है और यही उनके जीवन की महान् सफलता का एक मात्र कारण है।

जीवन की इसी विविधता और सर्वांगीणता के कारण कृष्ण चरित्र का स्थान संसार में अद्वितीय है। स्वदेश ही क्या विदेशों में भी ऐसे सर्वगुणसम्पन्न महापुरुष का जन्म नहीं हुआ। मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् राम के साथ अवश्य उनकी तुलना की जा सकती है, परन्तु राम और कृष्ण के जीवन और उनकी परिस्थितियों में अन्तर था। राम स्वयं आदर्श राजा थे, परन्तु कृष्ण राजाओं के निर्माता परन्तु स्वयं सत्ता से दूर रहने वाले महापुरुष थे। राम के समक्ष वे कठिनाइयाँ नहीं थीं, जो कृष्ण के समक्ष थीं। अतः किसी भी दृष्टि से क्यों न देखा जाय कृष्ण के तुल्य मानव भूमण्डल में अद्यतन नहीं हुआ, यह निश्चित है।

परिशिष्ट

श्रीमद्भगवद्गीता

भीष्मपर्व के अन्तर्गत श्रीमद्भगवद्गीता १८ अध्यायों और ७०० श्लोकों में कही गई है। अध्यायों के विषय और श्लोकों की संख्या निम्न चित्र से विदित होगी—

अध्याय	विषय	श्लोक संख्या
प्रथम	अर्जुन विषाद योग	४७
द्वितीय	सांख्य योग	७२
तृतीय	कर्मयोग	४३
चतुर्थ	ज्ञान कर्म सन्यास योग	४२
पंचम	कर्म संन्यास योग	२९
षष्ठ	आत्म संयम योग	४७
सप्तम	ज्ञान विज्ञान योग	३०
अष्टम	अक्षर ब्रह्म योग	२८
नवम	राज विद्या राजगुह्य योग	३४
दशम	विभूति योग	४२
एकादश	विश्वरूप दर्शन योग	५५
द्वादश	भक्ति योग	२०
त्रयोदश	क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विभाग योग	३४
चतुर्दश	गुणत्रय विभाग योग	२७
पंचदश	पुरुषोत्तम योग	२०
षोडश	दैवासुर सम्पद् विभाग योग	२४
सप्तदश	श्रद्धात्रय विभाग योग	२८
अष्टादश	मोक्ष संन्यास योग	७८
	कुल श्लोक संख्या	७००

आज तक इस ग्रन्थ का विभिन्न भाषाओं के अन्दर अनुवाद हो चुका है और लाखों करोड़ों की संख्या में यह पुस्तक छप चुकी है। भारत का गीता प्रेस गोरखपुर इस ग्रन्थ का सबसे बड़ा प्रकाशक और प्रचारक है। इस संस्था की ओर से विभिन्न प्रकार की छोटी बड़ी, विभिन्न व्याख्याओं और भाष्यों से युक्त गीतायें बीसों प्रकार की छप चुकी हैं और लाखों की संख्या में प्रकाशित हुई हैं। इसके प्रचार को देखकर ही अनुमान लगाया जा सकता है कि यह ग्रन्थ कितना लोकप्रिय है। अनेक देशी विदेशी विद्वानों ने इसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है और इसे आत्मोद्धार तथा विश्व कल्याण की कुञ्जी बताया है। भारत के अनेक क्रान्तिकारी शहीद जो मातृभूमि के सम्मान की रक्षा के लिये फांसी के तख्तों पर झूल गये, उनके बलिदान में भी गीता की प्रेरणा रही है। अनेक वीरों ने तो गीता पाठ करते हुये और गीता पुस्तक को हाथ लेकर ही मृत्यु का स्वागत किया था।

सनातनधर्मी विद्वानों के लिये तो गीता का महत्त्व सर्वोपरि है। इसका एक विशेष कारण है। वे भगवान् कृष्ण को ईश्वर का साक्षात् अवतार मानते हैं और गीता उनकी साक्षात् वाणी है। उनके अनुसार भगवान् ने वेदों का उपदेश तो ब्रह्मा जी के द्वारा सृष्टि को दिया, परन्तु गीता का उपदेश उनके मुख से ज्यों का त्यों निकला, इसलिये इन लोगों की दृष्टि में गीता का महत्त्व वेदों से भी बढ़ा चढ़ा है। अपने कथन की पुष्टि में वे महाभारत के गीता माहात्म्य का एक श्लोक प्रस्तुत करते हैं—

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्र विस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता॥

अर्थात् गीता सुगीता करने योग्य है, इसे भली प्रकार पढ़कर

अर्थ और भाव सहित अन्त करण में धारण कर लेना मुख्य कर्तव्य है। यह गीता स्वयं पद्मनाभ विष्णु भगवान् के मुखारविन्द से निकली हुई है फिर अन्य शास्त्रों के विस्तार से क्या प्रयोजन है? वस्तुतः इस अतिरंजित दृष्टिकोण को स्वीकार करना कठिन ही है, क्योंकि स्वयं गीता में ही वेदों का महत्त्व और उनका स्वत प्रामाण्य भली भाँति दिखाया गया है। ऐसी दशा में इसको सर्वोपरि शास्त्र कहना श्रद्धा की अतिशयता के अतिरिक्त कुछ नहीं।

गीता कौरवों के पिता अंधे धृतराष्ट्र और उनके मंत्री सञ्जय के संवाद के रूप में महाभारत में लिखी गई है। यह तो स्पष्ट है कि गीता महाभारत का एक भाग है, अत. उसे कृष्णोक्त कहने की अपेक्षा व्यासोक्त कहना अधिक उपयुक्त होगा। यद्यपि यह भी निर्विवाद रूप से नहीं कहा जा सकता कि सम्पूर्ण गीता जिस रूप में उपलब्ध है वह व्यास रचित महाभारत के मौलिक भाग के अन्तर्गत है अथवा उसमें भी समय समय पर अन्य लोगों द्वारा प्रक्षेप हुये हैं। यहाँ हम कुछ विद्वानों की सम्मतियाँ उद्धृत करते हैं।

बंकिम के कथन का अभिप्राय यह है—"महाभारत में धर्म और दर्शन विषयक जो लम्बे लम्बे प्रकरण हैं—यथा विदुर प्रजागर, सनत्सुजातीय और भगवद्गीता आदि ये कालान्तर में महाभारत में मिला दिये गये हैं"*। वे यह अवश्य मानते हैं कि कृष्ण के सिद्धान्तों और मन्तव्यों का यथार्थ प्रतिनिधित्व इस गीता में मिलता है। इसलिये यदि हम कृष्ण के आध्यात्मिक और दार्शनिक विचारों का परिचय प्राप्त करना चाहें तो गीता से ही हमें सहायता लेनी होगी।

आर्यसमाज के प्रसिद्ध उपदेशक और विश्व के अधिकांश भागों

* कृष्ण चरित्र पृष्ठ १९५

में भ्रमण करने वाले विद्वान् श्री महत्वा जैमिनी (स्व० स्वा० ज्ञानानन्द) ने एक पुस्तक लिखी है—"जावा में पाषाण चित्रलिपि रामायण"। इस ग्रन्थ में उन्होंने वाली द्वीप में प्राप्त होनेवाली एक सत्तर श्लोकी गीता का उल्लेख किया है*। इस गीता में अध्याय नहीं हैं। ५७ श्लोक तो पूरे हैं, परन्तु शेष टुकड़े टुकडे हैं। जो लोग वर्तमान में उपलब्ध गीता को असली गीता नहीं मानते, उन्हें विचार करने के लिये इस सत्तर श्लोकी गीता से बहुत कुछ सामग्री प्राप्त हो सकती है।

आर्यसमाज के अन्य सुप्रसिद्ध सन्यासी विद्वान् स्वामी आत्मानन्दजी ने 'वैदिक गीता' नामक ग्रन्थ का सम्पादन किया है। इसमें उन्होंने प्रक्षेप चुनने की एक मौलिक पद्धति का विश्लेषण अपनी भूमिका में किया है और उसी नियम के अनुसार उन्होंने गीता के वास्तविक श्लोकों का पता लगाया है। यह आवश्यक नहीं है कि स्वामीजी ने जिन श्लोकों को प्रक्षिप्त माना है और जिन अन्य श्लोकों को मौलिक माना है, वे यथार्थ में ही प्रक्षेप या मौलिक हों। स्वयं लेखक भी इसके लिये कोई दुराग्रह नहीं करता। उनके कथन का अभिप्राय तो यही है जिस तर्कसरणि के आधार पर उन्होंने गीता के शरीर का शल्यक्रिया के द्वारा विश्लेषण किया है, वह युक्तियुक्त और प्रामाणिक है अथवा नहीं यह विचारणीय है। यह हो सकता है कि आपकी सम्मति में अमुक श्लोक मूल गीता का भाग हो, जिसे स्वामी जी प्रक्षिप्त मानते हों, परन्तु आपको उनकी युक्तियों और तर्क शैली की अवश्य प्रशंसा करनी पड़ेगी जिसके आधार पर उन्होंने गीता में से प्रक्षेप चुनने का यह महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। 'वैदिक गीता' के अनुसार निम्न श्लोक प्रक्षिप्त हैं—

* जावा में पाषाण चित्रलिपि रामायण पृष्ठ १६

अध्याय	श्लोक
प्रथम	कोई नहीं
द्वितीय	२४,४५,४६,६०,६१,६७,६८,६९
तृतीय	३०,३१,३२
चतुर्थ	१ से १५ तक,२३,३४,३५,३६,३७
पंचम	१३ से २९ तक
षष्ठ	१४ से २३,२७,३०,३१,४७
सप्तम	सम्पूर्ण अध्याय प्रक्षिप्त
अष्टम	१ से ७,१२ से २१,२३ से २७
नवम	सम्पूर्ण अध्याय प्रक्षिप्त
दशम	"
एकादश	"
द्वादश	"
त्रयोदश	१ से ६,१०,१८ से ३४
चतुर्दश	२,३,४,१९,२६,२७
पंचदश	सम्पूर्ण अध्याय प्रक्षिप्त
षोडश	१८,१९,२०
सप्तदश	५,६,
अष्टादश	५० से ५८,६४ से ७१,७६,७७

स्वामीजी के तर्कों और युक्तियों के लिये मूल पुस्तक की वृहद् भूमिका देखनी चाहिये।

प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् पं० रघुनन्दन शर्मा ने अपने ग्रंथ "वैदिक सम्पत्ति" में गीता के प्रामाण्य पर विचार किया है। * प्रसग वश

* वैदिक सम्पत्ति—प्रस्थानत्रयी की पड़ताल, गीता और उपनिषदों में मिश्रण पृ० ४८७ द्वितीय संस्करण १९९६

उन्होंने वेदान्त के तीनों प्रामाणिक ग्रंथों उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और गीता (जो प्रस्थानत्रयी के नाम से प्रसिद्ध हैं) की मौलिकता और प्रामाणिकता का निवेचन किया है। उनके निष्कर्ष अत्यन्त क्रान्तिकारी और दार्शनिक तथा धार्मिक संसार में विचित्र खल-बली मचा देने वाले हैं। उनका कथन है कि उपनिषद्, वेदान्त सूत्र और गीता आदि ग्रंथों में असुर लोगों ने समय समय पर अनेक मिश्रण कर दिये हैं। इन मिश्रणों से यह सिद्ध होता है कि ये मिश्रणकर्ता असुर लोग वेदों, यज्ञों, वैदिक कर्मकाण्ड तथा तर्क के घोर विरोधी थे। असुर मिश्रणकर्ताओं का संकेत उनको छान्दोग्य उपनिषद् के उस प्रकरण में मिला जहां लिखा है कि देवराज इन्द्र और असुरराज विरोचन प्रजापति के पास ब्रह्मविद्या सीखने के लिये आये और जब उनको यह समझाया गया कि यह देह ही आत्मा है तो विरोचन इस उपदेश से संतुष्ट हो गया, परन्तु इन्द्र को संतोष नहीं हुआ और उसने अपनी जिज्ञासा को विराम नहीं दिया। यहां प्रजापति ने इसे असुरों की उपनिषद् बताया है, "तस्मादप्यद्येहाददानमश्रद्दधानमयजमानमाहुरासुरो बतेत्य सुराणा ᳪ ह्येषोपनिषत्प्रेतस्य शरीरं भिक्षया वसनेनालङ्कारेणेति सᳪ स्कुर्वन्त्येतेन ह्यमुं लोकं जेष्यन्तो मन्यन्ते इति।" * "इसलिये अब भी यहाँ पर अदाता, अश्रद्धालु और अयज्वा को असुर कहते हैं, क्योंकि यह असुरों की उपनिषद् है, जो मृतक के शरीर को गंध, माला, वस्त्र और अलकारों से सजाते हैं और यह समझते हैं कि ऐसा करने से हम इस लोक का जीतेंगे।"

पं० रघुनन्दन शर्मा को गीता में ऐसे अनेक प्रमाण भी उप-लब्ध हो गये, जो उनकी स्थापनाओं को सिद्ध करते थे—यथा वेद की निंदा के लिये उन्होंने इन श्लोकों को उद्धृत किया है—

* छान्दोग्य उपनिषद् ८।८।५

"यामिमा पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः ।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ॥२।४२
त्रैगुण्य विषया वेदाः निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।
निर्द्वन्द्वो नित्य सत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥"२।४५

इसी प्रकार "संशयात्मा विनश्यति" आदि श्लोकांशों में उन्हें तर्क निंदा दिखाई दी। अतः उन्होंने बड़ी प्रबलता से गीता की प्रामाणिकता का खण्डन किया है। उनके इस कथन में भी सत्यता है कि जब गीता कोई स्मृति नहीं है (यह तो महाभारत जैसे इतिहास ग्रंथ का एक भाग है) तो वेदान्त के शंकराचार्य आदि भाष्य-कर्ताओं ने इसे 'स्मृति प्रस्थान' मान कर वेदान्त के भाष्य में स्मृति प्रमाण के स्थान में क्यों उद्धृत किया? गीता और विष्णु पुराण आदि ग्रंथों को स्मृति वचनों की तरह उद्धृत करना कहां तक न्याय सगत है, यह विचारणीय है। रघुनन्दन शर्मा जी के विचारों से चाहे हम सर्वांश में सहमत न हों परन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि कहीं २ पर उनकी "ऊहा" बड़ी प्रबल हो गई है। उन्होंने जिस विश्वास और दृढता के साथ गीता के मिश्रणों का विवेचन किया है, वह हमें थोड़ी देर के लिये विचार करने को बाध्य करता है और हम सोचने लग जाते हैं कि वस्तुतः यह सब असुरों की करामात ही तो नहीं है?

पं० बुद्धदेव विद्यालंकार की मान्यता है कि गीता अत्यन्त उपयोगी और श्रेष्ठ ग्रंथ है। उनके अनुसार गीता में जहाँ २ "अहम्" वाद प्रबल हो उठा है—अर्थात् जहाँ कृष्ण अपने को ही ईश्वर कह कर अपनी विभूति, शक्ति और अलौकिकता का वर्णन करने लगते हैं वहां २ वे सारे कथन ईश्वर के समझने चाहियें। जिस प्रकार Inverted Commas के अन्तर्गत आने वाले

वाक्य किसी अन्य व्यक्ति के उद्धृत वचन समझे जाते हैं, उसी प्रकार गीता में आने वाले ऐसे श्लोकों को Inverted Commas के अन्तर्गत मान कर ही पढ़ना चाहिये। वे श्रीकृष्ण के मुंह से बोले गये अवश्य हैं, परन्तु उनका भाव ईश्वर परक है। यथा—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥९।३४

ऐसे श्लोकों का यही अर्थ करना चाहिये-ईश्वर कह रहा है कि मुझ में मन लगाने वाला हो मेरा भक्त तथा मेरा ही भजन करने वाला हो आदि। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि हम कृष्ण में मन लगाने वाले, उसके भक्त या उसका भजन करने वाले होवें। इनकी सम्मति में तो गीता में प्रक्षेप मानने की आवश्यकता ही नहीं है।

आर्यसमाजी विद्वानों ने गीता की अनेक सुन्दर व्याख्यायें लिखी हैं। इनमें सर्वश्रेष्ठ पं० तुलसीराम स्वामी की टीका है।* इसकी विशेषता यह है कि इन्होंने अर्थों में बड़ी सुन्दर संगति लगाई है। इस व्याख्या में भी यद्यपि प्रक्षिप्त श्लोकों को पृथक् नहीं किया गया है, परन्तु उनका अर्थ और भाव वैदिक सिद्धान्त के अनुकूल लगाया गया है, जिसके पढ़ने से पौराणिकता की गंध भी नहीं आती। स्वामी दर्शनानन्दजी की टीका के नाम से जो गीता बाजार में मिलती है, वह वस्तुतः स्वामी दर्शनानन्दजी द्वारा लिखित नहीं है।

कभी २ यह शंका उपस्थित होती है कि महर्षि दयानन्द या आर्यसमाज की गीता की प्रामाणिकता अथवा अप्रामाणिकता के विषय में क्या सम्मति है? मेरे विचार से यह प्रश्न सुलझाना कोई

* श्रीमद्भगवद्गीता पं० तुलसीराम स्वामी, स्वामी प्रेस मेरठ ।

कठिन नहीं है। इसका कारण यह है कि गीता कोई पृथक् स्वतंत्र ग्रंथ नहीं है। वह तो महाभारत का एक भाग ही है। अत महर्षि की जो सम्मति महाभारत के विषय में है, वही गीता के विषय में भी समझनी चाहिये। महर्षि ने महाभारत के अच्छे २ प्रकरणों को पठन विधि के अन्तर्गत स्थान दिया है, अत गीता के विषय में भी उनकी सम्मति आदरपूर्ण ही थी, यह अनुमान लगाया जा सकता है। उन्होंने कुछ स्थानों पर गीता के प्रमाण भी दिये हैं—यथा सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में चारों वर्णों के गुण कर्मों का वर्णन करते समय उन्होंने गीता के १८।४२,४३ इन दो श्लोकों को मनु के साथ २ उद्धृत किया है। सप्तम समुल्लास में कृष्ण के अवतार होने के सिद्धान्त को स्वीकार न करते हुये उन्होंने "यदा यदा हि धर्मस्य" श्लोक की यह सम्मानित व्याख्या उपस्थित की है—"ऐसा हो सकता है कि श्री कृष्ण धर्मात्मा और धर्म की रक्षा करना चाहते थे, कि मैं युग २ में जन्म लेके श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों का नाश करूं तो कुछ दोष नहीं। क्योंकि परोपकाराय सतां विभूतयः, परोपकार के लिये सत्पुरुषों का तन, मन, धन होता है। तथापि इससे श्रीकृष्ण ईश्वर नहीं हो सकते।'

ऊपर दिये हुये चोटी के विद्वानों के गीता सम्बन्धी मतों का ऊहापोह करने के पश्चात् भी यह निर्णय करना कठिन है कि वस्तुत गीता का कौन सा भाग प्रामाणिक है और कौन सा अप्रामाणिक। गीता का उपदेश जिस परिस्थिति और वातावरण में दिया गया था वहां दार्शनिक सिद्धान्तों के खण्डन मण्डन और गम्भीर तत्व विवेचन के लिये कोई विशेष अनुकूल स्थिति दृष्टि गोचर नहीं होती क्योंकि युद्ध क्षेत्र में जहां कि दोनों सेनायें युद्ध के लिये बद्ध परिकर होकर एकत्र हो गई हैं वहां दार्शनिक बातों का विवेचन करने का न तो प्रसङ्ग ही था और न उसके अनुकूल वातावरण

ही। यह भी समझ में नहीं आता कि इतने विस्तृत व्याख्यान को सुनने के लिये अर्जुन की मनःस्थिति भी अनुकूल थी या नहीं। इन सब बातों पर विचार करने के पश्चात् हम यही कह सकते हैं कि—

(१) कालान्तर में किसी व्यक्ति ने कृष्ण के आध्यात्मिक और दार्शनिक विचारों का संग्रह कर महाभारत में मिला दिया। युद्ध की वास्तविक परिस्थिति में कृष्ण ने अर्जुन को जो उद्बोधक उपदेश दिया होगा, वह अत्यन्त संक्षिप्त और मार्मिक रहा होगा। प्रस्तुत गीता ग्रन्थ उन्हीं विचारों का विस्तृत दार्शनिक भाष्य है। अथवा यह भी संभव है कि—

(२) महाभारतकार व्यास ने कृष्ण के उपदेशों का संक्षिप्त सार भीष्म पर्वान्तर्गत गीता में लिखा हो और कुछ समय पश्चात् उसमें अनेकानेक विचारों का मिश्रण हो गया हो। अस्तु।

अब हमें गीता में उल्लिखित सिद्धान्तों और मन्तव्यों पर विचार करना है। जैसा कि पूर्व ही कहा जा चुका है यह ग्रन्थ धृतराष्ट्र और सञ्जय के संवाद के रूप में है। धृतराष्ट्र अंधे थे इसलिये वे अपने पुत्रों और पाण्डवों के बीच होने वाले संग्राम का अवलोकन करने में असमर्थ थे। उनको युद्ध का वृत्तान्त सुनाने के लिये सञ्जय नियुक्त हुये। व्यासजी ने उन्हें ऐसी दिव्य दृष्टि प्रदान की थी, जिसके कारण राजप्रासाद में बैठे २ ही वे युद्ध का हाल देख सकते थे। सञ्जय स्वयं कहते हैं—

> व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम् ।
> योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयं ॥ १८ । ७५

अर्थात् व्यासजी की कृपा से मैंने इस परम रहस्ययुक्त गोपनीय योग को योगेश्वर कृष्ण से कहते सुना है। वर्तमान काल के रेडियो और टेलिविजन आदि आविष्कारों को देखते हुये यह सम्भावना-

प्रकट की गई है कि सम्भवतः उस समय भी इस प्रकार के कोई यंत्र रहे हों जिनकी सहायता से सञ्जय युद्ध का हाल देख और सुन सके हों। अथवा योग की शक्ति से भी यह सम्भव है।

गीता में उपनिषदों के सिद्धान्तों को श्लोकबद्ध रूप में प्रस्तुत किया गया है। महाभारतान्तर्गत गीता माहात्म्य से इसकी पुष्टि होती है, जहां कहा गया है कि—

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥

सब उपनिषदें गायें हैं और उनका दोहन करने वाले भगवान कृष्ण हैं। पार्थ वत्स है जिसके लिये यह गीता रूपी अमृतमय दुग्ध स्रवित हो रहा है। इस श्लोक की पुष्टि इस बात से भी होती है कि गीता के अनेक श्लोक उपनिषदों में अत्यल्प परिवर्तन के साथ मिलते हैं। यथा कठ उपनिषद् के निम्न वाक्यों को गीता के द्वितीयाध्यायान्तर्गत श्लोकों से मिलाइये—

कठ उपनिषद्—

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं
　　कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
　　न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ कठ०२।१८

गीता—

न जायते म्रियते वा कदाचि-
　　न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
　　न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ गीता०२।२०

कठ उपनिषद्—

> हन्ताचेन्मन्यते हन्तु ७ हतश्चेन्मन्यते हतम् ।
> उभौ तौ न विजानीतो नाय ७ हन्ति न हन्यते ॥

गीता—

> य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।
> उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥
>
> गीता० २।१९

जिस प्रकार उपनिषद् वचनों के प्रमाण विभिन्न दार्शनिक मतों के मानने वाले अपने-२ सिद्धान्त की पुष्टि में लगाते हैं, उसी प्रकार गीता के भी प्रमाण विभिन्न दार्शनिक मतों के समर्थन में दिये जा सकते हैं। यहाँ से अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद त्रैतवाद आदि विभिन्नवादों का प्रतिपादन करने वाले श्लोक ढूंढ़ कर उद्धृत किये जा सकते हैं। साम्प्रदायिक भाष्यकारों ने ऐसा किया भी है। इसी प्रकार सांख्य, योग, वेदान्त आदि दर्शन सम्प्रदायों के सिद्धान्तों का विवेचन भी पृथक २ प्रसंगों में गीता में हुआ है। इसे समन्वयात्मक ग्रन्थ कहना अधिक उचित है। ज्ञान, भक्ति और कर्म का सुन्दर निरूपण गीता में मिलता है। अवतार-वाद के समर्थन में भी कुछ श्लोक मिलते हैं। परन्तु मूर्तिपूजा का उल्लेख गीता में कहीं नहीं है। "पत्रं पुष्पं फलं तोयं" इत्यादि श्लोकों से मूर्तिपूजा की सिद्धि क्लिष्ट कल्पना मात्र है।

गीता की कई शिक्षायें अत्यन्त उदात्त और प्रभविष्णु हैं, यद्यपि स्थान २ पर श्रीकृष्ण पर ईश्वरत्व का आरोपण कर गीता के सिद्धान्तों को विकृत करने की चेष्टा अवश्य की गई है। यदि विभूतियोग और विश्वरूप दर्शन आदि प्रसंगों को पृथक कर दिया जाय तो गीता का शेष स्वरूप अत्यन्त निर्मल और सात्विक

हो जायगा। द्वितीय अध्याय में आत्मा की अमरता का अत्यन्त सुन्दर और ओजस्वी ढंग से निरूपण है। क्षात्र धर्म के अनुसार युद्ध करने की आवश्यकता को श्रीकृष्ण ने इसी अध्याय में प्रकट किया है। इसके अतिरिक्त स्थितप्रज्ञ व्यक्ति के लक्षण और महिमा का वर्णन करने वाले श्लोक भी लेखक की गहन साधना का परिचय देते हैं।

अन्य अध्यायों में निष्काम कर्म की श्रेष्ठता, यज्ञादि कर्मों का निरूपण, लोक संग्रह के लिये अनासक्त होकर कर्म करने की आवश्यकता, योगसाधन और मन का निग्रह करने के उपाय, ध्यान योग, देवयान और पितृयान मार्ग का वर्णन, सृष्टि उत्पत्ति, आसुरी और दैवी सम्पदा, सत्व रज और तमोगुण का वर्णन, आहार, यज्ञ, तप, दान और श्रद्धा के त्रिविध भेद, वर्ण धर्म, भक्ति और उपासना आदि विविध उपयोगी विषयों का विस्तृत विवेचन हुआ है। इन सभी विषयों पर गीतोक्त मत को प्रदर्शित करना और उसका विवेचन करना स्थानाभाव के कारण सम्भव नहीं है।

श्रीमद्भगवद्गीता पर भाष्य रचना

लगभग सभी दार्शनिक सम्प्रदायों के सिद्धान्तों के अनुसार गीता पर भाष्य ग्रन्थों की रचना हुई है, हो रही है और भविष्य में भी होगी। जैसा कि पूर्व ही कहा जा चुका है गीता को वेदान्त की प्रस्थानत्रयी के अन्तर्गत 'स्मृति प्रस्थान' के रूप में स्थान मिल चुका है, इसलिये वेदान्त के लगभग सभी आचार्यों ने इस पर अपने भाष्य लिखे हैं। इनमें सबसे प्राचीन शंकराचार्य कृत भाष्य है। इस भाष्य की यह विशेषता है कि गीता का अर्थ शंकर के मत के अनुकूल मायावादी नवीन वेदान्त के आधार पर किया गया

है। यह निर्विवाद है कि जब हम एक विशेष दार्शनिक मतवाद को अपने हृदय में स्थान देकर किसी ग्रंथ की व्याख्या करेंगे तो हम उस ग्रंथ की मूल विचार धारा के साथ न्याय नहीं कर सकते। शांकर भाष्य का भी यही परिणाम हुआ। यहाँ मायावाद और विवर्तवाद, एक ब्रह्मवाद और जगत् मिथ्यावाद के नवीन सिद्धान्तों को बलात्कार से गीता पर थोपा गया है। यह होना स्वाभाविक भी था क्योंकि शंकराचार्य ने गीता ही क्या उपनिषद् और वेदान्त सूत्र का भाष्य भी इसी पद्धति का अनुसरण करते हुये किया है। ऐसा करने से मूल ग्रन्थ के साथ कितना अन्याय होता है इसका विचार किसी टीकाकार ने नहीं किया क्योंकि उनका उद्देश्य तो स्वमत स्थापन के लिये इन प्राचीन ग्रन्थों की सहायता लेना मात्र ही था।

शंकर के अतिरिक्त गीता पर रामानुज भाष्य भी मिलता है। यह विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त का समर्थन और प्रतिपादन करने वाला ग्रन्थ है। यद्यपि इसकी शैली भी शांकर भाष्य का ही अनुसरण करती है, परन्तु फिर भी यह गीता के मौलिक मन्तव्य के अधिक समीप है और इसमें खींचातानी करने का बहुत कम प्रयास किया गया है। रामानुज वैष्णव धर्म के आचार्य थे, इसलिये उन्होंने विष्णु पुराण आदि वैष्णव ग्रन्थों की सहायता यत्र तत्र ली है। मेरी व्यक्तिगत सम्मति में रामानुज भाष्य शाङ्कर भाष्य की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय है और गीता के मौलिक तात्पर्य की ओर अधिक संकेत करता है।

गीता के कुछ अन्य प्रसिद्ध भाष्यों का यहाँ उल्लेख मात्र किया जाता है—

(१) मराठी भाषा में लिखित ज्ञानेश्वरी टीका, टीकाकार-ज्ञानेश्वर।

(२) कर्मयोग रहस्य शीर्षक लोकमान्य तिलक लिखित मराठी टीका। इसमें गीता की कर्मयोग परक व्याख्या की गई है।

(३) अनासक्तियोग शीर्षक महात्मा गांधी लिखित गुजराती टीका। इसमें गांधी जी ने स्वयं कल्पित अहिंसा सिद्धान्त को प्रधानता देते हुये और कृष्ण, अर्जुन, कौरव, पाण्डव, भारतीय युद्ध आदि को काल्पनिक अलंकार मानते हुये गीता की व्याख्या लिखी है।

अन्य गीता ग्रन्थ

संस्कृत साहित्य में यह नियम सा प्रचलित है कि किसी प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना होने के पश्चात् सम्प्रदाय प्रेमियों द्वारा उस ग्रंथ की अनुकृति में उसी नाम के अन्य ग्रन्थों की रचना होने लगती है। यद्यपि ये परवर्ती ग्रन्थ गुणों और महत्व की दृष्टि से अपने पूर्ववर्ती ग्रन्थ की अपेक्षा हीन और निकृष्ट कोटि के ही होते हैं, परन्तु विभिन्न सम्प्रदायों का दृष्टिकोण उपस्थित करने के कारण उनकी उस २ सम्प्रदाय में अत्यधिक प्रतिष्ठा होने लगती है। उदाहरण के लिये प्राचीन और प्रामाणिक उपनिषद् केवल १० या श्वेताश्वर को मिला कर ११ माने गये हैं परन्तु कुछ काल के अनन्तर इन्हीं उपनिषदों के अनुकरण में अन्य उपनिषद् नामधारी ग्रन्थों की रचना होने लगी, जो महत्ता की दृष्टि से और प्रामाणिकता के विचार से अपने पूर्ववर्ती ग्रन्थों के समक्ष एक क्षण भर भी नहीं ठहरते। इस प्रकार उपनिषदों की संख्या बढ़ते २०० २५० तक पहुँच गई। इन परवर्ती उपनिषदों की अनेक श्रेणियां हैं—यथा

(१) नवीन वेदान्त का प्रतिपादन करने वाले उपनिषद।

(२) राजयोग और हठ योग का प्रतिपादन करने वाले उपनिषद।

(३) विभिन्न साम्प्रदायिक उपनिषद् इनमें शैव, सौर, शाक्त,

वैष्णव, गाणपत्य आदि सभी सम्प्रदायों की रचनायें सम्मिलित हैं।

इसी प्रकार महाभारतान्तर्गत विष्णुसहस्रनाम के आधार पर गोपालसहस्रनाम, रामसहस्रनाम, गणपतिसहस्रनाम, शिवसहस्रनाम आदि अनेक ग्रन्थ बने। यही हाल गीता का हुआ। अनुगीता की चर्चा प्रसगवश पहले आ गई है। ब्रह्माण्डपुराणान्तर्गत अध्यात्म-रामायण में "राम गीता" नामक एक प्रकरण है। इसी प्रकार शिव गीता, भगवती या देवी गीता आदि विभिन्न साम्प्रदायिक गीतायें भी प्रचलित हैं।

सहायक ग्रन्थों की सूची

१ महाभारत (हिन्दी) शरतचन्द्र सोम द्वारा प्रकाशित कलकत्ता

२ श्रीमद्भागवत

३ श्री विष्णु पुराण

४ ब्रह्म पुराण

५ ब्रह्मवैवर्त पुराण

६ कृष्ण चरित्र—ले० बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय

७ योगेश्वर कृष्ण—ले० प० चमूपति एम० ए०

८ सत्यार्थ प्रकाश—ले० स्वामी दयानन्द सरस्वती

९ श्रीमद्भगवद्गीता

१० अनासक्तियोग—महात्मा गाँधी

११ राधा का रहस्य—प० रामसहाय शर्मा

१२ राधा और कृष्ण का नाता—प० नारायण प्रसाद बेताब

१३ Vashnavism Shaivism and minor religious Systems By Dr R G Bhandarkar

---

सहायक ग्रन्थों की सूची

१. महाभारत (हिन्दी) शरतचन्द्र सोम द्वारा प्रकाशित कलकत्ता

२. श्रीमद्भागवत्

३. श्री विष्णु पुराण

४. ब्रह्म पुराण

५ ब्रह्मवैवर्त पुराण

६. कृष्ण चरित्र—ले० वंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय

७. योगेश्वर कृष्ण—ले० पं० चमूपति एम० ए०

८. सत्यार्थ प्रकाश—ले० स्वामी दयानन्द सरस्वती

९ श्रीमद्भगवद्गीता

१०. अनासक्तियोग—महात्मा गाँधी

११. राधा का रहस्य—पं० रामसहाय शर्मा

१२. राधा और कृष्ण का नाता—पं० नारायण प्रसाद बेताब

१३. Vashnavism, Shaivism and minor religious Systems By. Dr R G Bhandarkar.

सम्मतियाँ

(१)

भारतीयजी की कृष्ण चरित नामक पुस्तक की पाण्डुलिपि मैं
ख गया हूँ और इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि इसमें पर्याप्त परि-
म और अध्यवसाय से काम लिया गया है। अनेक गुत्थियों को
ड़े ही युक्तियुक्त तथा सतर्क ढंग से सुलझाने की चेष्टा की गई है।
ण भारतीय संस्कृति के उन्नायक तथा स्रष्टा रहे हैं, उनको ठीक
समझना और अपनी परम्परा का ज्ञान प्राप्त करना आज के
। में अत्यन्त आवश्यक हो गया है। स्वतन्त्र भारत के निवासियों
सामने एक महान् उत्तरदायित्व आ पड़ा है। वह यह कि हम
अपने भाग्य के स्वयं निर्णायक हैं। देश की उन्नति की ओर